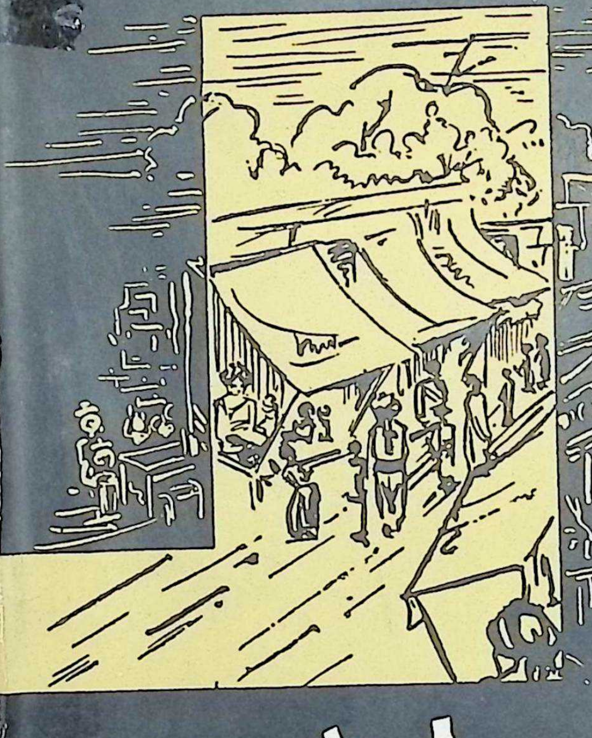

छोटे छोटे सवाल

दुष्यन्त कुमार

छोटे-छोटे सवाल—यानी हमारे शैक्षिक ढाँचे पर, और कहीं भी बैठ उसे बनाते / बिगाड़ते चंद दक़ियानूस दिमाग़ों की भ्रष्ट कारगुज़ारियों पर लगे बड़े-बड़े प्रश्नचिन्ह।

ऐसे प्रश्नचिन्ह, जो दिन-ब-दिन फंदे की तरफ कसते जा रहे हैं और न सिर्फ कस्बई स्कूल-कालेज, बल्कि नगरीय-महानगरीय विद्यालय-महाविद्यालय तक जिनकी गिरफ्त में दम तोड़ते लग रहे हैं।

और यह उपन्यास बड़े-बड़े सवालों से भी बड़े कुछ ऐसे ही छोटे-छोटे सवालों से सीधे टकराने की हिमायत करता है।

एक इन्टर कालेज की प्रबन्ध-समिति के विभिन्न सदस्यों की दम्भी चौधराहट, अंधी स्वार्थपरता, मुखौटेबाज़ नैतिकता और चालाक राजनीति को उपन्यासकार ने जिस बारीकी से बेनकाब किया है, वह दिलचस्प तो है ही, विचारणीय भी है।

प्रबंधकों की जिस जड़ व्यावसायिकता की बुनियाद पर भारतीय निजी विद्यालयों की बुर्ज़ियाँ उठी हैं, वे छलावा मात्र हैं। उनकी ऊँचाई से होड़ करते हुए उस भविष्य का निर्माण करना असम्भव है, जिसकी कल्पना इस उपन्यास के सत्यव्रत या जयप्रकाश सरीखे युवा करते रहे हैं।

पर इस कल्पना के साथ-साथ एक भूल भी वे करते रहे हैं—अपने आदर्श को यथार्थ के साथ एकमेक न कर पाने की भूल। बड़े-बड़े आदर्श सवालों को हल करने की झोंक में छोटे-छोटे यथार्थ सवालों से बचते रहने की भूल।

निस्संदेह, एक अंचल विशेष से जुड़कर भी यह उपन्यास राष्ट्रव्यापी शिक्षा-समस्याओं की दोषपूर्ण बुनियाद को हिलाने की ताकत रखता है।

छोटे-छोटे सवाल

शहरों में, गांवों में, छोटे-छोटे सवाल,
क़ल्ब पर, निगाहों में, छोटे-छोटे सवाल,
जगह-जगह अड़ते हैं, चुभते हैं, गड़ते हैं,
हम सबकी राहों में छोटे-छोटे सवाल।

डा. डिल्ली रमण शर्मा
कल्याणी रेग्सी स्मारक
पुस्तकालय
~~9038~~
9039

छोटे-छोटे सवाल

दुष्यन्त कुमार

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

संजय प्रकाशन
नई दिल्ली

भारत सरकार द्वारा अपेक्षाकृत सस्ते दामों में उपलब्ध कराये गये कागज पर मुद्रित ।

मूल्य : रु० ६५.००

© १९६४ : दुष्यन्त कुमार त्यागी

डा. डिल्ली रमण शर्मा,
कल्याणी रेश्मी स्मारक
पुस्तकालय

प्रथम संस्करण : १९६४
छठा संस्करण : १९८९

प्रकाशक : संजय प्रकाशन,
१८ रिंग रोड, लाजपत नगर-४, नयी दिल्ली-११००२४

मुद्रक : प्रभात आफसैट प्रेस, नई दिल्ली-२

CHHOTE CHHOTE SAWAL
Novel by Dushyant Kumar Tyagi

दो शब्द

प्राइवेट स्कूल-कॉलेजों पर कुछ लिखने की बात मेरे मन में बहुत दिनों से थी···शायद तब से जब मैं अध्यापक था···या उससे भी पूर्व जब मैं बी० टी० का विद्यार्थी था। हो सकता है मेरे कवि-व्यक्तित्व से परिचित मित्रों और स्नेहियों को यह कृति थोड़ी अप्रत्याशित लगे, किन्तु जीवन के कुछ सीधे-सादे सवालों से जूझने का मोह या जागरूकता ही इस उपन्यास की प्रेरणा है।

मेरे हाईस्कूल जीवन के गुरु श्री रामचरणसिंह त्यागी इस प्रेरणा के मूल में रहे हैं। दामोदर सदन और भगवन्त देशपाण्डे जैसे मित्रों ने बराबर इस उपन्यास के बारे में बातें कर-करके ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि मैं इसे अधूरा नहीं छोड़ सका। वरना कहाँ इतना बड़ा उपन्यास और कहाँ छोटी-छोटी कविताएँ लिखनेवाला एक कवि !

और अब उपन्यास आपके हाथों में है। भविष्य-निर्माण के प्राइवेट और पर्सनल कारखानों (यानी प्राइवेट स्कूल-कॉलेजों) की एकदम अछूती और उपेक्षित ज़मीन पर एक छोटी-सी तामीर—जिसे मुकम्मल करने में धनंजय और खासकर शानी के रचनात्मक सुझाव बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। राजेन्द्र यादव ने अध्यायों के शीर्षक दिये हैं। इनमें से जिसे भी धन्यवाद दूंगा, वही नाराज़ हो जायेगा।

—दुष्यन्त कुमार

डा० दिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय

कमलेश्वर,
मार्कण्डेय और
मोहन राकेश के लिए

इण्टरव्यू से पहले

सत्यव्रत ठीक दस बजे उस कमरे में पहुंचा जहाँ इण्टरव्यू के लिए और बहुत-से उम्मीदवार जमा थे। यद्यपि वह आर्यसमाज मन्दिर से साढ़े नौ बजे ही चल दिया था, फिर भी मन में थोड़ा चिन्तित था। वक्त का सही अनुमान न लगा पाने के कारण उसे लगता था कि कहीं पाँच-सात मिनट का विलम्ब न हो गया हो। किन्तु कमरे में पहुँचकर उसे सान्त्वना मिली। लोग एक-एक, दो-दो की टुकड़ी में बंटे हुए बातचीत कर रहे थे और ऐसा नहीं लगता था कि इण्टरव्यू शुरू हो गये हैं।

"क्यों साहब, जब तक हम लोगों का इण्टरव्यू शुरू हो, तब तक क्यों न हम एक-दूसरे का परिचय ही हासिल कर लें ?" ठाकुर ने बेंच से उठकर दोनों हाथ आगे फैलाते हुए एक्टराना अन्दाज में कहा और फिर खुद अपना परिचय देते हुए बोला, "बन्दे का नाम है राजेश्वर ठाकुर और असिस्टैण्ट टीचरी का उम्मीदवार हूँ।"

बात करने का अन्दाज़ और बात का वज़न दोनों बराबर उतरे। हिन्दू इण्टर कॉलेज, राजपुर के उस कमरे में पन्द्रह-बीस बेतरतीब-सी डेस्कों के पीछे लगी बेंचों पर बैठे उम्मीदवारों में जैसे ज़िन्दगी की हलचल दौड़ गयी। अब तक खामोश-से बैठे प्रतीक्षाग्रस्त उम्मीदवार इस बात के प्रति ज्यादा सतर्क थे कि कहीं डेस्कों की दावात की सूखी स्याही का कोई धब्बा उनके साफ़ धुले कपड़ों पर न लग जाये। पर अब उन्हें लगा कि वक्त बातचीत करके भी गुज़ारा जा सकता है।

सत्यव्रत कोने में पड़ी एक बेंच पर बैठ गया।

एक सिरे से खड़े होकर सबने अपना परिचय देना शुरू किया।

"रामस्वरूप पाठक नाम है, के० जी० कॉलेज से हिन्दी में सेकण्ड डिवीज़न में एम० ए० किया है, हल्दौर से आया हूँ।"

"मेरा नाम मुरारीमोहन माथुर है, मैंने भी हिन्दी में एम० ए० किया है, मैं भालू का रहनेवाला हूँ।"

और भी चार उम्मीदवारों ने खड़े हो-होकर अपना परिचय दिया। सबने हिन्दी में एम० ए० किया था और सब सेकण्ड डिवीज़न में पास हुए थे। ये लोग हिन्दी की लेक्चररशिप के उम्मीदवार थे।

सहसा राजेश्वर ने कहा, "क्यों साहब, क्या एम० ए० हिन्दी में थर्ड डिवीज़न नहीं होती?"

असिस्टैण्ट टीचरी के अधिकांश उम्मीदवार इस बात पर मुस्करा दिये। कोई उत्तर न पाकर असरार ने डेस्क पर आगे झुकते हुए कहा, "एम० ए० की बात तो साहब, ये प्रोफ़ेसर लोग जानें, पर बी० ए० में थर्ड डिवीज़न जरूर होती है और मुझे थर्ड डिवीज़न में बी० ए० पास करने का फ़ख्र हासिल है।"

इस पर श्रोत्रिय नाम के एक अन्य उम्मीदवार ने भी दूसरे शब्दों में यही बात दोहरायी।

फिर जो परिचय का औपचारिक दायरा टूटा और डिवीज़नों की बात चली तो मालूम हुआ कि असिस्टैण्ट टीचरी के दो पदों के लिए आमन्त्रित छः में से पाँच उम्मीदवार थर्ड डिवीज़नर हैं और अनट्रेण्ड भी। राजेश्वर ठाकुर ने तो बी० ए० तीसरे साल सप्लीमेण्टरी में पास किया था। पर सर्वसम्मति से सभी उम्मीदवारों ने उसे भी थर्ड डिवीज़नर्स में ही गिना। फिर एक-दूसरे को प्रशंसा और प्रेम की दृष्टि से देखकर सबने आत्मसन्तोष का अनुभव किया।

तभी अचानक राजेश्वर ने कोनेवाली एक बेंच पर अकेले बैठे हुए सत्यव्रत से उसकी डिवीज़न पूछी तो फिर कई चेहरों से सन्तोष का भाव मिट गया और बेसब्री से सब उसकी ओर देखने लगे।

साँवला-सा रंग, उभरे-से नाक-नक्श, दुबला-पतला और झेंपू-सा वह

युवक मुश्किल से चौबीस साल का होगा। घर की कती मोटी खादी के कपड़े और सिर पर एक-एक अंगुल के बाल, जिनके बीचोबीच खड़ी छोटी-सी चोटी में गाँठ लगा दी गयी थी। संक्षेप में सत्यव्रत सबको शास्त्री क़िस्म का नवयुवक लगा। और जब उसने बी० ए० में अपनी सेकण्ड डिवीज़न बतलायी तब तो सभी ने उसकी ओर ऐसे घूरा जैसे उसने कोई भारी अपराध किया हो, अथवा वह झूठ बोल रहा हो।

"कॉलेज तो फटीचर ही लगता है। न बिजली है, न पंखे। डेस्क भी बाबा आदम के ज़माने के हैं।" लेक्चररशिप के उम्मीदवार पाठक ने कहा। दरअसल सत्यव्रत की डिवीज़न का पाठक वग़ैरा पर कोई असर न पड़ा था।

मगर असिस्टैण्ट टीचरी के उम्मीदवारों ने पाठक की बात को अहमियत नहीं दी। असरार की बराबर बैठे केशवप्रसाद को सत्यव्रत के प्रति अत्यधिक सहानुभूति उमड़ आयी थी। उसके पास जाकर वह बोला, "आपने सेकण्ड डिवीजन में बी० ए० किया, फिर आप यहाँ सड़ने के लिए क्यों आ गये?"

सत्यव्रत इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका। उसके साँवले कपोलों और निश्छल आँखों में शर्म और असमर्थता का-सा भाव दौड़ गया।

श्रोत्रिय ने फिर पूछा, "क्या परसेण्टेज था बी० ए० में आपके मार्क्स का?"

"उनसठ प्रतिशत।" सत्यव्रत ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। फिर उसने बताया, "अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य विषय लेकर मैंने बी० ए० किया है, इसी वर्ष। संस्कृत में विशेष-योग्यता मिली है।"

श्रोत्रिय और केशवप्रसाद की जिज्ञासा समाप्त हुई। सत्यव्रत के पास बी० ए० में अंग्रेज़ी न होने की बात सुनकर शायद और लोगों को भी कुछ राहत मिली क्योंकि उनके चेहरे पर फिर वही भाव लौट आया था।

मगर राजेश्वर ठाकुर ने विचारपूर्वक निर्णय दिया, "आजकल संस्कृत में 'डिस्टिन्क्शन' का कोई मतलब नहीं होता, सत्यव्रतजी। इट इज़ ए डेड लैंग्वेज।" फिर कुछ सोचते हुए बोला, "क्या आपको इंग्लिश बिल्कुल नहीं आती?"

सत्यव्रत ने कहा, "जी, इस वर्ष केवल अंग्रेज़ी में बी० ए० करने की सोच रहा हूँ। वैसे···"

"तब तो आपने नाहक तकलीफ़ की।" राजेश्वर ने अफ़सोस ज़ाहिर किया। उसके होंठ बिचक गये और कन्धे ऊपर को उचककर अपनी जगह पर आ गये। फिर मन-ही-मन अपनी सफ़ेद पैण्ट और बुश्शर्ट की सफ़ेदी की तुलना जैसे सत्यव्रत के अपेक्षाकृत कम सफ़ेद कपड़ों से करता हुआ बोला, "फिर भी क्या हर्ज़ है लक ट्राइ करने में! वैसे आपकी 'क्वालिफ़िकेशन्स' कुछ सूट नहीं करती हैं।"

सत्यव्रत ने कोई प्रतिवाद नहीं किया।

मगर राजेश्वर की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि हिन्दी की लेक्चररशिप का उम्मीदवार पाठक बोल उठा, "माफ़ कीजिए ठाकुर साहब, आप अपनी 'डिग्री' वग़ैरा लेकर आये हैं न?"

"जी, हाँ।"

"और मार्क-शीट?"

"वह भी है। दिखाऊँ आपको?" राजेश्वर ने इस आकस्मिक प्रश्न को पूरी तवज्जह देते हुए पूछा।

"जी नहीं। बेहतर हो, आप ख़ुद ही उन्हें एक बार देख लें।" पाठक ने व्यंग्य किया।

"जी!" राजेश्वर ने अचकचाकर कहा, और इधर-उधर लोगों की प्रतिक्रिया देखने लगा कि कितने लोग इस व्यंग्य को समझ सके हैं। सत्यव्रत के मुख पर निश्छल शान्ति थी। पर हिन्दी की लेक्चररशिप के सारे उम्मीदवार होंठों की कोरों में मुस्करा रहे थे।

असिस्टैण्ट टीचर-पद के उम्मीदवारों की प्रतिक्रिया पढ़ने का उसमें साहस नहीं हुआ। धड़कते दिल पर कृत्रिम आश्चर्य-मिश्रित झुँझलाहट का आवरण चढ़ाकर वह फिर बोला, "आपका मतलब मैं समझा नहीं।"

इस बार बात पाठक के बराबर बैठे हुए हिन्दी की लेक्चररशिप के ही दूसरे उम्मीदवार मुरारीमोहन माथुर ने पकड़ ली, बोला, "दरअसल आप नहीं समझे होंगे, क्योंकि पाठकजी ने ज़रा बारीक बात कह दी। दरअसल उनका मंशा यह था कि सत्यव्रतजी की 'क्वालिफ़िकेशन्स' की बजाय

अगर आप अपनी 'क्वालिफ़िकेशन्स' पर ग़ौर फ़रमायें तो शायद आपको अपनी 'लक ट्राइ' करने की भी ज़रूरत महसूस न हो।"

माथुर का इशारा राजेश्वर की सप्लीमेण्टरी की तरफ़ था। मगर ये 'लक ट्राई' का खटका ऐसा हुआ कि सारे उम्मीदवार एकबारगी हंस दिये। सिर्फ़ सत्यव्रत नहीं हंसा। उसके शान्त, पवित्र बौद्ध-मुख पर एक करुणा-सी उभर आयी। उसे शायद लगा कि ठाकुर पर अत्याचार हो गया। और वह उसके पक्ष में कुछ कहने की सोचे कि तभी राजेश्वर ख़ुद ही बोल पड़ा, "आप आख़िर कहना क्या चाहते हैं?"

माथुर ने फिर उसी का वाक्य दोहरा दिया, "दरअसल आपने नाहक तकलीफ़ की। आपकी 'क्वालिफ़िकेशन्स' कुछ सूट नहीं करती हैं।"

हँसी का एक फ़व्वारा तेज़ी से कमरे में फैल गया।

राजेश्वर ने कुछ कहा, पर शोर में उसकी बात अनसुनी रह गयी और वह हँसी के शान्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। लोग हँस-हँसकर दुहरे-तिहरे हुए जा रहे थे। सत्यव्रत के मुख पर करुणा और उभर आयी थी। वह हँसी बन्द होने की प्रतीक्षा में क्षमायाचना जैसा भाव लिये राजेश्वर की ओर निहारे जा रहा था। राजेश्वर मन का ग़ुबार मुँह में लिये बैठा था। एक भाव तेज़ी से उसके मन में दौड़ रहा था कि ये सब दयनीय हैं। इन हँसनेवालों में से अधिकांश इण्टरव्यू खत्म होते ही पिटे हुए सिपाही की तरह कमरे से बाहर निकलेंगे और तब वह उनकी ओर जिस अकड़ से देखेगा वह विजेता की अकड़ होगी। मगर अब…अब तो उसकी हेठी हुई। बड़ी हेठी हुई।…और इस विचार का अनुसरण एक तीखे से वाक्य ने किया जिसके उच्चरित होने से पूर्व ही अचानक मास्टर उत्तमचन्द बराबरवाले प्रिंसिपल के कमरे से वहाँ आ गये।

गंजा सिर, चौड़ा माथा, लम्बा-सा मुँह, उभरी हुई बड़ी-बड़ी आँखें, गोरा रंग, लम्बा क़द और उस पर खादी का लम्बा-सा कुरता-पाजामा। उत्तमचन्द को देखते ही हॉल में ख़ामोशी छा गयी और लोग अनायास अपने-अपने स्थान से उठ खड़े हुए।

शायद हँसी की आवाज़ मैनेजिंग-कमेटी के सदस्यों के कानों तक भी पहुँच गयी थी। और उन्हें अनायास ही यह बोध हो गया था कि काफ़ी

देर हो चुकी है, अब इण्टरव्यू शुरू हो जाना चाहिए। इसीलिए उन्होंने मास्टर उत्तमचन्द को वहाँ भेजा था।

मास्टर उत्तमचन्द ने सबसे बैठने का इशारा करते हुए वाणी में बेहद मिठास लाकर कहा, "आपकी बेचैनी बिल्कुल नेचुरल है। मगर प्लीज़, आप थोड़ा-सा धैर्य और रखें, पाँच मिनट के अन्दर ही हम इण्टरव्यू शुरू कर देंगे। बस सेक्रेटरी साहब की वेट कर रहे हैं।" और मास्टर उत्तमचन्द ने मुस्कराते हुए सबकी ओर देखा। लोगों ने सोचा, वे कुछ और कहेंगे पर तभी वे आकस्मिक रूप से बाहर निकल गये।

पाठक ने कहा, "मुझे आशा थी कि भाषण थोड़ा लम्बा चलेगा। मगर बेहद शरीफ़ आदमी निकला।" राजेश्वर ठाकुर जो मास्टर उत्तमचन्द के आ जाने के कारण अपनी बात कहने का अवसर न पा सका था और जिसके भीतर अपनी हेठी की भावना अभी भी कुलबुला रही थी, तेज़ी से बोला, "आपकी सारी आशाएँ ग़लत ही निकलती हैं, पाठकजी।"

इतना कहकर राजेश्वर ने हल्का-सा पाज़ दिया। लोगों की प्रतिक्रिया देखी। कोई नहीं हँसा तो उसे विफलता का अहसास और ज़ोरों से हुआ; बोला, "हाँ तो माथुर साहब, आप मेरे बारे में फ़रमा रहे थे कि मेरी 'क्वालिफ़िकेशन्स' सूट नहीं करतीं। आइए तो फिर दस-बीस रुपये की शर्त हो जाये इसी बात पर!"

फिर ठाकुर थोड़ा रुका और लोगों के भावशून्य-से चेहरों पर अपनी बात की प्रतिक्रिया खोजते हुए बोला, "किसमें इतना गुर्दा है जो मेरा सलेक्शन रोक दे! कॉलेज की ईंट-से-ईंट बज जायेगी। ठकुरात के तीन सौ लड़के हैं कॉलेज में। अगर मुस्लिम-स्कूल में चले गये तो यहाँ तनख्वाह भी नहीं पटेगी मास्टरों की।" फिर थोड़ा रुककर बोला, 'अपना क्या है, नौकरी मिली न मिली!" फिर सत्यव्रत की ओर इशारा करके कहा, "मुझे तो इस बेचारे पर तरस आ रहा है। मेरे घर छह हलों की खेती है। एक हाली को एक मास्टर की तनख्वाह देता हूँ। न होगा एक हल ही सँभाल लूंगा, पर इनके बस का तो वह भी नहीं।"

माथुर ने कहा, "आपका हृदय बहुत दयावान है। आपकी दया का सहारा पाकर सत्यव्रतजी का उद्धार हो गया। आप धन्य हैं।"

एक हल्का-सा ठहाका फिर गूंज उठा। ठाकुर का गोल मुंह और विकृत हो गया। उसका जतन से संभाला हुआ सन्तुलन बिखर पड़ा। कनपटियां सुर्ख़ हो गयीं। बड़ी-बड़ी आँखों से चिंगारियां-सी उगलते हुए बोला, "तो साफ़-साफ़ ही सुन लीजिए। असिस्टैण्ड टीचरों और प्रोफ़ेसरों का सेलेक्शन कभी का हो चुका। यह इण्टरव्यू तो एक फ़ारमेल्टी है, फ़ारमेल्टी।" फिर उँगली से कोने में बैठे असरार साहब की ओर इशारा करते हुए राजेश्वर बोला, "मेरे साथ दूसरा एपाइण्टमेण्ट इनका होगा। ये कोतवाल साहब के आदमी हैं, क्यों साहब ?" और उसने असरार की ओर देखा।

माथुर ने धीरे से पाठक के कान में कुछ कहा। असरार ने कोई उत्तर न दिया।

राजेश्वर ने उँगलियां फैलाकर डेस्क पर चपत मारी और मुट्ठी बांधते हुए बोला, "मैं लिखकर देता हूं अगर मेरी बात में ज़रा-सी भी चेंज हो जाये।" इतना कहकर विजेता के भाव से उसने फिर सारे उम्मीदवारों की ओर देखा।

और जैसे कोई ज़ालिम मास्टर छोटे विद्यार्थियों की कक्षा में चिल्लाकर हुक्म दे, 'चुप रहो' और निःशब्द शान्ति छा जाये—कुछ उसी तरह की निस्तब्धता उस हॉल में छा गयी। डरे हुए बच्चे जैसे अपनी कापी-किताब टटोलने लगते हैं वैसे ही सब लोग अपने कागज़-पत्र और सर्टिफ़िकट देखने लगे। सबको राजेश्वर ठाकुर की डेस्क पर रखी बन्द मुट्ठी में अपना भविष्य दिखायी देने लगा। मगर कोई कुछ नहीं बोला।

सत्यव्रत को लगा कि उसी के कारण वातावरण में इतनी कटुता आ गयी है और अब उसे ही इसके निराकरण के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए।

इस खामोशी का अहसास शायद राजेश्वर ठाकुर को भी हुआ और वह एक हल्की-सी बेमानी हँसी यूं ही हँस दिया। मगर और उम्मीदवारों को वह हंसी भी चंगेज़ के उस अट्टहास-जैसी लगी जो उसने भारत की गलियों-सड़कों में ख़ून की नदियां बहाकर किया था। आशंका और आतंक ग्रस्त सब अपने-अपने भविष्य के अन्धकार में खो गये। जहां से चले थे वहीं

जा पहुंचे। लगा जैसे अभी-अभी सब उम्मीदवार आकर उस कमरे में इकट्ठे हुए हों। अपरिचय का मौन सबके बीच हो। अभी थोड़ी ही देर में सब एक-दूसरे से घुल-मिल जायेंगे। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। सब अपनी-अपनी व्यस्तता को बढ़ाने की कोशिश करने लगे। कोई अपनी 'मार्क-शीट' ढूंढ़ने लगा तो कोई 'डिग्री'।

"ईश्वर जाने मेरे करेक्टर सर्टिफ़िकेट कहां चले गये।" यह वाक्य पाठक ने माथुर से इतने धीरे से कहा कि माथुर ने कोई उत्तर नहीं दिया। केशव ने असरार से धीरे से जाने क्या बात की। पर उससे भी ख़ामोशी कम नहीं हुई। एक बोझिल-सा अदृश्य जाल सबके ऊपर पड़ा था और सब जैसे उसके कोनों को कसकर पकड़े थे। सहसा सत्यव्रत ने उसका एक कोना छोड़ दिया; बोला, "राजेश्वर भाई ने ठीक ही कहा है। मुझे पहले अंग्रेज़ी लेकर बी० ए० कर लेना चाहिए, तभी बात बनेगी।"

"वही तो।" राजेश्वर ठाकुर ने समझौते का भाव विस्तीर्ण करते हुए कहा, "वरना सत्यव्रतजी के टैलेण्ट में किसे शक है!"

दो-तीन बार गला साफ़ करने के बहाने खाँसकर राजेश्वर ने ख़ामोशी को तोड़ दिया। फिर जेब से कैंची की डिब्बी निकालते हुए जाने किसे सम्बोधित करके कहा, "यहां सिगरेट पीने की मनाही तो नहीं होगी। ये कोई क्लास-रूम थोड़े ही है!"

किसी ने प्रतिवाद नहीं किया। असरार ने वातावरण का रुख बदला, "सब चलता है, यार! हमारे तो एक टीचर क्लास में पढ़ाते हुए सिगरेट पिया करते थे। कहते थे, बिना सिगरेट के मुझे पढ़ाने का 'इन्सपिरेशन' ही नहीं मिलता। प्रिंसिपल ने भी एतराज़ किया, मगर उन्होंने साफ़ कह दिया कि साहब चाहे मुझे स्कूल से निकाल दीजिए, मगर मेरी सिगरेट नहीं छूट सकती। आखिर कुछ भी नहीं हुआ।"

श्रोत्रिय ने ठाकुर के पैकेट से एक सिगरेट निकालते हुए कहा, "अपने-अपने ढंग की बात है भई! हमारे स्कूल में तो 'एक्स्प्लेनेशन काल' हो गया था इसी बात पर एक टीचर का।" और उसने सिगरेट सुलगा ली। एक सिगरेट असरार ने ली। प्रोफ़ेसरी के उम्मीदवारों में से किसी ने सिगरेट नहीं ली हालांकि वे पीते थे। ठाकुर ने सबके सामने पैकेट घुमाया

पर सत्यव्रत के सामने तक बढ़ाकर भी हाथ खींच लिया; बोला, "माफ़ कीजिए, आप तो पीते ही नहीं होंगे ?"

"जी हाँ, मैं नहीं पीता।" सत्यव्रत ने कहा और सरलता से मुस्करा दिया।

सबके चेहरों पर पवित्र-सी हँसी फैल गयी। वातावरण का बोझ कुछ हल्का-सा हुआ। लेक्चररशिप के उम्मीदवारों ने एक-दूसरे की ओर देखा। धीरे से पाठक माथुर से बोला, "तुम भी पियो न !"

माथुर बोला, "क्या आफ़त है, यार ! भाग्य का निर्णय हो ले, उसके बाद गूंगे की दुकान पर चलकर चाय भी पियेंगे और सिगरेट भी।"

पाठक आश्वस्त हो गया। सिगरेट पीने की प्रबल इच्छा को मारने के लिए उसने दोनों हाथ उठाकर एक जमुहाई ली और साँस छोड़ते हुए बोला, "ओऽऽम्।"

अचानक ही श्रोत्रिय और असरार उछलकर खड़े हो गये और डेस्क से रगड़कर उन्होंने सिगरेटें बुझा दीं। उन्हें मास्टर उत्तमचन्द की झलक मिल गयी थी। और लोग भी उठ खड़े हुए। राजेश्वर भी खड़ा हो गया। मगर उसने सिगरेट नहीं बुझायी। मुँह में धुआँ भरे वह मास्टर उत्तमचन्द की नज़रें दूसरी ओर घूमने की प्रतीक्षा करने लगा।

उत्तमचन्द ने कहा, "आप शायद 'स्मोकिंग' कर रहे थे ?" उनकी वाणी में मिठास पहले से कुछ कम थी। बोले, "मुझे बतायें, कौन साहब स्मोकिंग कर रहे हैं ?"

सब चुप रहे किन्तु राजेश्वर ने मुँह का धुआँ बाहर निकालते हुए कहा, "कहिए ! एक तो मैं था, और दूसरे असरार साहब और सोतीजी !"

असरार और श्रोत्रिय दोनों को बुरा लगा, मगर चुप रहे। उत्तमचन्द बोले, "क्या आपको मालूम नहीं कि 'कॉलेज-प्रीमीसेज़' में सिगरेट नहीं पीनी चाहिए ?"

राजेश्वर ने कहा, "यहाँ कोई बोर्ड तो नहीं लगा है !"

इसके बाद राजेश्वर के साथ सभी की प्रश्नवाचक दृष्टियाँ मास्टर उत्तमचन्द के चेहरे पर जा लगीं।

मास्टर उत्तमचन्द के माथे पर दो बारीक बल पड़ गये। उन्होंने ग़ौर से राजेश्वर की ओर देखा। पेंसिल निकालकर तीनों नाम नोट किये और तुरन्त शान्त होकर बोले, "अब इण्टरव्यू शुरू होनेवाला है। हेड क्लर्क आप साहबान में से एक-एक का नाम पुकारेंगे। पहले हम असिस्टैण्ट टीचर्स का इण्टरव्यू लेंगे, फिर हिन्दी-लेक्चरर्स का। इण्टरव्यू के बाद भी कोई साहब यहाँ से जायें नहीं।"

और इतना कहकर वह तेज़ी से कुरता फरफराते दरवाज़े से बाहर निकल गये और फिर एक ही क्षण बाद लौटकर पुनः प्रवेश करते हुए बोले, "आप साहबान एजुकेटेड लोग हैं, और यह कॉलेज एजुकेशन का मन्दिर है। आपका फ़र्ज़ है कि इसकी 'सैन्कटिटी' की रक्षा करें। आप सोचें कि यह स्थान सिगरेट पीने की जगह नहीं हो सकता।"

और मास्टर उत्तमचन्द फिर बाहर चले गये। उन्होंने क्या कुछ नहीं कहा था। मगर उनकी आवाज़ में लेश-मात्र भी कड़ुवाहट नहीं थी। आँखें बन्द करके कोई सुनता तो उनके वाक्य किसी जैन सन्त के प्रवचन प्रतीत होते।

उत्तमचन्द का सबसे ज़्यादा प्रभाव श्रोत्रिय पर पड़ा था। उनके जाते ही वह बोला, "नाम नोट करके ले गया है।" और एक आशंका से उसका दिल धड़क उठा।

राजेश्वर बोला, "अरे सैकड़ों फिरते हैं इस जैसे! इसकी औक़ात क्या है? मेम्बरों के पीछे दुम हिलाता फिरता है कुत्ते की तरह।"

असरार ने कहा, "औक़ात तो बहुत है इसकी, ठाकुर साहब! कॉलेज का बिना ताज का बादशाह है। प्रिंसिपल तो नाम-मात्र का होता है यहाँ। असली प्रिंसिपल यही है। स्याह करे या सफ़ेद, पूरा सियासत-दाँ है।"

"तब तो बड़ा बुरा हुआ आप लोगों के हित में।" केशव ने उन सबके अन्धकारमय भविष्य की कल्पना में अपने उज्ज्वल भविष्य को निहारते हुए कृत्रिम सहानुभूति से कहा।

श्रोत्रिय 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने ही जा रहा था कि असरार ने फिर कहा, "नहीं जी, एपाइण्टमेण्ट में इसका क्या हाथ? हाँ, एपाइण्टमेण्ट के बाद अलबत्ता तकलीफ़देह साबित हो सकता है।"

राजेश्वर ने कहा, "बहुत देखे हैं इस जैसे ! एक वार एपाइण्टमेण्ट-लेटर मिल जाये, फिर देखना। चूरन बनाकर फांक जाऊंगा साले को। हमारी सियासत नहीं देखी अभी…"

और तभी बहुप्रतीक्षित क्लर्क, पवन बाबू लगभग लुढ़कते हुए-से कमरे में आये। बातचीत का सिलसिला रुक गया। सब उनकी ओर देखने लगे। खासे मज़ेदार आदमी थे। लम्बाई-चौड़ाई एक-सी थी। गोलमटोल, छोटा क़द। हाथ में एक फ़ेहरिस्त लिये थे, जिसमें उम्मीदवारों के नाम लिखे थे। कमीज़ और नेकर पहन रखी थी। नाक पर आस्तीन का घिस्सा लगाते हुए पवन बाबू ने नेकर की जेब से लाल-नीली पेंसिल निकाली और उम्मीदवारों की हाज़िरी लेनी शुरू की।

—मुरारीमोहन माथुर !

—यस प्लीज़।

—रामस्वरूप पाठक !

—यस प्लीज़।

फिर पाण्डे, निगम, गिरीश, हरीश, रोहतगी, वर्मा सबका नम्बर आया और सब, जो अब तक चुप थे, 'यस प्लीज़' बोलते गये। फिर असिस्टैंण्ट टीचर्स की बारी आयी।

—सुरेशचन्द्र सोवी !

—यस सर।

—केशवपरसाद !

—यस सर।

—असरार अहमद !

—यस प्लीज़।

—राजेश्वर ठाकुर !

—यस।—ठाकुर ने न 'सर' लगाया, न 'प्लीज़'। हथौड़े जैसा 'यस' पवन बाबू के सिर पर दे मारा। पवन बाबू सहसा हाज़िरी लेते-लेते ठिठके और चश्मे में से दोनों आँखें उसकी ओर चमकायीं, फिर और सबको उँगलियों पर गिनते हुए बोले, "सब प्रिज़ेण्ट हैं।"

पवन बाबू हाज़िरी लेकर चलने को हुए तो श्रोत्रिय ने पुकारकर

कहा, "मास्साहब, एक मिनट। ग्रँऽऽ, कुल कितने कैण्डीडेट बुलाये गये हैं असिस्टैण्ड टीचरी के लिए ?"

"जितने यहाँ प्रिज़ेण्ट हैं।" पवन बाबू ने ऐनक को ऊपर उठाते हुए कहा।

"क्या इतने ही लोगों ने एप्लाइ किया था ?" केशव ने फिर पूछा। दरअसल श्रोत्रिय और केशव यह जानना चाहते थे कि इण्टरव्यू के लिए कैण्डीडेट्स को किस आधार पर बुलाया गया है।

"एप्लाइ तो पचासियों ने किया था।" पवन बाबू बेरुखी से बोले।

"तो फिर इण्टरव्यू के लिए लोगों को किस आधार पर बुलाया गया है ?" श्रोत्रिय ने सीधा-सा सवाल किया।

"ये बातें आप कमेटी के मेम्बरों से पूछिएगा।" पवन बाबू ने उसी बेरुखी से कहा और एक क्षण रुककर बोले, 'श्री सत्ते वरत !"

सत्यव्रत इन लोगों की बातचीत में खोया था। अपना नाम सुना तो तुरन्त उठकर खड़ा हो गया। पवन बाबू ने उसे अपने पीछे आने का इशारा किया और बराबरवाले प्रिंसिपल के कमरे की ओर चल दिये, जहाँ कमेटी के सदस्य बैठे हुए थे।

पवन बाबू के जाने के बाद राजेश्वर बोला, "साला अब कैंडे पर आया। हम तो 'यस प्लीज़' और 'यस सर' कहें, और ये हमारे नाम के साथ 'श्री' या 'मिस्टर' तक नहीं लगा सकता।"

असरार, जो राजपुर का ही रहनेवाला था, बोला, "बड़ा जलैहंडा है। उत्तमचन्द का खास गुर्गा है यह। हर साल प्रिंसिपल को निकलवा देता है उससे मिलकर।"

"अच्छा !" श्रोत्रिय ने पूछा, "आजकल प्रिंसिपल कौन है ?"

"उत्तमचन्द ही 'ऑफ़ीशिएट' कर रहा है।" असरार बोला, "प्रिंसिपल की तलाश है।"

"तलाश-वलाश की बात नहीं है," राजेश्वर ने कहा, "उपप्रधानजी का छोटा लड़का इस साल बी० टी० में दाखिला ले रहा है। देख लेना, बी० टी० करते ही प्रिंसिपल न हो जाये तो !"

"मगर रूल्स के हिसाब से तो कमेटी के मेम्बर का कोई रिश्तेदार

कॉलेज में नौकरी नहीं कर सकता।" केशव बोला।

राजेश्वर हँस दिया। पाठक ने कहा, "छोड़ो यार रूल्स-वूल्स में क्या रखा है!"

और एक क्षण से लिए जैसे सब फिर किसी गहरे सोच में डूब गये। असिस्टैण्ट टीचर्स की पोस्ट के उम्मीदवारों को तो जैसे अपने भविष्य का पता था मगर हिन्दी की लेक्चररशिप के उम्मीदवार गहरे असमंजस में थे। श्रोत्रिय बराबर यही सोचे जा रहा था कि आज अगर वह सिगरेट न पीता तो क्या बिगड़ जाता? बड़ी ग़लती हुई। कभी-कभी उसे यह भी खयाल आता था कि पता नहीं चाचा वकील साहब के यहाँ गये भी होंगे या नहीं। कहीं यहाँ तक आना ही अकारथ न जाये।

सलेक्शन कमेटी

इण्टरव्यू खत्म हो चुके थे, मगर उस कमरे में गहमागहमी थी। अलग-अलग स्वरों में दस-बारह आवाज़ें एक-दूसरे पर प्रस्थापित होने की कोशिश कर रही थीं। खड़ी बोली एक तो यूँही खड़ी होती है, फिर अपने उद्‌गम-स्थान ज़िला बिजनौर में वह ज़रा स्वाभाविक रूप में चलती है। इसलिए साधारण-सी बहस एक छोटे-मोटे बलवे का मज़ा दे रही थी। आखिर लाला हरीचन्द से न रहा गया। उन्होंने मेज़ पर एक छोटा-सा घूंसा मारकर कहा, "भय्यो! जरा सोच्चो तो। बरोब्बर के कमरे में सारे मास्टर लोग बैट्ठे हैं। कोई सुनैगा तो क्या कहवैगा?"

मैनेजिंग-कमेटी के सारे सदस्य इण्टरव्यू-कमेटी के भी सदस्य थे। चुनाँचे प्रिंसिपल के कमरे से बड़ी मेज़ निकलवा दी गयी थी ताकि तेरह कुरसियाँ और एक छोटी-सी मेज़ उसमें आ सके। एक अतिरिक्त कुरसी उम्मीदवार के बैठने के लिए रखी गयी थी जो उस छोटी-सी मेज़ के बिल्कुल सामने थी। मेज़ के बीच में कमेटी के प्रेसीडेण्ट लाला हरीचन्द, दाहिनी ओर वाइस-प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिंह और बायीं ओर सेक्रेटरी श्री गनेशीलाल बैठे थे। सेक्रेटरी की बराबर में एक बिना हत्थे की कुरसी

पर ज्वाइण्ट-सेक्रटरी गुलज़ारीमल और वाइस-प्रेसीडेण्ट के बाजू में कमरे के बाहर पड़ा हुआ एक स्टूल उठाकर मास्टर उत्तमचन्द बैठे हुए थे।

लाला हरीचन्दजी की बुजुर्गी की क़स्बे में भी इज़्ज़त थी और कमेटी के मेम्बर भी उनकी इज़्ज़त करते थे। इसलिए थोड़ी देर के लिए कमरे का वातावरण शान्त हो गया और लोग धीरे-धीरे बातें करने लगे। मगर जब फिर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाये तो आवाज़ें ऊँची उठने लगीं। एक मेम्बर दूसरे से ऊँचा बोलकर अपनी बात मनवाने की कोशिश करने लगा और इस प्रतिस्पर्द्धा ने फिर लाला हरीचन्द के कोमल हृदय को छू लिया। लालाजी बोले, "भय्यो, बड़े अफसोस का मुकाम है। अब लौ आप लोग किसी फैसले पर नहीं पहुंचे। इत्ती देर में तो सुनते हैं जरमनी-वाले ने पूरा जापान जीत लिया था। तो भय्यो, मैं तो चला भट्ठे पर। मेरी पचास हजार ईंटों का चक्कर पड़ा है। आप पंचों की जैसे मरजी हो मुझे वहीं खबर कर दीजो। मैं आप लोग्गों से बाहर थोड़े ही हूँ!"

लालाजी का ईंटों का खासा-बड़ा कारोबार था। सारे इलाके के मकान उन्हीं के भट्ठे की ईंटों से बने थे। आजकल उनका बिजनेस शहर मे ज़रूर मन्दा था, मगर आसपास के गाँवों में धड़ाधड़ पक्के मकान बनते जा रहे थे। लालाजी अपनी बात खत्म करते हुए उठने को हुए तो उनके साथ ही मास्टर उत्तमचन्द भी उठ खड़े हुए। लालाजी को उनकी छड़ी देते हुए उत्तमचन्द दरवाज़े की ओर बढ़ने ही वाले थे कि सेक्रेटरी गनेशीलाल अवसर का लाभ उठाकर बोले, "मामले को बिना चित्त-पट्ट करे हम आपको जाने नहीं देंगे, लालाजी। हमारा भी बजार का दिन है आज। पचास कलदार का तो सेंधा नमक बिक गया होत्ता अब लौं। मगर मास्टरों के सलेक्शन का मामला अटका है तो इसका फैसला भी आप ही करेंगे।"

गनेशीलाल की पसरहट्टे की दुकान थी। लालाजी को उठते देख उन्हें सहसा दूकान का ध्यान आ गया और इस बात का भी कि आज बाज़ार का दिन है। और हालांकि वह अपने छोटे भाई सोहन को, जो लेन-देन का काम करता था, दुकान पर छोड़ आये थे, पर उनके मन को तसल्ली नहीं हो रही थी। क्योंकि कागज़ पर अँगूठा लगवाकर रुपया देना, और

तराज़ू पर अँगूठा लगाकर सौदा देना, दो अलग चीज़ें होती हैं। और इस बारे में उन्हें अपने भाई की बुद्धि पर ज़रा भी भरोसा नहीं था। पर यहाँ भी उसी भाई की इज़्ज़त का सवाल था सो बीच में से कैसे उठते?

तभी वाइस-प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिंह सिर की गोल टोपी सँभालते हुए बोल उठे, "हाँ, लालाजी, अब तो फ़ैसला आपके ही हाथ में है।" फिर अपने साथियों की ओर देखकर वह बोले, 'मैं अपनी तरफ़ से लालाजी को पूरे इख़्तियार देता हूँ। जिसे चुन लेंगे मुझे मंज़ूर होगा।" अब कोई चारा ही न था। चुनाँचे तुरन्त ही सेक्रेटरी गनेशीलाल ने भी अपनी ओर से लालाजी को सारे अधिकार सौंप दिये। और लालाजी, जो इस स्थिति को टालने के लिए ही वहाँ से खिसक जाना चाहते थे, बुरी तरह फँस गये।

बात यह थी कि मास्टरों के चुनाव में लालाजी को छोड़कर शेष बारह मेम्बरों में से छः-छः के दल बन गये थे। एक दल गनेशीलाल के साथ था और दूसरा चौधरी नत्थूसिंह के। लालाजी ने आज तक किसी को नाराज़ करना सीखा ही न था। सदा ठकुर-सुहाती ही कही थी।

कुछ देर माथे पर हाथ रखकर सोचने के बाद लालाजी बोले, 'अब देक्खो कित्ती सान्ती है! ऐसे में मन से विचार भी उपजता है।"

वास्तव में कमरे में निस्तब्धता छा गयी थी। दोनों पक्षों के लोग अपनी-अपनी सफलता की आशा में मुँह बाये लालाजी की ओर ताक रहे थे। लालाजी पर सबको विश्वास था कि फ़ैसला हमारे पक्ष में करेंगे। तभी लालाजी बोले, "जग-जाहिर बात है भय्यो कि मास्टरों के चुनाव में दुनिया के हर स्कूल में प्रिंसिपल जरूर रहवै है। मगर हमारे यहाँ कोई प्रिंसिपल नहीं है इसलियो अगर पंचो की राय हो तो उत्तमचन्द का वोट भी ले लिया जावै, और वो जिसकू कहै उसै ही हम रख लेवें।'

लालाजी ने अपनी समझ से अपने बच निकलने की पूरी तैयारी की थी। पर दोनों पक्ष आज जैसे लालाजी की अपने प्रति वफ़ादारी को तौल लेना चाहते थे। अतः कोई राज़ी नहीं हुआ। गनेशीलाल ने तो यहाँ तक कहा कि उत्तमचन्द लौण्डा है। चौधरी नत्थूसिंह ने कहा कि लालाजी के होते हुए उससे राय माँगना निहायत बेवकूफ़ी है।

अपना नाम सुनते ही उत्तमचन्द कुरसी से कुछ आगे को झुक आये

मगर सेक्रेटरी और वाइस-प्रेसीडेण्ड की अपने सम्बन्ध में ऐसी राय सुनकर उन्होंने टेढ़ी करते हुए अपनी गर्दन झुकायी और मुख पर सहमति-सूचक सलज्ज मुस्कान बिखेरकर असमर्थता में हाथ जोड़ दिये।

लालाजी की व्यावहारिक बुद्धि को यह समझने में देर नहीं लगी कि अब उनकी परीक्षा का समय आ गया है। अतः उन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित किया और बोले, "तो भय्यो, बखत कू क्यूँ बरबाद करा जावै। उधर मास्टर लोग भी सुबह से इन्तजारी में बैट्ठे हैं। अगर पंच बुरा न मान्नैं तो दोन्नों तरफ का एक-एक आदमी रुक जावैं, और बाक्की पंच लोग दूसरे कमरे में चले जावैं।"

बात माकूल थी। किसी को एतराज़ नहीं हुआ। सारे मेम्बर खुद ही कमरे से उठकर चले गये। केवल गनेशीलाल और चौधरी नत्थूसिंह ही वहाँ रह गये। लालाजी ने कहा, "हाँ, भय्या गनेसीलाल, अब कहो क्या बात है?"

गनेशीलाल खखारकर गला साफ़ करते हुए बोले, "लालाजी, आप तो जान्नैं ही हैं। दसियों साल्लों से कमेटी का मिम्बर हूँ। आज लौं मैंन्ने सदा न्याय की बात करी है। अब यही लो। आपने हिन्दी के प्रोफेसरों में पाठक को चुना। मैंन्ने चूं-चकर करी? भगवान जान्नै है मेरे साले की चिट्ठी धरी है मेरी जेब में। उनने रोहतगी के लियो लिक्खा था। पर मैंन्ने करा आपका विरोध?" और इतना कहकर गनेशीलाल जेब से चिट्ठी निकालने लगे।

किन्तु उनसे पहले ही चौधरी नत्थूसिंह ने अपनी जेब से एक चिट्ठी निकालकर लालाजी के सामने धर दी। बोले, "चिट्ठी क्या मेरे पास नहीं आयी! वह जो वर्मा था, मेरे बड़े लड़के की बहू का सगा मुमेरा भाई था। बल्कि मेरे यहाँ ही ठहरा था। कित्ती हिजो होगी मेरी, लड़के की सुसराल में। पर मैंन्ने ही क्या कहा? क़ायदे की बात पै सबको झुकना पड़ता है।"

लालाजी को इन चिट्ठियों का पता पहले ही लग चुका था। उनके पास तो इस मरतबा कोई चिट्ठी नहीं आयी, पर पाठक के लिए डिप्टी साहब का ज़बानी सन्देश उन्हें ज़रूर मिला था। पाठक डिप्टी साहब का भतीजा था, और डिप्टी साहब की अदालत में लालाजी के भट्टे से

सम्बन्धित मामले रोज़ाना जाते ही रहते थे इसलिए जान-पहचान भी गाढ़ी थी। अतः उनका काम करना ही था। जब उन्हें उत्तमचन्द ने बताया कि गनेशीलाल और चौधरी नत्थूसिंह के पास भी हिन्दी के प्रोफेसर के लिए उनकी रिश्तेदारी से चिट्ठियाँ आयी हैं तो लालाजी ने उत्तमचन्द की ही मदद लेकर सात और मेम्बरों को गाँठना शुरू किया। और भगवान की दया से बात बन गयी। डिप्टी साहब की अदालत में किसे काम नहीं पड़ता ? इसलिए पाठक का नाम आते ही सात हाथ एकदम उठ गये और आठवाँ हाथ लालाजी का। हिन्दी के लेक्चरर के लिए निर्विरोध चुनाव हो गया पाठक का।

अतः दोनों चिट्ठियाँ बिना पढ़े ही लौटाते हुए लालाजी बोले, 'चिट्ठी-पत्री तो आवैं ही हैं, भय्या। पर हमें तो न्याय करना है। हमें तो ऐसा आदमी लेना है जो हमारे बच्चों कू चार अच्छी बातें सिखावैं और आदमी बनावैं। अब पाठक को ही लो। मेरा उससे क्या वास्ता, क्या रिस्ता ? वो बाह्मन, मैं बनिया। पर मुझे उसकी सिच्छा सुद्ध लगी। पंचों की राय मिली और हमने उसे ले लिया।"

गनेशीलाल और चौधरी नत्थूसिंह दोनों पाठक की शिक्षा की हक़ीकत समझते थे। पर मौक़ा कुछ कहने का नहीं था। अब तो झगड़ा असिस्टैण्ट टीचर्स के चुनाव का था। गनेशीलाल ने बात शुरू की। बोले, "बीती ताही बिसार दे—ऐसा बजुर्गों ने कहा है। परन्तू लालाजी न्याय के विरुद्ध जो बात होवै, सो मुझसे बरदास्त नहीं होती। अब इनसे पूच्छो। चौधरी साहब खामखाँ उस मुसलमान्न लौण्डे को मास्टर रखना चाव्हैं हैं। मैं तो कहूँ कि हिन्दू कालिज नाम रखकै अगर आप इसमें मुसलमान्नों कू भरैं हैं तो कहाँ रयी आपकी मरयादा, कहाँ रया धरम ? क्या सारे हिन्दू लौण्डे मर गये ?"

गनेशीलाल ने अपने हिसाब से बात को सैद्धान्तिक मोड़ देकर धर्म के नुक़्ते पर लाकर छोड़ दिया। वह जानते थे कि यह लालाजी का मर्म स्थान है। फिर बोले, "वह सोत्ती बच्चा है, बाह्मन है, पास का है। दस-बीस रुपये कम पर तैयार हो जावैगा। मैंने इनसे कया कि उस मुसलमान्न से तो वह बाह्मन का लौण्डा ही लाख जगह अच्छा है। पर इनकी समझ

में काए कू आवैं।"

लालाजी बोले, "बोल्लो भय्या नत्थूसिंह, क्या कहो हो?"

नत्थूसिंह बोले, "लालाजी, बात हिन्दू-मुसलमान की नहीं है। बात दरअसल ये है कि इनके छोटे भाई सोहन के पास आज ही रामचन्दर वकील साहब का लम्बा-सा तार आया है बिजनौर से। इसीलिए ये सोती को लेना चाह रहे हैं।"

फिर अगली बात सोचने का अवसर ढूंढ़ते हुए बोले, 'क्यों गनेशी-लाल! बोलो, क्या मैंने कुछ ग़लत कहा?"

गनेशीलाल फ़ौरन सिद्धान्त की पटरी से उतर गये; बोले, 'मैं ये कब कहूं तार नई आया! सो मेरा सोत्ती के लिए कहना ठीक भी है। पर तुम्हारे पास तो कोई तार भी नई आया, फिर तुम क्यों उस मुसलमान लौण्डे के पीछे पड़े हो? न सूरत, न सकल, न अकल। कम से कम सोत्ती…"

और सोती की प्रशंसा का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि लालाजी ने बात काटकर कहा, "मुझे कुछ खियाल नहीं आ रया, भैय्या। ये मुसलमान लौण्डा कौन-सा था?"

"अजी वही इकरार या इसरार, क्या नाम है उसका? वही जो भैंडेलोवाला पजाम्मा पहनै था।" गनेशीलाल ने विरक्ति से कहा।

चौधरी नत्थूसिंह को अपना पाला कमज़ोर पड़ता दिखायी दिया तो बोले, "कोतवाल साहब का भानजा है, लालाजी। आपको ख़याल नहीं रहा। जरा फिर से बुलाकर देखिए, तबियत ख़ुश हो जायेगी। बड़ा होन-हार लड़का है। चाल-चलन का बड़ा सच्चा है।"

कोई और दिन होता तो लालाजी कोतवाल के भानजे को ज़रूर ले लेते। पर आज वह डिप्टी साहब के भतीजे को ले चुके थे। थानेदार की क्या औक़ात है डिप्टी के सामने! दूसरे, उन्हें यह भी लगा कि कोतवाल साहब ने ख़ुद उनसे नहीं कहा। फिर भी वह चौधरी साहब को नाराज़ नहीं करना चाहते थे क्योंकि उनके और उनके डॉक्टर लड़के के हाथ में काफ़ी वोट थे और लालाजी 'म्युनिसिपल्टी' का इलेक्शन लड़ने का पक्का निश्चय कर चुके थे।

लालाजी बड़े असमंजस में पड़े। दोनों अपने-अपने पाले पर दृढ़ हैं। कोई हिलने को तैयार नहीं। तभी उन्हें ध्यान आया कि मावले के ठाकुर साहब से उन्होंने वादा किया था। कहीं उनके लड़के को लेकर भी तो इनमें मतभेद नहीं हो गया है। बोले, "अच्छा भय्या, जरा ये तो बताओ, दूसरा मास्टर कौन-सा पक्का हुआ?"

लालाजी के इस प्रश्न पर चौधरी नत्थूसिंह और गनेशीलाल दोनों ही एक साथ चौंक पड़े। गनेशीलाल का सबसे छोटा भाई खंडसाल का काम करता था और उसको सबसे ज़्यादा माल मावले के ठाकुर साहब के ही गाँव से मिलता था। गनेशीलाल ने सोचा, उस पोस्ट के लिए राजेश्वर की बात तो पहले ही पक्की हो चुकी है। फिर उसे दुबारा उठाकर लाला हरीचन्द किसी और को तो नहीं लेना चाह रहे? लगभग इसी तरह की शंका चौधरी नत्थूसिंह के मन में भी आयी जिनके बड़े लड़के की नयी-नयी होम्योपैथी की प्रैक्टिस को मावले के ठाकुर साहब द्वारा काफ़ी मरीज़ मिल रहे थे। अतः फौरन बोले, "उसके लिए तो हम सब एक राय होकर राजेश्वर ठाकुर को पहले ही चुन चुके हैं। बड़ा अच्छा लड़का है।"

गनेशीलाल ने भी ताईद की तो लालाजी फ़ौरन बोले, "अरे हाँ, वो लौण्डा। अच्छा है, बहुत अच्छा है।" फिर जैसे कुछ निर्णय की मुद्रा में आते हुए बोले, "हाँ तो भय्या गनेसीलाल, दूसरे मास्टर के लियो तुम सोती का नाम ले रये हो और भय्या नत्थूसिंह तुम उसका, क्या नाम है, कोतवाल साहब के भानजे का? यही न?"

"जी हाँ," दोनों ने लगभग एक साथ सहमति दी। राजेश्वर ठाकुर के चुने जाने पर दोनों ने ही चैन की एक लम्बी साँस ली थी।

"तो भय्या, मेरी बात मानोगे?" लालाजी ने पूछा।

"जी," दोनों ने उत्तर दिया।

"तो भय्या, तुम्हारा वकील नाराज होवै है तो होने दो।" लालाजी ने गनेशीलाल की ओर मुखातिब होकर कहा और फिर चौधरी नत्थूसिंह की ओर देखकर बोले, "तुम भी भय्या कोतवाल को नाराज हो जाने दो। ज्यादा-से-ज्यादा चार-छह महीने का महमान ही तो है। जल्दी चाहोगे तो डिप्टी साहब से बात कर लेंगे। पर धरम की मरयादा, चाहे

प्रान भले ही चले जावैं, रहनी चाहिए। क्यों, क्या कहो हो ?"

दोनों कुछ सोच में पड़ गये थे। लालाजी ने मौन को स्वीकृति मानकर आगे कहा, 'मुझे तो वह गुरुकुल का पढ़ा हुआ लोण्डा भावै है। कैसी पवित्र आत्मा है उसकी। एकदम सच्चा और सुद्ध। फिर सबसे ज्यादा नम्बर भी उसी के हैं। और संस्कीरत का बिद्वान। पूरा हिन्दू। बिल्कुल वैसा ही हिन्दू जैसा भय्या गनेसीलाल चाव्है हैं। क्यों भय्या नत्थूसिंह, अब तुम भी कुछ अपने विचार सामने रक्खो ना !"

नत्थूसिंह के पास रखने को कोई विचार था ही नहीं। बोले, "ठीक है, मगर कुछ जँचता नहीं है।"

लालाजी ने भाँप लिया कि उनके निर्णय से कोई नाराज़ नहीं हुआ, तो वह फिर गनेशीलाल की ओर घूमे। गनेशीलाल ने कहा, "मेरे विचार से तो उसकू एक बार फिर से बुलाकै इण्टरव्यू कर लें।"

लालाजी को विश्वास हो गया कि आधी बाज़ी जीत ली है। इसीलिए तुरन्त गनेशीलाल की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर उन्होंने कहा, "हाँ भय्या ! बच्चों की बात है। कल कू जनता को सिकायत होवै, क्या फायदा ? पहले से ही ठोक-बजाकर देख लेना अच्छा है आदमी कू।" फिर घण्टी बजाकर उन्होंने उत्तमचन्द को बुलाया, और उसे सत्यव्रत को बुलाने की आज्ञा दी। और मन-ही-मन समझौते के इस बिन्दु पर एकमत होते हुए तीनों आदमी इण्टरव्यू लेने की मुद्रा में बैठ गये। चौधरी नत्थूसिंह ने कोट के बटन खोलते हुए अपनी गोल टोपी सँभाली। गनेशीलाल ने हल्दी से रँगी अपनी धोती की पूँचड को लाँग में ठूँस लिया। लालाजी बोले, "इत्ती छोट्टी-छोट्टी बातों पर आपस में मनमुटाव नहीं करना चाहिए। मैं तो कहूँ हूँ इन्साप के लिए लोगों ने कित्ते-कित्ते त्याग कर दिये। अब यही लो, पाठक के लिए आप दोन्नों के अपने-अपने रिस्तेदारों को नाराज कर दिया तो भला वकील या कोतवाल किस खेत की मूली हैं ?"

और इतना कहकर लालाजी अपनी बात का असर देखने की कोशिश करने लगे उन दोनों पर। पता नहीं लालाजी की बात का असर था कि उन दोनों की अपनी मजबूरी का—मगर दोनों ही सहमति की मुद्रा में दिखायी दे रहे थे।

तभी मास्टर उत्तमचन्द, सत्यव्रत के साथ कमरे में दाखिल हुए।

"बैट्ठो भय्या!" लालाजी ने बड़े प्रेम से सत्यव्रत को सम्बोधित करके कहा और चौधरी नत्थूसिंह और गनेशीलाल की ओर बारी-बारी से घूमकर बोले, "हाँ भय्या, पूछ लो, जो-कुछ पूछना होवै।"

पहले गनेशीलाल को ही पूछना पड़ा, क्योंकि उन्होंने ही सत्यव्रत के दुबारा इण्टरव्यू का आग्रह किया था। सहसा कुछ सूझ न पड़ा तो सत्यव्रत की ओर मुंह करके, भाषा में ज़रा साहित्यिकता लाते हुए उन्होंने पूछा, "सुबह कै बजे उठते हो जी?"

"चार बजे।" सत्यव्रत ने उत्तर दिया।

"फिर क्या करते हो?"

"उठकर जंगल आदि के नित्य कर्म से निवृत्त होने के लिए एवं वायु-सेवन के लिए जाता हूँ और वहीं थोड़ा व्यायाम भी करता हूँ। घर आने पर सन्ध्या करता हूँ और रविवार के दिन यज्ञ। तदुपरान्त थोड़ा स्वाध्याय और घर का काम-काज देखता हूँ।"

"प्याज़ खाते हो?"

"जी नहीं। प्याज़, लहसुन या इस तरह की अन्य वस्तुएं हमारे घर नहीं खायी जातीं।"

"ठीक है।" गनेशीलाल सन्तुष्ट होकर लालाजी की ओर देखने लगे। आगे पूछने के लिए उनके पास कोई प्रश्न न था।

लालाजी ने अब चौधरी नत्थूसिंह की ओर देखा। बाज़ी हाथ से जाते देख नत्थूसिंह ने सोचा, क्यों न बहती गंगा में हाथ धो लिये जायें कुछ प्रश्न पूछकर। कम-से-कम कहने को तो हो जायेगा कि इस आदमी को हमने योग्यता के आधार पर लिया है, और न्याय किया है। रही कोतवाल साहब की बात, उन्हें समझा दूंगा कि गनेशीलाल की बदमाशी के कारण ही असरार नहीं लिया गया। और यह सोचकर ही उनका मुँह प्रसन्नता से चमक उठा कि कोतवाल गनेशीलाल को कहाँ ग़च्चा देगा! फिर गम्भीर होकर चौधरी साहब ने सत्यव्रत से पूछा, "एक अच्छे विद्यार्थी में क्या-क्या ख़ूबियाँ होनी चाहिए, बता सकते हो?"

"चरित्र और अनुशासन।" सत्यव्रत ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया और

फिर जैसे कुछ सोचकर विस्तार से समझाते हुए बोला, "चरित्र में सत्य-प्रियता, बड़ों की आज्ञा का पालन करना, दया और प्रेम आदि सारी बातें सम्मिलित हैं। और अनुशासन में अध्ययन..."

"शाबास!" चौधरी साहब गद्गद होकर बोले, "आज विद्यार्थियों में आपस में प्रेम नहीं रहा है। मैं चाहता हूँ कि हमारे स्कूल के विद्यार्थी भाई-भाई की तरह आपस में प्रेम करें। तुम्हारा क्या खयाल है?"

"आपने बिल्कुल उचित कहा।" सत्यव्रत उनकी नाटकीयता से प्रभावित होकर बोला, "छात्रों में परस्पर प्रेम तो होना ही चाहिए। प्राचीन आश्रम-शिक्षा-पद्धति की यही सबसे बड़ी विशेषता थी जो आज लुप्त होती जा रही है।" सत्यव्रत ने निश्छल भाव से अपने विचारों को रख दिया।

"बस, मुझे और कुछ नहीं पूछना।" चौधरी नत्थूसिंह ने मुख पर पूर्ण सन्तोष का भाव व्यक्त करते हुए लालाजी से कहा।

लालाजी का यह तीर अकस्मात् ही निशाने पर जा लगा था। अतः उन्हें जल्दी न थी। उन्होंने एक पल रुककर धीरे से कहा, "पंचों का निरणय सर-माथे।" फिर सत्यव्रत की ओर देखकर बोले, "तो भय्या सत्तेबरत, तुम समझो कि हमने तुम्हें लेई लिया। पर भय्या, तुम अभी हो बच्चे। जानते हो सिच्छक का कार्य कित्ती ज़िम्मेवारी का होवै है।"

सत्यव्रत ने सिर झुका लिया कृतज्ञता से। शिक्षा-दान का जो पुनीत संकल्प उसके मन में था, आदर्श शिक्षा-प्रणाली की जो रूपरेखा उसने बनायी थी और विद्यार्थियों को नैतिक अनुशासन के जिस साँचे में ढालने की उसने कल्पना की थी—वे सारे-के-सारे स्वप्न उसे साकार होते दिखायी देने लगे। अन्य उम्मीदवारों के बीच बैठकर उसने इस कॉलेज के बारे में कोई अच्छी धारणा नहीं बनायी थी, पर अब अचानक ही वह सारी भूमिका बदल गयी। उत्तमचन्द जी का सिगरेट की निन्दा करना और मैनेजिंग कमेटी के इन तीन प्रमुख सदस्यों का चरित्र-निर्माण से सम्बन्धित प्रत्येक छोटी-छोटी बात पर ऐसे प्रश्न करना क्या इस बात का प्रमाण नहीं कि ये लोग साधु-प्रकृति के हैं और अपनी संस्था को आदर्श बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं? सत्यव्रत को प्रसन्नता हार्दिक हुई।

लालाजी फिर बोले, "क्यों भय्या ! तुम्हारे विचार में अच्छे सिच्छक में क्या गुण होने चाहिएं ? और तुमने सिच्छक होने का ही निश्चय क्यों करा ?"

यह प्रश्न बिल्कुल सत्यव्रत के मन का था। आवेदन-पत्र भेजते समय उसने क्या-क्या कल्पनाएँ नहीं की थीं ! गुरुकुल की शिक्षा अधूरी न रह जाती तो वह समस्त भारत में शिक्षा और संस्कृत का प्रचार करता हुआ घूमता। किन्तु पिता की असमय मृत्यु और माँ की बीमारी के कारण उसे अपने छोटे-से गाँव में लौट आना पड़ा। लड़कपन में जब गुरुकुल गया था तो सत्यव्रत मुश्किल से सात वर्ष का था। बीच-बीच में वह थोड़े दिनों के लिए गाँव आता भी रहा, किन्तु अब हमेशा के लिए लौट आया तो उसे बड़ा विषाक्त लगा गाँव का वातावरण। उसका दम घुटने लगा वहाँ। फिर भी उसका दोष उसने किसी को नहीं दिया बल्कि उन परिस्थितियों में भी सत्यव्रत ने अध्ययन जारी रखा। और उसने निश्चय किया कि घर पर ही तैयारी करके बी० ए० की परीक्षा दूंगा। खेती का काम छोड़कर अध्यापन का कार्य करूँगा। मेरे भीतर ज्ञान की छोटी-सी ज्योति ईश्वर ने जलायी है, उसका प्रकाश जब तक जन-जन में नहीं फैल जायेगा तब तक मैं गुरु-ऋण से मुक्त नहीं होऊंगा। वह अक्सर सोचा करता, 'अहा ! कितना पवित्र कार्य है शिक्षक का, ज्ञान-दान ! दूसरों के जीवन का निर्माण करना, बच्चों को पढ़ाना, अर्थात् आकारहीन पत्थर के टुकड़ों को तराशकर उन्हें एक कलात्मक आकृति प्रदान करना। ऐसी शिलाएँ बनाना जिन पर भावी पीढ़ी की बुनियाद रखी जा सके।'

सत्यव्रत ने अक्सर इन्हीं प्रश्नों पर गम्भीरता से सोचा था। अतः प्रश्न का उत्तर देने में कोई असुविधा न हुई उसे। तीनों सदस्य भी पूरी तरह सन्तुष्ट हो गये। लाला हरीचन्द को लगा कि चलो, दोनों में से कोई भी नाराज़ नहीं हुआ और एक सच्चे हिन्दू को चुनकर उन्होंने धर्म-सबाब का काम किया। वकील या कोतवाल उन्हें क्या देते ? कोतवाल तो उनके पास तक नहीं आया !

चौधरी नत्थूसिंह को खुशी थी इस बात की कि अब कोतवाल गनेशी-लाल से काँटे ज़रूर निकालेगा। असरार नहीं लिया गया तो श्रोत्रिय भी

नहीं लिया जा सका। दोनों में से जीत किसी की नहीं हुई।

गनेशीलाल भी बिल्कुल वही सोच रहे थे जो चौधरी नत्थूसिंह ने सोचा था। फ़र्क इतना था कि नत्थूसिंह की कल्पना में कोतवाल गनेशीलाल को सता रहा था और गनेशीलाल की कल्पना में नत्थूसिंह को।

फिर अचानक अपने-अपने काम का ध्यान आया तो सबसे पहले गनेशीलाल वहाँ से उठे। उनके साथ ही चौधरी नत्थूसिंह भी उठ खड़े हुए। अब सत्यव्रत का वहाँ बैठना फ़िजूल था। हाथ जोड़ते हुए वह उठा तो लालाजी भी छड़ी सँभालते हुए साथ ही उठ लिये और चलते हुए सत्यव्रत के कन्धे पर हाथ रखकर स्नेह से कहा, "तुम कल उत्तमचन्द से मिलकर अपनी नियुक्ती का पत्र अवस्य ले लेना, भय्या!"

सत्यव्रत का मस्तक स्वयमेव श्रद्धा से नत हो गया। उसे लालाजी में वह गंगा-तटवासी स्वामीजी दिखायी दिये जो 'श' को 'स' बोला करते थे मगर जिनकी दृष्टि भविष्य में झाँकती थी। उसने अपने इण्टरव्यू के विषय में सोचा तो लगा कि यद्यपि गनेशीलाल और चौधरी साहब के प्रश्न भी चारित्रिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के थे, पर लालाजी के प्रश्नों जैसी गहराई उनमें न थी।

गूँगे की दुकान

राजपुर एक मामूली-सा गन्दा कस्बा सही किन्तु राजपुर की शाम अनन्त सौन्दर्य लेकर आती है। आकाश पर कुछ आकृतियाँ उभरती हैं और अबाबीलों की तरह पंख खोलकर धीरे-धीरे धरती पर उतरने लगती हैं। शहर के चारों ओर खड़े खजूर के मनहूस-से पेड़ सतर्क प्रहरियों की तरह तन जाते हैं। लखौरी ईंटों के उदास खँडहरों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती है। सोन नदी का काला जल सुनहरा हो उठता है। और छोटे तालाब के चारों ओर गोलाकार खड़े जामुन, नीम और खजूर के वृक्ष सामूहिक नृत्य की मुद्रा धारण कर लेते हैं।

शाम के इस सौन्दर्य की सबसे अधिक प्रतिक्रिया हिन्दू इण्टर कॉलेज

की इमारत पर होती है जो हर दृश्य के साथ रंग बदलती हुई एक धैर्यवान दर्शक की भाँति खड़ी रहती है। यों देखने में वह भी एक मामूली-सी पीली दुमंज़िली इमारत है जो हर ओर से चौकोर नजर आती है। उसमें अन्दर जाने के लिए एक ही बड़ा-सा दरवाज़ा है जिस पर लोहे की मोटी नुकीली कीलें उभरी हैं और नीचे एक बड़ी-सी साँकल और कुन्दा लगा है। भीतर छोटा-सा आँगन है। दरवाज़े से आँगन में घुसते ही बायीं ओर दफ्तर है जहाँ पवन बाबू बैठते हैं, फिर टीचर्स-रूम और लायब्रेरी है। और दायीं ओर ऊपर जाने का ज़ीना, साइंस-लैबोरेटरी तथा प्रिंसिपल का कमरा है। नीचे के शेष पाँच-सात कमरों में हाईस्कूल की कक्षाएँ लगती हैं। और ऊपर की मंज़िल में इण्टरमीडिएट और छोटी कक्षाओं के छात्र बैठते हैं। यानी कुल मिलाकर इमारत का कोई खास प्रभाव दर्शक के मन पर नहीं पड़ता। किन्तु शाम होते ही इसमें भी तरंगें पैदा होने लगती हैं।

यही शाम शहर से कुछ दिलचस्पियों को बाँधे है वरना कॉलेज में नियुक्त होनेवाले नये अध्यापकों के सामने हर साल एक समस्या आती है कि यहाँ वक़्त कैसे गुज़ारा जाय? राजपुर पच्चीस-तीस हज़ार की आबादी का एक छोटा-सा क़स्बा है; जहाँ न कोई थियेटर है, न सिनेमा, न कोई सांस्कृतिक गतिविधि है, न साहित्यिक उत्साह। पूरे शहर में एक ही बड़ी सड़क है (जो बिजनौर से आती है) जिसमें इधर-उधर से रेंगती हुई सँकरी-सी कई गलियाँ आ मिलती हैं। गलियों में दिन-भर बच्चे, मकोड़े और नाबदान के कीड़े बिलबिलाते रहते हैं और सड़क पर गाँव से गुड़ या राब की गाड़ियाँ लेकर आये हुए किसानों पर, दलालों और आढ़तियों की मक्खियों-सी भीड़ भनभनाती रहती है।

संक्षेप में, पूरा शहर एक मण्डी है जिसमें चारों तरफ़ से आवाज़ें उठती है। मोल-तोल करती हुई आवाज़ें, लड़ती-झगड़ती और उलझती हुई आवाज़ें, बहकाती-फुसलाती आवाज़ें और छीना-झपटी करती हुई आवाज़ें। और व्यापारिक आवाज़ों के इस भयंकर शोर में संवेदनशील लोग, जिन्दगी का एक स्वर खोजने के लिए तरस उठते हैं। वे अध्यापक, जो अकेले होते हैं, जिनके परिवार उनके साथ नहीं होते, कॉलेज टाइम के बाद, एक लमहे का सकून पाने के लिए दिन-भर शाम का इन्तज़ार करते

हैं। उस घड़ी का इन्तज़ार—जब वे शहर की इस मनहूस चहारदीवारी को लाँघकर कॉलेज और रेलवे स्टेशन की ओर निकल जायेंगे।

शाम के साये आकाश से उतरकर धरती की ओर बढ़ते हैं। कॉलेज की पीली इमारत का रंग सुनहरे रंग में झिलमिला उठता है। कॉलेज के पीछे सड़क के साथ-साथ शहर तक फैले मैदानों में देसी सदासुहागिन की बाढ़ पर फूलों के छोटे-छोटे चिराग़ जल उठते हैं। फुटबाल का खेल बन्द हो जाता है। शहर के ताँगे खड़-खड़ करते हुए बिजनौर जाने और बिजनौर से आनेवाली शटल गाड़ियों पर मुसाफ़िरों को लाने-पहुँचाने में व्यस्त हो जाते हैं। रेलवे स्टेशन पर आकर खत्म हो जानेवाली शहर की एकमात्र सड़क दिन-भर के वैधव्य के बाद शाम को थोड़ी देर के लिए सुहागिन हो उठती है। और इतनी ही देर में जीवन को इंच-इंच कर जीने के आकांक्षी काफ़ी जीवन-रस प्राप्त कर लेते हैं।

सचमुच कॉलेज और उससे सौ-दो सौ क़दम के फ़ासले पर खड़ी रेलवे स्टेशन की इमारत शहर की जान है। हालाँकि सुबह शटल गाड़ियों का मेल हो जाने के बाद स्टेशन पर शाम तक निपट सन्नाटा छाया रहता है, वैसे ही जैसे छुट्टी के दिन यह कॉलेज यात्रीहीन धर्मशाला-सा जान पड़ता है। मगर कॉलेज के गेट से लगी नींबुओं की बग़िया में गूंगे हलवाई की दुकान वातावरण को सोने नहीं देती।

गूंगे हलवाई की दुकान की वहाँ बड़ी रौनक है। यह कहना कठिन है कि उससे स्टेशन को अधिक लाभ है या कॉलेज को, मगर उसकी उपयोगिता सब अनुभव करते हैं। कॉलेज के छात्रों से लेकर स्टेशन के खलासियों तक—सबने उसकी दुकान को प्रसिद्धि में उन्मुक्त योग दिया है। और अब उसकी दुकान के रसगुल्लों की शोहरत उसकी दुश्चरित्रता की कहानियों से भी ज़्यादा फैल गयी है।

हर नये आदमी की तरह सत्यव्रत पर भी इस शोहरत का प्रभाव पड़ा था और उस शाम वह वहाँ दूध पीने के लिए चला आया था। यद्यपि स्वभावतः वह बाहर जाकर होटलों या ढाबों में खाना नहीं खाता, और जहाँ हाथ से भोजन बनाने की सुविधा नहीं होती वहाँ वह केवल दूध और केलों पर ही गुज़र कर लिया करता है। पर राजपुर में, दो बजे इण्टरव्यू

खत्म होने के बाद, न उसे केले मिले थे और न दूध। यों भी जिन हल-वाइयों की दुकान पर वह गया था वहाँ उनकी गन्दगी देखकर उसके मन में भारी अरुचि पैदा हो गयी थी और उसने निश्चय किया था कि इन दुकानों पर कुछ खाने की बजाय वह तब तक व्रत रखना पसन्द करेगा जब तक खाने-पीने की कोई समुचित व्यवस्था न हो जाय। पर गूंगे की दुकान पर आकर उसने अपना निश्चय बदल दिया।

भूख जीवन का कितना ही बड़ा सत्य क्यों न हो किन्तु और सत्यों की भाँति थोड़े समय के लिए उसे भी दबाया और कुचला जा सकता है। सत्यव्रत भी भूख को मारकर शाम होते ही आर्यसमाज मन्दिर की अपनी कोठरी से निकलकर शहर में घूमने चल दिया था। मुख्य सड़क पर आते ही हलवाइयों की दुकानों से उठती हुई गन्ध रह-रहकर उसके निश्चय के एकान्त में महकने लगी, पर वह विचलित नहीं हुआ। तभी संयोगवश असरार से उसकी भेंट हो गयी जिसने बड़े ज़ोरदार शब्दों में घूमने के लिए हिन्दू कॉलेज और खाने-पीने के लिए गूंगे की दुकान पर जाने की सिफ़ारिश की और दुकान पर आकर सत्यव्रत को प्रसन्नता ही हुई।

मँजे हुए, साफ़-सुथरे पीतल के गिलास से दूध का एक घूंट भरते ही सत्यव्रत की आत्मा तृप्त होती चली गयी। वास्तव में इतने अच्छे दूध की उसने आशा नहीं की थी। गूंगे की ईमानदारी पर उसे आन्तरिक ख़ुशी हुई और इसीलिए पैसे देते वक़्त उसने दूध के गिलास की ओर इशारा करते हुए निर्विकार भाव से उसकी शुद्धता की तारीफ़ की। सोचा—लोग खामखा शहरों को बदनाम करते हैं कि वहाँ शुद्ध घी-दूध नहीं मिलता।

तभी गूंगा तड़फकर खड़ा हो गया। और सत्यव्रत के पैसोंवाले हाथ को पीछे करता हुआ 'आँऽऽ आँऽऽ' करके अपनी चौड़ी-चकली छाती पर हाथ मारता हुआ बिजनौर जानेवाली रेलवे लाइन की ओर इशारा करने लगा।

उसके चेहरे से लगता था कि वह उत्तेजित हो गया है और अगर बोल पाता तो गालियाँ दे रहा होता। दुकान पर उपस्थित लोग इस

तमाशे में रस लेने लगे थे और सत्यव्रत इस अप्रत्याशित घटना से भौंचक्का-सा होकर सहायता के लिए इधर-उधर देखने लगा था।

तभी पास के मूढ़े पर बैठा बीड़ी पीता हुआ एक दुबला-सा नवयुवक उठा और गूंगे के सामने खड़े होकर उसने गर्दन हिलाकर कुछ मना किया। फिर विस्तार से दोनों आँखें फैलाकर दाहिने हाथ की तर्जनी से उसी गिलास के अन्दर इशारा किया और तत्पश्चात् प्रशंसासूचक मुस्कराहट अधरों पर लाकर स्वीकृति की मुद्रा में अपनी गर्दन ऊपर-नीचे हिलाने लगा। तत्काल गूंगा शान्त हो गया और उसने हँसते हुए हाथ बढ़ाकर सत्यव्रत से पैसे ले लिये।

सत्यव्रत ने मुक्ति की सांस ली। आभार और आश्चर्य-सहित वह उस नवयुवक की ओर देखने लगा, जिसने स्थिति सँभालने के लिए अनायास ही एक छोटा-मोटा नाटक कर दिया था। सत्ताइस-अट्ठाइस साल की उम्र। देखने में सुशिक्षित और बुद्धिमान और पतले-दुबले कमज़ोर शरीर पर खादी के साफ़ कपड़े; बीड़ी पीने को छोड़कर सत्यव्रत को उसका पूरा व्यक्तित्व पसन्द आया। धन्यवाद देने के लिए वह कुछ शब्द खोज ही रहा था कि वह नवयुवक गूंगे की ओर संकेत करके बोल उठा, "इसकी आदत बड़ी खराब है। अपनी चीज़ की ज़रा-सी बुराई बरदाश्त नहीं कर सकता। वैसे आप भी स्वीकार करेंगे कि ईमानदार आदमी को अपनी मिथ्या आलोचना पर क्षोभ होता ही है।"

सत्यव्रत उस बीड़ी पीनेवाले नवयुवक की शिष्ट और संयत वाणी पर मुग्ध होते हुए बोला, "लेकिन मैंने इसकी आलोचना कहाँ की?"

"वही तो मैंने समझाया कि ये तुम्हारी तारीफ़ कर रहे हैं। वरना वह आपको चैलेंज दे रहा था कि बिजनौर तक ऐसा दूध नहीं मिल सकता।" उस नवयुवक ने मुस्कराकर कहा और फिर पूछा, "आप बिजनौर के रहनेवाले तो नहीं हैं न?"

"जी नहीं," सत्यव्रत ने कहा, "मैं तो मौज़मपुर के पास एक गाँव है, तीरथनगर, वहाँ का रहनेवाला हूँ।"

"नये आये हैं यहाँ?" उस नवयुवक ने पूछा। वह सोच रहा था कि न यह व्यापारी हो सकता है, न छात्र। फिर कौन है? मगर उसके चेहरे

पर जिज्ञासा नहीं, स्वागत का भाव था।

"जी हाँ, आज ही।" सत्यव्रत ने कहा और फिर पूरा परिचय देते हुए बोला, "सहायक अध्यापक के रूप में मेरी नियुक्ति इसी कॉलेज में हो गयी है।"

"कब ?" घोर आश्चर्य व्यक्त करते हुए उस नवयुवक ने अपने प्रश्न को तुरन्त ही दोहरा दिया, "कब से ?"

"आज ही से।" सत्यव्रत ने जवाब दिया और नियुक्ति की प्रसन्नता से उसकी छाती फूल उठी। मन में असाधारणत्व का अनुभव करते हुए सौजन्य के नाते उसने पूछा, "और आप ?"

"मैं भी यहीं मास्टर हूँ।" उस नवयुवक ने अपने बारे में बताते हुए कहा, "मेरा नाम जयप्रकाश है।"

अब सत्यव्रत के विस्मित होने की बारी थी। उसका असाधारणत्व घट गया था और वह 'आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई' वाली औपचारिक मुद्रा में खड़ा जयप्रकाश की ओर देख रहा था कि तभी नजीबाबाद जाने-वाली गाड़ी की सीटी गूंज उठी, और भक-मक करती हुई गाड़ी के चलने की आवाज़ सुनायी दी। सत्यव्रत औपचारिकता निभाने से बच गया।

स्टेशन से बचे-खुचे मुसाफ़िर और घूमने आये हुए लड़के शहर की ओर लौट पड़े। गूंगे के नौकर ने चिमनी साफ़ करके लालटेन जला दी।

जयप्रकाश ने जेब से बण्डल निकालकर एक और बीड़ी सुलगाते हुए कुछ रुककर सत्यव्रत से कहा, "वापस लौटना हो तो आइए। साथ ही रहेगा।"

"जी हां, चलिए।" सत्यव्रत ने तुरन्त सहमत होते हुए कहा और दोनों एक-दूसरे से हुए इस आकस्मिक परिचय के विषय में सोचते शहर की ओर चल दिये।

सड़क सुनसान हो चुकी थी। कोई भटका हुआ पंछी पंख फड़फड़ाता हुआ सिर से गुज़र जाता तो दोनों चौंककर पीछे देखने लगते थे। गूंगे की दुकान में लटकी हुई लालटेन की रोशनी बहुत मद्धिम हो गयी थी और कॉलेज तथा रेलवे स्टेशन की इमारतें अँधेरे में डूबने लगी थीं। सिगनलों की लाल-लाल बत्तियां खेतों की बाड़ से झांकती हुई आंख-मिचौनी खेल

रही थीं। दूर जाते हुए विद्यार्थियों के ज़ोरदार क़हक़हे, टेलीफ़ोन के खम्भों से उभरती हुई भायँ-मायँ की ध्वनियां और छोटे तालाब पर टिटहरियों की प्यासी आवाज़ें, सन्नाटे के तारों पर मरी हुई चमगादड़ों-जैसी टँगी थीं।

तभी अचानक सत्यव्रत ने पूछा, "भाईजी, ये कॉलेज से यहाँ तक सड़क के साथ-साथ चले आनेवाले खेत, क्या कॉलेज के ही हैं ?"

जयप्रकाश तुरन्त सजग हो गया। सत्यव्रत के आत्मीय सम्बोधन को उसी आत्मीयता से स्वीकार करते हुए उसने कहा "जी हाँ, मास्टर साहब ! ये सब कॉलेज की ही सम्पत्ति हैं।"

"क्या ये खेल के मैदान हैं ?" सत्यव्रत ने अगला प्रश्न किया और अँधेरे में डूबे विशाल मैदानों की ओर देखने लगा।

उत्तर में जयप्रकाश एक क्षण ठिठककर मौन हो गया जैसे वीणा के तार झनझनाकर सहसा रुक गये हों। उसके मन में आया कि वह कहे, 'काश ! ये खेल के मैदान होते !'

सत्यव्रत ने भी प्रश्न दोहराया नहीं। सोचा, ये खेल के मैदान ही हो सकते हैं। मगर जयप्रकाश सोच रहा था कि इन खेतों को खेल के मैदान में कैसे बदला जा सकता है !

कॉलेज की इस सौ बीघा ज़मीन में लाला हरीचन्द ने पिछले साल से खेती शुरू करायी थी और उसका नाम रखा था 'कॉलेज-कृषि योजना'। लालाजी के शब्दों में यह योजना उनके वर्षों के चिन्तन का निचोड़ थी और इसके साथ उनकी बड़ी-बड़ी आशाएँ जुड़ी थीं। फलस्वरूप जिस महत्त्वाकांक्षा और उत्साह से उन्होंने कृषि-योजना की बुनियाद डाली, उसी उत्साह और उल्लास से उन्हें इसमें छात्रों एवं अध्यापकों का सहयोग भी मिला। इण्टर और हाईस्कूल की कक्षाओं में पढ़नेवाले गाँव के बड़े-बड़े लड़के पूरी लगन से कृषि-योजना में जुट गये और देखते-ही-देखते उन्होंने बड़े-बड़े बंजर मैदानों को उपजाऊ ज़मीन में बदल दिया।

लाला हरीचन्द विद्यार्थियों की इस श्रम-निष्ठा से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें 'श्रम-सेवकों' की उपाधि दी थी। यही नहीं, मैनेजिंग-कमेटी की एक विशेष बैठक में उन्होंने कृषि-योजना की

मौलिकता और उसके पीछे निहित गांधीवादी कार्य-प्रणाली का विस्तार से विश्लेषण करते हुए योजना के संचालक मास्टर उत्तमचन्द और उनके सहकर्मी छात्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और वाइस-प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिंह एवं सेक्रेटरी गनेशीलाल के परामर्श से योजना में विशेष रुचि लेने के लिए उन्होंने गांवों के बीच-पच्चीस बड़े-बड़े लड़कों को कॉलेज की ओर से अनेक सुविधाएं दिलवा दी थीं; जैसे, फ़सल की बुवाई और कटाई के दिनों में अनुपस्थित रहने के बावजूद कक्षाध्यापकों के रजिस्टरों में उनकी हाज़िरी लगती थी। गैरहाज़िरी का कोई जुर्माना उन्हें नहीं देना पड़ता था और कृषि-योजना के बहाने वे जब चाहें, कॉलेज छाड़कर कहीं भी आ-जा सकते थे।

इस प्रकार योजना की उपादेयता और इन कुछ वरदानों के कारण गांवों के लड़कों में कृषि-योजना शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी। कुछ ही दिनों के अन्दर-अन्दर मास्टर उत्तमचन्द के कृषि-योजना-रजिस्टर में श्रम-सेवकों की संख्या दो सौ तक पहुंच गयी और विद्यार्थी सुविधाओं के मोह में पढ़ाई-लिखाई से विरक्त होने लगे।

सबसे पहले कृषि-योजना के इस घातक पहलू को जयप्रकाश ने देखा और उसके बाद गांवों के सभी अध्यापकों ने इसका विरोध शुरू कर दिया। आपस में मिलकर जगह-जगह वे इस योजना की आलोचना करने लगे, कृषि-योजना के नियामक उत्तमचन्द को बुरा-भला कहने लगे तथा विद्यार्थियों को बुला-बुलाकर उन्हें उनके वक़्त की क़ीमत समझाने लगे। और यहां तक कहा जाने लगा कि कृषि-योजना द्वारा गांवों के विद्यार्थियों का शोषण किया जा रहा है।

यह सचमुच एक भयंकर प्रतिक्रिया थी। गांवों के अध्यापकों की कृषि-योजना-सम्बन्धी यह प्रतिक्रिया मैनेजिंग कमेटी तक न पहुंची हो, ऐसी बात नहीं। और अध्यापकों की इन बेहूदी बातों पर चौधरी नत्थूसिंह और गनेशीलाल को क्रोध न आया हो, ऐसी भी बात नहीं। पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ते देख लाला हरीचन्द ने सबको शान्त कर दिया था। कहा था, 'भय्यो ! जहां चार आदमी होवें, वहां चार राय होवें ही हैं। पर हमें तो स्कूल का भला देखना है।"

उन्होंने तत्काल कोई कार्यवाही न करके केवल तत्कालीन प्रिंसिपल द्वारा सभी अध्यापकों के पास यह सूचना पहुँचा दी थी कि कृषि-योजना का विरोध मैनेजिंग कमेटी का विरोध है और ऐसा करनेवाले अध्यापकों के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही की जा सकेगी।

कमेटी की इस सूचना का मतलब सब अध्यापक इतनी अच्छी तरह समझते थे कि कृषि-योजना-विरोधी खुली-खुली आवाज़ें थोड़े ही दिनों में कानाफूसी और फुसफुसाहटों में बदलती हुई धीरे-धीरे शान्त हो गयी थीं। और जयप्रकाश सीने में असफल विद्रोह की चिंगारी दबाये गाँवों के विद्यार्थियों की अदूरदर्शिता और बुद्धिहीनता को कोसता रह गया था।

जयप्रकाश को अच्छी तरह याद है कि इस सिलसिले में उसने जब मास्टर उत्तमचन्द से यह कहा था कि कम-से-कम परीक्षाओं के दिनों में तो वह फ़सल की कटाई के लिए गाँवों के विद्यार्थियों को न भेजें तो उसे प्रिंसिपल द्वारा एक लिखित चेतावनी मिली थी। वह काग़ज अभी भी उसके पास है। उसमें कहा गया था, "अध्यापक जयप्रकाश कॉलेज में गाँव और शहर की बात उठाकर गाँवों के लड़कों का एक अलग दल बनाना चाहते हैं जो सर्वथा अवांछनीय है। इस तरह का वातावरण किसी भी संस्था के स्वस्थ विकास के लिए सर्वथा घातक है। यदि अध्यापक ने अपनी त्रुटि शीघ्र न सुधारी तो अनिच्छापूर्वक उन्हें संस्था की सेवाओं से निवृत्ति दे दी जायेगी।"

और, इसी के साथ सारा तूफ़ान समाप्त हो गया था। गाँवों के अध्यापक आपस में मिलने और बोलने और कृषि-योजना पर बातें करने तक से कतराने लगे थे। और लड़कों ने इच्छा-अनिच्छापूर्वक रबी की फ़सल भी काटी थी और परीक्षा भी दी थी।

कृषि-योजना के एक वर्ष के इस संक्षिप्त-से इतिहास पर सोचते-सोचते जयप्रकाश अतीत में ऐसा खो गया कि उसे पता भी नहीं चला कि वह कब शहर की सीमा में घुस आया है। उसी के साथ-साथ चलनेवाला सत्यव्रत भविष्य में खोया था। किन्तु शहर में प्रविष्ट होकर आर्यसमाज गली के पास आते ही बोला, "तो भाईजी, मुझे आज्ञा है?"

"हाँ-हाँ।" चेहरे पर एकदम सरल निर्मल मुस्कान लाते हुए जय-

प्रकाश ने कहा, "कल कॉलेज खुल रहा है। मुलाकात होगी।"

और दोनों अपने-अपने में खोये दो विपरीत दिशाओं की गलियों में मुड़ गये। दोनों में अँधेरा था।

कोठरी

कोठरी में पहुँचकर सत्यव्रत ने इत्मीनान की साँस ली। अपना ठौर, चाहे वह गीली मिट्टी का ही क्यों न हो, कितना प्यारा और विश्रान्तिदायक होता है। दिनभर इण्टरव्यू के लिए आये उम्मीदवारों की उबा देनेवाली बातें, भूखे पेट में कुलबुलाती हुई विवशता, गूंगे का अशोभन रूप से आवेश में आ जाना और मास्टर जयप्रकाश से भेंट—सबकुछ बारी-बारी से उसके सामने आता चला जाता है। उसके विचारों में कहीं तनाव नहीं, मन में कहीं थकावट नहीं! केवल एक ऐसा सन्तोष है जो किसी सपने के पूर्ण होने पर ही हो सकता है।

आर्यसमाज मन्दिर की कोठरी में इच्छित काल तक रहने की सुविधा उसे मिल गयी है। इसी कारण वह चौबीस घण्टों में उससे इतना अपनत्व स्थापित कर बैठा है कि कहीं अजनबीपन का बोध ही नहीं होता। यद्यपि कभी-कभी यह मन ज़रूर होता है कि वह उड़कर घर पहुँच जाय और माँ से कहे, "माँ, देख, मुझे नौकरी मिल गयी। वही नौकरी जिसे जीवन का ध्येय बनाकर मैं चला था। कौन कहता है माँ, कि मनुष्य के सारे सपने पूर्ण नहीं होते? मेरा तो एक ही स्वप्न था, देख न, वह भी पूरा हो गया!' और माँ की प्रसन्नता की कल्पना करके सत्यव्रत भी प्रसन्न हो उठता है। हाँ, बहन की क्या प्रतिक्रिया होगी इसका ठीक अनुमान लगाने में उसे कुछ समय लगता है। खुशी तो खैर उसे भी होगी ही, पर वह उसे प्रकट करने के लिए कोई बच्चों-जैसी बात कहेगी, जैसी उस दिन विदा करते हुए उसने कही थी, 'भैया, अगर तुम्हें वह नौकरी मिल गयी तो मैं ज़रूर एक अच्छा-सा ब्लाउज़ सिलवाऊंगी, मेरी कोई भी सहेली अब कमीज़ नहीं पहनती, हाँ!' और वह प्रत्येक वाक्य के साथ थोड़ी-थोड़ी

डा० डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
9039

नाराज़ होती गयी थी। पर अन्तिम 'हां' कहते हुए तो उसका मुंह कचौरी-जैसा फूल गया था। और जब सत्यव्रत ने भी वैसा ही मुंह फुलाकर उसे चिढ़ाया तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ी थी।

कल कॉलेज खुल रहा है। कल मंगलवार है। पांच दिन बाद वह घर पहुँचकर खुद ही सबको यह खुशखबरी दे देगा। पर मां ने कहा था, 'खत लिखना।' लेकिन खत ही कौन एक हफ़्ते से पहले पहुँच सकता है? सिर्फ़ मंगलवार को ही गाँव में डाकिया जाता है और रविवार को वह खुद ही पहुँच जायेगा। मां ने तो यह भी कहा था, 'अपने खाने का ख़याल रखना।' लेकिन चाहने पर भी यहां खाने का क्या खयाल रखा जा सकता है? कोई भी ऐसा भोजनालय नहीं, जहां शुद्ध भोजन मिल सके! और तो और, एक हलवाई तक यहाँ नहीं है। मन्दिर के चारों तरफ़ मुसलमानों का मुहल्ला है। फाटक से बाहर निकलो तो बस सड़क तक पूरी गली में गोश्त-ही-गोश्त की दुकानें हैं। बस, दुकानों पर नाम-मात्र को टूटी-फूटी चिक पड़ी रहती हैं जिनके पार लटके हुए बकरों के कटे-साबुत जिस्म और लाल गोश्त के बड़े-बड़े लोथड़े झांकते रहते हैं।

वह जब स्टेशन से मन्दिर का पता पूछता हुआ आया था तो इस गली में घुसते ही एक अजीब-सी गन्ध का अनुभव करके तथा खुजली-भरा जिस्म लिये रिरियाते कुत्तों और पिल्लों को देखकर उसे घोर वितृष्णा हुई थी। मक्खियों के मारे अलग उसकी नाक में दम हो गया था और उसने सोचा था कि उस जैसे व्यक्ति के लिए इस जगह बहुत दिनों तक रहना सम्भव न हो सकेगा। किन्तु आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचकर उसने जो सफ़ाई और सुविधाएँ देखीं, उनसे उसका विचार बदल गया। जो कोनेवाली कोठरी उसे रहने के लिए दी गयी उसमें पक्का सीमेंट का फ़र्श था, आलमारी थी और एक तख्त भी पड़ा था। कोठरी के सामने ही साफ़-सुथरा आंगन था जिसके बीचोबीच चौबच्चे में एक हैण्ड-पम्प लगा था। सहन के चारों ओर आयताकार बरामदा था और उसकी कोठरी से बायीं ओर दो-तीन कमरे छोड़कर यज्ञशाला थी, जहाँ आजकल एक स्वामीजी ठहरे हुए थे।

सत्यव्रत को यह वातावरण बहुत पसन्द आया। यज्ञ की गन्ध और

वेद-मन्त्रों का अस्पष्ट संगीतभरा उच्चारण उसके कानों में अमृत घोल गया। इण्टरव्यू से लौटने के बाद कोठरी में लेटा हुआ वह कुछ देर तक तो इस संगीत को सुनता रहा था, पर बाद में जब नहीं रहा गया तो वह स्वयं ही यज्ञशाला में जा पहुँचा। कैसा पवित्र दृश्य था! यज्ञशाला के मुख्य-द्वार से यज्ञ-वेदी तक श्रद्धालु नर-नारियों की भीड़; आगे गन्ध बिखेरती यज्ञ की निर्धूमशिखा और उसके दूसरी ओर फल, सामग्री और घृत की आहुति डालते हुए पद्मासन लगाकर बैठे तेजोज्जवल मुखवाले स्वामी अभयानन्द सरस्वती। स्वामीजी के पीछे खड़े उनके दो सहयोगियों द्वारा उच्च स्वर में मन्त्रोच्चार और उन्हीं के साथ अस्फुट स्वर में स्वामीजी के मधुर कण्ठ की गुनगुनाहट! कुल मिलाकर ऐसा सम्मोहक वातावरण था कि दोपहर की हल्की गर्मी का ताप सहन करके भी वह निश्चित-सा वेदी के निकट खड़ा यज्ञ की अग्नि-शिखा में अपना भूत-भविष्य देखता रहा।

अचानक सत्यव्रत को महसूस हुआ कि कोठरी में अन्धकार भर गया है और आर्यसमाज की ओर से मिले दीये की बत्ती शायद तेल में सरक-कर बुझ गयी है। आँगन में सन्नाटा है, केवल स्वामीजी के कमरे में कुछ लोग सम्भवत: अब भी बातचीत कर रहे हैं। उसका मन उठकर दीया जलाने को नहीं हुआ। पड़े-पड़े ही उसने झोले में से चादर निकाली और सिरहाने लगाकर फिर सोचने लगा। पहले उसने सोचा कि वह छात्रों को पढ़ाने की विधियों का विश्लेषण करके एक निश्चित प्रणाली तय कर ले। मगर फिर उसे लगा कि बिना पाठ्यक्रम देखे ऐसा सम्भव नहीं है। दूसरे, अन्य अध्यापकों के सहयोग एवं सम्मति की भी इसमें आवश्यकता पड़ेगी। फिर भी उसकी शिक्षण-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि छात्रों का व्यक्तित्व यज्ञ की अग्नि की भाँति ज्ञान की ज्योति से जगमगा उठे। उस चमक से आस-पास के लोग अभिभूत होकर श्रद्धावनत हो जायें। तभी उसका श्रम सार्थक है, तभी उसका शिक्षण सार्थक है। अन्यथा इस नाशवान संसार में 'को मृते वा को न जायते।' शिक्षक का अर्थ ही यह है कि विद्यार्थी का संस्कार करके उसमें आदर्श की प्रतिष्ठा करे। तो उसका काम विद्यार्थियों के संस्कार से शुरू होगा ताकि वे ज्ञान और आदर्श को ग्रहण करने योग्य

हो सकें।

इसी प्रसंग में अचानक उसे लगा कि छात्रों के संस्कार की बात उसके मन में यूं ही नहीं आ गयी बल्कि इसके पीछे एक सांस्कृतिक सिद्धान्त निहित है। संस्कृत-साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब गुरुओं ने किसी शिक्षार्थी को इस कारण शिक्षा देने से इन्कार कर दिया कि वह उसका पात्र नहीं था। तो पहले पात्रता विकसित करनी पड़ती है। आज यज्ञ में आहुति देने के लिए स्वामीजी से कितने लोगों ने प्रार्थना की थी! पर सभी तो उसके पात्र नहीं थे। इसीलिए उन्होंने किसी से स्नान करने के लिए कहा, किसी से हाथ-मुंह धोकर आने के लिए। छदम्मीलाल को तो उन्होंने अपनी कोरी धोती ही दे दी ताकि वह स्नान के बाद अलीगढ़ी पाजामा बदलकर उसे पहन सके। परन्तु सत्यव्रत को अवश्य उन्होंने अनायास ही बुला लिया था। उसने यों ही स्वामीजी की ओर देखा था और उन्होंने दो उँगलियाँ उठाकर हिलायीं और बराबर का आसन थपथपाकर आने का संकेत कर दिया। वह इसके लिए तैयार भी न था। दिन-भर इण्टरव्यू की कशमकश, थकावट और पसीने का अहसास और दूसरे लोगों के प्रति स्वामीजी के वर्जनात्मक दृष्टिकोण से वह इतना संकुचित हो उठा कि उनके पास जाकर बैठने का उसमें साहस नहीं हुआ। स्वामीजी ने फिर दृष्टि उठायी तो वह सकपकाकर बोला, "जी, मैं स्नान कर आऊँ?" हालांकि वह सुबह ही स्नान कर चुका था परन्तु उसे लगा कि वह इतनी प्रखर दृष्टि का सामना नहीं कर पायेगा। वह बहुत देर से देख रहा था कि स्वामीजी जब खड़े होकर दायाँ पाँव आगे बढ़ाकर यज्ञ में आहुति डालते तो उनके मुख-मण्डल पर अलौकिक तेज उभर आता था। आहुति डालने के पश्चात् जब वह हाथ उठाकर, लाल-लाल आँखों से आकाश की ओर तन्मयतापूर्वक निहारते हुए कुछ बुदबुदाते थे तो ऐसा लगता था मानो स्वर्गीय शक्तियों से बातचीत कर रहे हों। लोग श्रद्धा से नत-नत हो-हो जाते थे।

एक क्षण के लिए सत्यव्रत को लगा उसका बहाना काम कर गया, किन्तु दूसरे ही क्षण उसका अनुमान ग़लत सिद्ध हुआ। अदृश्य से जाने क्या बातें करके स्वामीजी ने फिर उसे अपने पास आने का संकेत किया और

सधी हुई गम्भीर वाणी में पहली बार बोले, "हम जानते हैं, तुम्हारी आत्मा शुद्ध है। आओ!" कोई चारा न देख, विवश होकर झिझकता हुआ-सा सत्यव्रत आगे बढ़ा और उसी प्रकार दृष्टि नीची किये स्वामीजी के दायें हाथ की ओर बैठ गया। बायें हाथ का आसन अब भी खाली पड़ा था।

यज्ञ-वेदी के निकट होने के बावजूद अब उसे उतनी गर्मी नहीं लग रही थी क्योंकि कुछ श्रद्धालु पुरुष ताड़ का बड़ा-सा पंखा लेकर हवा करने लगे थे। तभी स्वामीजी के सहयोगियों में से एक ने ताज़ा हलुवे का एक बड़ा-सा थाल उनके सामने ला रखा। दूसरे सहयोगी ने आम की मोटी-मोटी लकड़ियाँ लगाकर यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त की।

शुद्ध घी में बसे हलुवे की गन्ध जब सत्यव्रत की नाक से होती हुई आमाशय तक पहुँची तो अनायास उसे ध्यान आया कि वह सुबह से भूखा है और उसकी अँतड़ियों में हलका-हलका दर्द होने लगा है। नियुक्ति की खुशी में उसे अब तक खाने की याद ही न आयी थी।

तभी स्वामीजी ने सामने रखी हवन-सामग्री के दोनों बड़े-बडे थालों को इधर-उधर अपने दायें-बायें खिसका दिया और हलुवे का थाल लेकर खुद उठ खड़े हुए।

भूख के बारे में सोचते हुए कुछ क्षणों के लिए सत्यव्रत इतना खो गया कि उसे यह भी पता न चला कि कब स्वामीजी ने स्त्रियों की भीड़ में से संकेत द्वारा एक लड़की को आहुति-योग के लिए बुला लिया है। उसका ध्यान तब टूटा जब एक साफ़ सी सफ़ेद धोती में लिपटी हुई वह लड़की स्वामीजी के बायीं ओरवाले खाली आसन पर आकर बैठ गयी।

वेदी के दूसरी ओर बैठे हुए कुछ लोग भी सद्यःप्रज्वलित अग्नि की आँच न सह सकने के कारण खड़े हो गये थे। अधिकांश लोगों के चेहरों पर गर्मी के कारण सुर्खी उभर आयी थी किन्तु बिना पूर्णाहुति का प्रसाद लिये कोई जाने का इच्छुक न था। स्वामीजी के साथ-साथ सत्यव्रत भी आप-से-आप मन्त्रोच्चारण करने लगा। मन्त्र की समाप्ति पर स्वाहा के साथ-साथ सत्यव्रत और वह लड़की दोनों यन्त्रवत् दायें हाथ की मुट्ठी में भरकर थोड़ी-थोड़ी सामग्री हवन-कुण्ड की अग्नि पर फेंकते जाते थे।

लोग एकदम भाव-विह्वल होकर यह दृश्य देख रहे थे।

धीरे-धीरे स्वामीजी ने यज्ञ में हलुवे के उस पूरे थाल की आहुति दे दी, मगर दूसरे ही क्षण फलों और मेवों से भरे दो थाल उनके सामने और आ गये और आहुति का क्रम फिर ज़ारी हो गया। बड़े-बड़े ताज़े बम्बइया केले और सन्तरे अग्नि में पड़कर छटपटाते हुए झुलसने लगे। दो-चार सेब भी भुन चुके थे और उनकी चटर-पटर की आवाज़ सत्यव्रत को बरबस उसकी भूख का अहसास करा रही थी।

तभी जाने किसके कहने से उस लड़की ने घी का बड़ा-सा कटोरा उठाकर लगभग आधा घी अग्नि के ऊपर उलट दिया। सहसा लपट ऊपर उठी और हवन-कुण्ड की आँच तेज़ हो गयी। सत्यव्रत ने आँखों को आँच से बचाने के लिए जैसे ही अपना मुंह बायीं ओर घुमाया, उसकी दृष्टि अनायास उस लड़की की दृष्टि से जा टकरायी। वह भी शायद आँखों को आँच से बचाने के लिए ही उस ओर देखने लगी थी। सत्यव्रत को उधर देखते पाकर उसने अनजाने ही गर्दन को एक झटका-सा दिया और वेदी की ओर देखने लगी।...

अनायास बेचैनी से सत्यव्रत ने करवट बदली कि तख्त में उभरी हुई कोई छोटी-सी कील उनके सीने पर बायीं तरफ़ जा चुभी। वह उठकर बैठ गया और झोले से तुरन्त दूसरी चादर निकालकर उसने तख्त पर बिछा ली। निश्चिन्त होकर वह फिर लेट गया। मन्दिर में निस्तब्धता थी और कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। रात की खामोशी पूरी तरह छा गयी थी। बराबर की कोठरी में ठहरे हुए महाशयजी के खर्राटे वातावरण की गम्भीरता को बढ़ा रहे थे। तभी खड़ाऊँ की हल्की-सी आवाज़ हुई और आर्यसमाज मन्दिर के प्रबन्धक महोदय स्वामीजी के कमरे से निकलकर सहन पार करते हुए अपनी कोठरी की तरफ़ चले गये।

सत्यव्रत अँधेरे में भी खड़ाऊँ की आहट से ही उन्हें पहचान गया। उन्होंने ही तो यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद सत्यव्रत के संस्कृत-ज्ञान की प्रशंसा करते हुए यज्ञ के प्रमुख लोगों का परिचय दिया था, "वह अधेड़-से व्यक्ति जिन्हें स्वामीजी ने अपनी धोती पहनने को दी थी, आपके कॉलेज की प्रबन्ध-समिति के सदस्य लाला छदम्मीलाल थे और वह विमलाजी, जो

आपके साथ आहुति डाल रही थीं, प्रबन्ध-समिति के उप-प्रधान चौधरी नत्थूसिंह की लड़की है।" सत्यव्रत को प्रबन्धकजी का यह सौजन्यपूर्ण व्यवहार और साथ ही उनका स्वभाव बहुत पसन्द आया। सुबह भी बिना किसी परिचय के ही उन्होंने कितनी सहजता से उसे यहाँ ठहरने की अनुमति दे दी थी। और शाम को वह इस बात पर नाराज़ हुए थे कि सत्यव्रत संकोचवश प्रसाद के लिए नहीं रुका।

"भाई, आप तो लड़कियों से भी अधिक संकोची हैं। आखिर विमला भी तो प्रसाद लेने के लिए रुकी रही।" प्रबन्धकजी की इस स्नेहपूर्ण नाराज़ी और सरल-से परिहास को याद करते-करते उसकी आँखें नींद से भारी हो आयीं। वह तख्त पर औंधा लेट गया, किन्तु तुरन्त सो नहीं सका, क्योंकि तख्त में एक-दो जगह कीलें उभरी थीं। और इस बार फिर एक कील उसके सीने में चुभ गयी थी।

कृषि-योजना

अगले दिन उठते ही सत्यव्रत को खाने-पीने की फ़िक्र हुई और स्नान एवं पूजा-पाठ से निबटने के बाद वह नौ बजे के लगभग बाज़ार की ओर चला।

···राह में मण्डी के पासवाले मीठे कुएँ पर चरखी की घड़-घड़ आवाज़ के साथ कुएँ में डोल डालते हुए पंजे पनवाड़ी ने पास ही बाल्टी से नहाते हिन्दू-कॉलेज की कमेटी के एक मेम्बर छदम्मीलाल पर प्यार का हमला किया, "क्यों लाला, अब के तो लाला हरीचन्द और गनेसीलाल की पिसन गयी? और बिचारे नत्थूसिंह को तो लौण्डिया की शादी करनी थी। च···च···या परवरदिगार!"

···सत्यव्रत बात को समझे बिना ही आगे बढ़ गया। मगर दूसरे लोगों के सिर पर उठे हुए डोल-भरे हाथ रुक गये और पंजे ने उनके कौतूहल का स्वयं ही समाधान करते हुए कहा, "फिर भय्या, सरकार कोई अन्धी थोड़े ही है जो हिन्दू-कॉलेज को रुपये-पै-रुपये बाँटती चली

जायेगी। आखिर इस साल हिन्दू-कॉलेज में जितने लौण्डे फेल हुए हैं उतने तो सारे ज़िले में नहीं हुए।"

पंजे मियाँ लोहे की दुकान करते थे और मुस्लिम-स्कूल की कमेटी के मेम्बर थे। किसी ज़माने में उन्होंने पनवाड़ी की दुकान की थी सो पनवाड़ी उनके साथ तभी से जुड़ गया था। हिन्दू-कॉलेज के मेम्बर को कोई विरोध न करते देखकर उन्होंने आगे कहा, "हमारे स्कूल में तो इस साल दाखिलेको भी जगह नहीं रही। एक तारीख से दाख़िला चालू हुआ है और समझ लो कि अब तक सारे क्लास फुल हो गये। हमारा हाईस्कूल का रिज़ल्ट भी ज़िले में दूसरे नम्वर पर है।"

हिन्दू-कॉलेज के मेम्बर छदम्मीलाल को इस गर्वोक्ति में साम्प्रदायिकता की बू आयी। तड़पकर बोले, "अवे, क्या कहदे करै हैं—फस्ट फिर भी आर्यसमाज स्कूल ही आया है बिजनौर का! तारीफ तो जब थी जब फस्ट आकै दिखाते तुम। हमारा स्कूल फिर भी जिले में दो वार फस्ट आ चुका है, एक वार इण्टर में और एक वार हाईस्कूल में।"

छदम्मीलाल के खानदानी बूढ़े मुकद्दम चाचा कुएं की मन पर मैल छुटाने के लिए पाँव रगड़ते हुए बड़े ध्यान से इन दोनों की बातें सुन रहे थे। छदम्मीलाल की बात पर वह अपने को न रोक सके; बोले, "रहनै दे छदम्मी, रहनै दे, तेरे स्कूल का भी कोई लौण्डा आज लो डिप्टी ना हुआ। दूर क्यों जावै, अपने खानदान में ही देख ले। जित्ते लौण्डे पढ़े, कोई साला किसी रोज़गार-सिर लगा? सब कनकव्वे उड़ा रएँ। वस यो है कि जुल्फों में तैल डाल लेवेंगे, सफेद कपड़े पहन लेवेंगे और चिकने-चुपड़े बनकै घूम्मैंगे। कोई इनसे पूच्छै—अबै सुसरो, कोई तुम्हारा साँग करना है या तुम्हें कोठ्ठे पै बैठना है! पर पूच्छै कौन?"

मुकद्दम चाचा अपनी साफ़गोई के लिए बदनामी की हद तक मशहूर थे। पिछले दिनों जब एक हज़ार रुपये इकट्ठे करके शहर के कुछ उत्साही लोग उनके पास रामलीला का चन्दा माँगने पहुँचे थे तो उन्होंने साफ़ कह दिया था, "मैं तुम्हें धेल्ला नई दूंगा। सुसरो, सरम तुमैं नई आत्ती, जिन लौण्डों को रात में सीता माँ और भगवान् रामचन्दैर बनावो हो, उन्हीं के साथ दिन में इकलामबाजी करो हो!"

मुकद्दम चाचा की बातें इतनी बेबाक और दिलचस्प थीं कि कुएँ पर रस्सियों की ढील से घड़घड़ाती घिर्रियाँ खामोश हो गयीं और लोग मुकद्दम चाचा की बातें सुनने के मूड में आ गये। किसी ने कहा, "मुकद्दम चाचा! मुस्लिम स्कूल का भी तो कोई लौण्डा आज लो डिप्टी ना हुआ!"

"अबे ना हुआ तो हो जावैगा। वो स्कूल तरक्की कर रिया है। वो लौण्डा कू पढ़ावैं हैं, उनसे हल नहीं जुतवात्ते। और तुम्हारा स्कूल जो है, यो सुसरा तनज्जुली की तरफ जा रिया है। धन्धा बना लिया इसे लोग्गों ने। अब मैं क्या करूँ, सच्ची बात मिर्ची की तरयो लग जावै।"

बाज़ार से केले लेकर लौटते हुए सत्यव्रत के कानों में फिर स्कूल की बात पड़ी तो वह ठिठक गया। और भी दो-चार तमाशबीन वहाँ इकट्ठे हो गये थे। यहाँ तक कि जो लोग नहाकर घर जानेवाले थे, वे भी मुकद्दम चाचा की बातें सुनने के लिए ठहर गये थे।

छदम्मीलाल ने सोचा, चाचा की बक छूट गयी है, अत: जल्दी से एक डोल और सिर पर डाला और धोती का तहमद लगाकर डोल-रस्सी उठाकर चल दिये। तमाशबीनों की उत्सुकता घट गयी। जब मैदान में कोई जवाब देनेवाला नहीं होता तो बात का मज़ा आधा रह जाता है। मुकद्दम चाचा लगभग पन्द्रह मिनट तक बड़बड़ाते रहे और हिन्दू-कॉलेज के मेम्बरों को कोसते रहे।

कुएँ पर फिर शोर बढ़ गया था। घिर्रियों की घड़घड़ाहट और हैण्ड-पम्प की धड़कधूं में भी लोग एक-दूसरे से बातें करने लगे थे। कल्लू ढाबेवाले का लड़का हाईस्कूल में फ़ेल हो गया था और पंजे पनवाड़ी से उसके मुस्लिम स्कूल में दाखिले की बात कर रहा था, "मैं कौन किसी का दिया खाऊँ हूँ? सुसरे नाराज होंगे तो होनै दो। मुझे लौण्डे की जिन्दगी बनानी है, भैया! तुम अपने स्कूल में करा दो उसका दाखिला!"

और पंजे पनवाड़ी अब हिन्दू-कालेज के रिज़ल्ट पर आलोचना कम, अफ़सोस ज्यादा ज़ाहिर कर रहे थे। आलोचना करनेवाले और बहुत-से लोग वहाँ आ गये थे। तरह-तरह की बातें निकल रही थीं। "...सब पैसा खाते हैं साले! पढ़ाने-लिखाने का नाम नहीं, दिन-भर प्रेसीडेण्ट और सिकटरी की चिलमें भरते रहते हैं।"

सत्यव्रत को अध्यापकों के प्रति ऐसे उद्‌गार अत्यन्त अभद्र लगे।

तभी किसी ने व्यंग्य में कहा, "स्कूल तरक्की कर रहा है, इस साल पिछले साल से चौगुने लड़के फेल हुए हैं।"

"आश्चर्य की बात है कि इतनी नक़ल के बावजूद इतने लड़के फेल हो गये। सच कहा है किसी ने कि नकल को भी अक़्ल चाहिए।" पंजे पनवाड़ी ने गर्दन हिलाते हुए आँखें मिचमिचाकर कहा।

सत्यव्रत को वहाँ खड़े रहना कठिन प्रतीत होने लगा। अतः वहाँ से चल दिया।

मुक़द्दम चाचा ने धोती निचोड़कर कन्धे पर डाल ली थी और मन से नीचे उतर रहे थे। पंजे की बात सुनकर बोले, "अरे भैया, लौण्डे फेल हुए सो हुए, मिम्बरों का कोई रिस्तेदार बिना मास्टर हुए तो नईं रै गिया। जित्ता गुड़ डाल्लोगे, उत्ता मीठा होवेगा। जैसे मास्टर रक्खोगे, वैसी ही पढ़ाई होवैगी। तो फिर दोस किसका है ?"

सत्यव्रत का मन हुआ कि वापस लौट पड़े और उन्हें अध्यापक के गुरु दायित्वों और कर्तव्यों के बारे में बताये। उन्हें प्यार से समझाये कि शिक्षक के प्रति ऐसी धारणाएँ बनाना उचित नहीं है। मगर उसे कॉलेज जाने के लिए देर हो रही थी।

नये सत्र में कॉलेज खुलते ही यही चर्चा उस दिन हिन्दू-कॉलेज में भी थी। कॉलेज-भवन के आँगन में खड़े बीसियों विद्यार्थी रिज़ल्ट पर बातें करते हुए एक-दूसरे के परचों और नम्बरों के बारे में पूछताछ रहे थे। और टीचर्स-रूम में बैठे हुए चन्द अध्यापक सोच रहे थे कि पिछले साल पचास प्रतिशत रिज़ल्ट रहा, फिर भी गर्मियों की छुट्टियों की आधी तनख्वाहें काट ली गयी थीं। इस साल तो इण्टर का रिज़ल्ट दस प्रतिशत ही है। क्या होगा ?

पवन बाबू के दफ़्तर के सामने खड़े उन लड़कों में से कोई अपनी 'काशन मनी' चाहता था तो कोई अपनी मार्क्स-शीट, कोई अपना 'स्कूल-लीविंग सर्टीफ़िकेट' माँग रहा था तो कोई दाखिले का फ़ार्म। ज़्यादातर लड़के हाईस्कूल के पास या फेल होनेवालों में से थे। अतः पवन बाबू पर

अपनी-अपनी फ़रमाइशों का तक़ाज़ा करके वे फिर रिज़ल्ट की चर्चा करने लगते थे।

हाईस्कूल में अस्सी में से सत्रह लड़के पास हुए थे। पास होनेवाले छात्र रिज़ल्ट का प्रतिशत निकालते हुए फेल होनेवाले छात्रों से लम्बी-लम्बी साँसें छोड़कर कह रहे थे, "देखो भई, यहाँ से तो गाड़ी खिसक गयी, अब आगे क्या होता है ?" उनकी संवेदनाएँ अपने-अपने संकटमय भविष्य की अकल्पित घोषणाएँ थीं ताकि फेल होनेवालों को इस कल्पना से तसकीन मिले कि असफलता के रास्ते पर वे अकेले नहीं हैं।

टीचर्स-रूम के दरवाज़े पर पड़ी चिक से बाहर झाँकते हुए लम्बी साँस छोड़कर, नागरिकशास्त्र के लेक्चरर रामाधीन श्रीवास्तव बोले, "पिछले साल इस सहन में तिल रखने को जगह नहीं थी। मगर इस साल•••?"

टीचर्स-रूम में बैठे पाँचों अध्यापक बहुत देर से इस बात को लक्ष्य कर रहे थे। मगर श्रीवास्तव की बात का कोई जवाब दे कि तभी कमरे की चिक उठाकर असिस्टैण्ट टीचर रस्तोगी भीतर दाख़िल होते हुए बोला, "सुना भई, आप लोगों ने कुछ ? मुस्लिम स्कूल में सीटें फुल हो गयी हैं। मैं अभी-अभी स्टेशन से आ रहा हूँ। वहाँ भी यही चर्चा थी। गूंगे हलवाई की दुकान और नींबू की बग़िया में बैठे हुए विद्यार्थी तो विद्यार्थी, शहर के लोग भी हमारे रिज़ल्ट पर बातचीत कर रहे थे कि लड़के अपने-अपने सर्टीफ़िकेट लेकर बिजनौर के आर्यसमाज स्कूल में जा रहे हैं। मुस्लिम स्कूल में जगह नहीं रही। और इस साल हिन्दू-कॉलेज की स्ट्रेंग्थ बहुत कम हो जायेगी।"

रस्तोगी की बात पर जयप्रकाश, इतिहास के लेक्चरर रामप्रकाश गुप्ता, नागरिकशास्त्र के लेक्चरर रामाधीन श्रीवास्तव और दो नवनियुक्त अध्यापक पाठक और राजेश्वर सतर्क होकर बैठ गये। मगर तभी रस्तोगी ने उनकी उत्सुकता पर पानी डालते हुए चेहरे पर कोमल दर्द के भाव फैलाकर अत्यन्त थकी-सी आवाज़ में कहा, "यह हम सभी के लिए कितनी लज्जा की बात है ! इसी रिज़ल्ट के कारण हम आज बाहरवालों के सामने मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहे।"

और तुरन्त सबके माथे जैसे शर्म से झुक गये। राजेश्वर ने कुछ कहने की सोची, पर गम्भीर वातावरण के अनुकूल उसे कोई बात नहीं सूझी। विवश होकर वह इधर-उधर देखने लगा। कुर्सी के हत्थे पर तबला बजाता हुआ गुप्ताजी का हाथ-रुक गया और वह उदास होने की चेष्टा करने लगे। जयप्रकाश के मुख पर एक अजीब तनाव-सा आ गया और उसकी उँगलियाँ अकड़कर मेज़ पर फैलने लगीं। सब ख़ामोश हो गये।

बाहर लड़के शोर मचा रहे थे। और उस शोर से उभरती हुई पवन बाबू की झुँझलाहट टीचर्स-रूम में साफ़ सुनायी दे रही थी।

लोगों की बेमतलब की ख़ामोशी से ऊबकर राजेश्वर ने पूछा, "क्यों साहब, आखिर रिज़ल्ट बिगड़ने का कारण क्या है? पिछले साल तो इतना खराब रिज़ल्ट नहीं था।"

इस प्रश्न ने कमरे का समूचा वातावरण बदल दिया। गुप्ताजी का पाँव फिर हिलने लगा और उँगलियाँ कुर्सी के हत्थे पर तबला बजाने लगीं। जयप्रकाश की उँगलियों का खिचाव ढीला हो गया। पाठक ने मुस्कराकर रस्तोगी की ओर देखा। और रामाधीन श्रीवास्तव ने मुख की उदासी पर कृत्रिम उत्तेजना का रंग लाते हुए कुर्सी आगे खिसका ली।

क्षणभर पहले की ख़ामोशी गरमागरम बहस में बदल गयी।

"मेरे सब्जेक्ट में सिर्फ़ एक लड़का फेल हुआ है।" रामाधीन श्रीवास्तव ने मुख की उदासी पर उत्तेजना का रंग चढ़ाते हुए कहा, 'अगर सब लोग अपने-अपने विषयों में मेहनत करते तो रिज़ल्ट इतना ख़राब कभी न रहता।"

यह एक मामूली-सा तर्क था मगर गुप्ताजी ने श्रीवास्तव की इस बात को अपनी वैयक्तिक आलोचना समझा, तड़फकर विस्मयपूर्वक बोले, "क्या आप यह कहना चाहते हैं कि हमने अपने-अपने विषयों में मेहनत नहीं की? माना कि इतिहास में मेरे पच्चीस में से पन्द्रह लड़के फेल हुए हैं, पर अंग्रज़ी में तो अस्सी प्रतिशत से भी अधिक लड़के फेल हैं। तो क्या आपका खयाल है कि उत्तमचन्दजी ने भी अपने विषय में मेहनत नहीं की?"

उत्तमचन्द इण्टर और हाईस्कूल के लड़कों को अंग्रेज़ी पढ़ाया करते

थे। गुप्ताजी ने रामाधीन श्रीवास्तव के आत्म-प्रशंसात्मक सीधे-सादे वाक्य को जिस प्रकार उत्तमचन्द से जोड़ दिया था उससे श्रीवास्तवजी घबरा उठे। फ़ौरन क्षमायाचना की मुद्रा में हथियार डालते हुए बोले, "मैंने तो सिर्फ़ अपनी राय आपके सामने रखी थी। मेरा कोई और मतलब हरगिज़ न था। वैसे मैं इस बारे में आपके विचार ज़रूर जानना चाहूँगा।"

गुप्ताजी विजेता के भाव से मुस्करा दिये और कुछ सोचने का अभिनय करते हुए बोले, 'रिज़ल्ट बिगड़ने का कारण है पुराने प्रिंसिपल का शिथिल एडमिनिस्ट्रेशन।"

"यह तो कोई बात ही न हुई।" झुंझलाकर हाथ नचाते हुए रस्तोगी ने गुप्ताजी का तीव्र प्रतिवाद किया; बोला, "साहब, नाक को चाहे सीधे पकड़ो या गर्दन के पीछे से हाथ लाकर, बात एक ही है। मान लीजिए कि प्रिंसिपल का एडमिनिस्ट्रेशन बहुत अच्छा होता तो? तो क्या उससे विद्यार्थियों को 'पेपर्स आउट' हो जाते? एडमिनिस्ट्रेशन अच्छा होगा तो ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रिंसिपल यही कर सकता है कि टीचर्स को और मेहनत से पढ़ाने के लिए प्रेरित करे या आदेश दे—और यही बात दूसरे शब्दों में श्रीवास्तवजी ने कही थी। आपकी और उनकी बात में अन्तर कहाँ रहा?"

रस्तोगी का पलड़ा भारी पड़ते देख गुप्ताजी फ़ौरन एडमिनिस्ट्रेशन के लाभ बताने लगे; बोले, "इससे विद्यार्थियों को एक नैतिक बल मिलता है, उनमें अध्ययन की भावना जाग्रत होती है, केवल विज्ञप्तियां और आदेश ज़ारी करना ही प्रशासन नहीं है। उसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है।"

रस्तोगी उनकी बातों को 'तर्क के लिए तर्क' कहता हुआ ज़ोर देकर बोला, "आप क्यों नहीं मान लेते कि इस साल बोर्ड की नीति ही बदली हुई थी; उन्होंने इम्पॉर्टेण्ट (महत्त्वपूर्ण) प्रश्नों की बजाय साधारण प्रश्नों पर ज़ोर दिया था ताकि विद्यार्थियों की वास्तविक योग्यता का पता चल सके।"

संक्षेप में रस्तोगी 'अनएक्सपेक्टड पेपर्स' को रिज़ल्ट बिगड़ने का कारण बता रहा था और गुप्ताजी तत्कालीन प्रिंसिपल के शिथिल एड-मिनिस्ट्रेशन को। और दोनों अपनी-अपनी धारणाओं पर दृढ़ एक-दूसरे से

बुरी तरह उलझे थे।

जब काफ़ी देर तक चलती हुई बहस ऊपर उठकर अनिर्णीत ही नीचे आने लगी तो जयप्रकाश अपनी ही खामोशी से अकुला उठा। अपने दोनों हाथ दो विपरीत दिशाओं में फैलाते हुए बोला, "आप दोनों कुछ भी कहिए, पर मेरा तो निश्चित मत है कि रिज़ल्ट बिगड़ने का कारण कॉलेज की कृषि-योजना है।"

जयप्रकाश की आवाज़ में आत्मविश्वास था। वह निर्णयात्मक लहजे में बोला, "देखिए न, फ़ेल होनेवाले लड़कों में पिचासी प्रतिशत गाँव के वे लड़के हैं जो कॉलेज की कृषि-योजना में काम करते थे। ज़रा सोचिए, अगर उनका वक़्त इतनी बेरहमी से बरबाद न किया गया होता तो क्या वे फ़ेल हो सकते थे?"

रामप्रकाश गुप्ता ने जयप्रकाश का आवेश लक्षित किया और साथ ही एक भावी आशंका से उनकी छाती धड़क उठी। बावजूद सारी बातों के वे जयप्रकाश को पसन्द करते थे। उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का लोहा मानते थे। वह अक्सर कहा करते थे कि बात करना कोई जयप्रकाश से सीखे। सारी बातें कह जायेगा मगर शिकायत लायक़ पकड़ की कोई बात नहीं छोड़ेगा। शब्दों का नपा-तुला प्रयोग और संयत तथा सुलझी हुई बातें—जयप्रकाश की अपनी विशेषताएँ थीं। और इन्हीं के कारण कोशिश करने पर भी गत वर्ष प्रिंसिपल को उसका कहा हुआ एक ऐसा वाक्य पकड़ में नहीं आया था जिससे यह सिद्ध होता कि उसने मैनेजिंग कमेटी का कभी विरोध किया है और उसकी नौकरी जाते-जाते रह गयी थी। मगर आज उसी जयप्रकाश को क्या हो गया है जो इतने खुले-खुले शब्दों में कृषि-योजना का विरोध कर रहा है।

...कृषि-योजना का विरोध यानी कमेटी का विरोध !...रामाधीन श्रीवास्तव भी मन में यही सोच रहे थे। शायद जयप्रकाश पिछले साल की चेतावनी भूल गया है...या उसकी कहीं और नौकरी पक्की हो गयी है।

जयप्रकाश ने बात खत्म करके समर्थन के लिए अपने साथियों पर दृष्टि डाली। राजेश्वर और पाठक अपनी-अपनी कुर्सियों से आगे झुक आये थे। मगर उसने गुप्ताजी की ओर देखा तो वह उससे आँखें चुराने

की कोशिश करने लगे। श्रीवास्तवजी ने पीठ कुर्सी से टिका ली और भावशून्य आँखों से छत की ओर देखने। रस्तोगी ने इधर-उधर ताकते हुए ज़ाहिर किया जैसे उसने जयप्रकाश की बात ही न सुनी हो।

जयप्रकाश का चेहरा आवेश के कारण लाल हो गया था और रह-रहकर उसकी उँगलियाँ फड़क उठती थीं। मगर साथियों की ऐसी प्रतिक्रिया देखकर उसका उबाल भी ठण्डा हो गया। और एक बार फिर चन्द मिनटों के लिए खामोशी छा गयी।

दूध के उफ़ान की तरह बार-बार बातों का सिलसिला बनता और टूट जाता। अध्यापकों के चेहरों पर अचानक किसी रोशनी का दिया टिमटिमाता और प्रकाश देने से पहले ही बुझ जाता। घुटी-घुटी-सी आवाज़ें, कुछ बोलने को आतुर अकुलाते हुए-से मौन अक्षर और अपठनीय लिपि से अंकित अध्यापकों के बेज़ुबान चेहरे, इन सब बातों पर राजेश्वर ने जितना ध्यान दिया उतना ही वह उलझता गया।

पाठक को भी जयप्रकाश की इतनी दिलचस्प बात पर अध्यापकों का मौन रहना अखर गया। ऐसे शान्त प्रकृति के पोंगे अध्यापक उसने कहीं नहीं देखे थे। अतः स्वर में भरसक कोमलता लाते हुए जयप्रकाश से पूछ ही बैठा, "क्यों मास्टर साहब, यह कृषि-योजना क्या बला है?" और मन-ही-मन यही प्रश्न राजेश्वर ने भी दोहरा दिया।

जयप्रकाश को इस प्रश्न से बड़ी राहत मिली। यद्यपि कुछ ही मिनट पहले वह सकपकाकर चुप हो गया था, किन्तु भीतर-ही-भीतर निस्तब्धता उसे चुभ रही थी। गो कि प्रश्न अच्छा नहीं था, फिर भी उसने उसका उपयोग परिस्थिति को सँभालने में किया। हँसकर बोला, "धीरे-धीरे सब मालूम हो जायेगा, मास्टर साहब! आज तो आपने ज्वाइन ही किया है।" और फिर वह ऐसी लापरवाह हँसी हँस दिया, जैसे एक मामूली-सी बात को खामखाह बहुत महत्त्व दे दिया गया हो। और अब यह खामोशी घट जानी चाहिए।

शायद जयप्रकाश के करुणार्द्र मुख या शायद वातावरण पर दया करते हुए रामप्रकाश गुप्ता और रामाधीन श्रीवास्तव थोड़ा-सा मुस्करा दिये। रस्तोगी ने भी आँखें मिचमिचायीं। राजेश्वर को आशा बँधी कि

अब वातावरण हल्का हो रहा है। पाठक को भी तनाव टूटता हुआ दिखायी दिया। किन्तु जयप्रकाश के स्वर की कड़ुवाहट को लोग अभी तक पूरी तरह पचा नहीं पाये थे। सबके मन में भय था कि उन्होंने मैनेजमेण्ट की कृषि-योजना-विरोधी चर्चा में भाग लिया है और सब तुरन्त कुछ ऐसा कर देना चाहते थे कि यह सिद्ध न हो सके।

फलस्वरूप दो-चार मिनट तक उखड़ी-उखड़ी बातें करने के बाद, अपने बेक़सूर होने का सबूत देते हुए, सबसे पहले गुप्ताजी और फिर रस्तोगी वहाँ से खिसक लिये। फिर नागरिकशास्त्र के लेक्चरर रामाधीन श्रीवास्तव, पाठकों को लाइब्रेरी दिखाने के बहाने उठा ले गये। और टीचर्स-रूम में रह गये केवल दो आदमी। एक जयप्रकाश जो यह सोच रहा था कि क्या नये अध्यापकों की उपस्थिति में मुझे यह बात नहीं कहनी चाहिए थी और दूसरा राजेश्वर ठाकुर जिसके मन में कृषि-योजना को लेकर तीव्र उत्सुकता जग गयी थी।

उसी समय बराबर के कमरे से पवन बाबू किसी लड़के को फ़ार्म भरने की विधि बतलाते हुए ज़ोर से चीख पड़े, "किस उल्लू के पट्ठे ने तुम्हें मिडिल का सर्टीफ़िकेट दे दिया! तुम एक शब्द तो ठीक लिख नहीं सकते।"

जयप्रकाश का ध्यान उधर चला गया। सोचने लगा, अब ऐनक उतारकर पवन उस लड़के को उल्लू-जैसी आँखों से घूर रहा होगा। और यह सोचकर उसे हँसी आने लगी। मगर राजेश्वर का ध्यान वहीं था। जयप्रकाश के होंठों पर मुस्कान आते देखकर वह फिर पूछ बैठा, "बताइए न मास्टर साहब, क्या है यह कृषि-योजना?"

"कृषि-योजना?" अनायास तन्द्रा से चौंकते हुए जयप्रकाश ने उसी की बात दोहरा दी। फिर एक आत्मीय-सी मुस्कराहट अधरों पर लाते हुए बोला, "आप कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"मावले का।" राजेश्वर ने उत्तर दिया। सोचा, शायद इस प्रश्न का उत्तर से कोई सम्बन्ध हो।

किन्तु जयप्रकाश ने यह प्रश्न केवल यह निश्चय करने के लिए किया था कि वह राजेश्वर को इस बारे में कितना बताये या न बताये। मावले

का नाम सुनकर वह चौंक पड़ा, "तो आप गाँव के रहनेवाले हैं?"

"जी हाँ।" राजेश्वर ने कहा। फिर मुस्कराकर सम्बन्धों की निकटता बढ़ाने की गर्ज़ से बोला, 'कोई गुनाह तो नहीं है गाँव का होना?"

"गुनाह है साहब, बिल्कुल गुनाह है।" जयप्रकाश ने तेज़ी से उसकी बात पलटते हुए कहा, "हर जगह की अपनी खूबियाँ होती हैं। कई जगहें ऐसी होती हैं जहाँ पान थूकना या सिगरेट-बीड़ी पीना गुनाह होता है और कई जगहें ऐसी होती हैं जहाँ बोलना-चालना और हँसना-रोना भी गुनाह होता है। और आप देखेंगे कि ऐसी जगहें भी हैं जहाँ जीना भी गुनाह है। और लोग ये गुनाह कर रहे हैं क्योंकि उनके पास करने के लिए इससे ज़्यादा ठोस और इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण और कोई काम नहीं है।"

राजेश्वर को उसका बात करने का नाटकीय अन्दाज़ बड़ा प्यारा लगा। पर उसने साथ ही यह भी महसूस किया कि यह विषयान्तर हो रहा है। अतः पुनः प्रश्न पर लौटते हुए बोला, "आपकी बात सही है। मगर आप मुझे कृषि-योजना के बारे में बता रहे थे।"

"मैं तो नहीं बता रहा था।" मुस्कराकर जयप्रकाश ने कहा, "अलबत्ता आपने सवाल ज़रूर किया था।"

"चलिए, यही सही।" राजेश्वर हँसकर बोला।

"आप कृषि-योजना के बारे में जानना चाहते हैं?'

"जी हाँ!" राजेश्वर ने पूरी उत्सुकता से कहा।

"और आप गाँव के रहनेवाले हैं?"

"हूँ तो।"

"क्या आपने सानियों को ज़मीदारों की बेगार के लिए कभी कुइयाँ खोदते हुए देखा है?" जयप्रकाश ने उसी तरह की मुस्कराहट होंठों पर लिये हुए पूछा।

"हाँ, देखा है।" राजेश्वर ने तपाक से उत्तर दिया। हालाँकि उसने गाँव में कुइयाँ नहीं, कुएँ की ही खुदाई देखी थी।

जयप्रकाश ने अपनी बात को और स्पष्ट किया, बोला, "देखिए कुइयाँ और कुएँ में बड़ा फर्क होता है। कुएँ, पैसे देकर, जनता द्वारा मज़-

दूरों से खुदवाये जाते हैं और कुइयाँ, भूड़ के ज़मींदार, परोपकार का हवाला देकर सानियों से फोकट में खुदवा लेते हैं। ये कुइयाँ साल-दो-साल बाद रेत के तूफ़ान में अँटकर बेकार हो जाती हैं। परोपकार का लाभ ज़मींदार को मिलता है जिन्हें पानी पीनेवाले मुसाफ़िर दुआएं देते हैं और सानियों का श्रम पानी में मिल जाता है।"

"मगर कृषि-योजना···?"

"कृषि-योजना भी एक कुइयाँ है जिसे उत्तमचन्द गाँव के विद्यार्थियों द्वारा इस आशा में खुदवा रहे हैं कि उन्हे प्रिंसिपल होने का लाभ मिलेगा मगर कुइयाँ खुदवाने का लाभ स्थायी कहाँ होता है ! देखिए न, उत्तमचन्द जी भी अस्थायी प्रिंसिपल हैं।" और इस उपमा पर वह इतनी ज़ोर से हँस दिया कि राजेश्वर की भी हँसी फूटे बिना न रह सकी।

हालांकि जयप्रकाश ने राजेश्वर को हँसकर टाल दिया और कृषि-योजना के बारे में साफ़-साफ़ कुछ भी नहीं बताया, फिर भी वह इतना समझ गया कि कृषि-योजना में गाँव के विद्यार्थियों का श्रम और समय लगाकर उत्तमचन्द मैनेजमेण्ट पर अपनी कार्य-निष्टा का प्रभाव डालना चाहता है। मगर उसका कौतूहल इतने से ही शान्त नहीं हुआ।

अतः सब कुछ समझ जाने का भाव मुख पर लाते हुए उसने पूछा, "कृषि योजना कॉलेज के इन्हीं खेतों में चलती होगी ?"

जयप्रकाश ने गर्दन हिलाकर स्वीकार किया।

राजेश्वर ने कुछ सोचते हुए कहा; "और गाँवों के लड़कों के खून-पसीने की कमाई मैनेजमेण्ट के बनिये हड़प जाते होंगे ?"

जयप्रकाश ने फिर गर्दन हिला दी।

यद्यपि राजेश्वर गाँव का रहनेवाला था और कृषि-योजना पर उसकी प्रतिक्रिया बड़ी अनुकूल थी, फिर भी जयप्रकाश के मन में आशंकाएँ उठ रही थीं। क्या जाने मैनेजमेण्ट के किस मेम्बर से उसके कैसे सम्बन्ध हों ? इसलिए वह उसकी बातों का जवाब सिर्फ़ गर्दन हिलाकर दे रहा था।

राजश्वर की कनपटियों की नसें उभरने लगीं और उसके चेहरे पर आक्रोशपूर्ण तनाव बढ़ता गया। मुंह का थूक सटकते हुए बड़ी घृणा से

उसने कहा, "यह उत्तमचन्द पूरा हरामी है, यह बात मैं इण्टरव्यू के दिन ही समझ गया था। मगर मास्टर साहब, मैं आपसे बताये देता हूँ कि ये मैनेजमेण्ट के लोग इसके भी बाप हैं। क्या वे नहीं जानते थे कि इस कृषि-योजना द्वारा गांव के लड़कों की जिन्दगियाँ बरबाद की जा रही हैं?" और फिर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए राजेश्वर बोला, "मुझे आश्चर्य है कि गांव के होकर भी आपने ऐसी बातें कैसे बरदाश्त कर लीं?"

बात राजेश्वर ने कुछ इस दर्द और अपनत्व से कही थी कि जयप्रकाश के सारे शरीर में झनझनी-सी दौड़ गयी। जैसे विरोध और असन्तोष की दबी हुई बारूद में सहसा किसी ने चिंगारी लगा दी हो।

भय तभी तक भय रहता है जब तक हम अपने-आपको अकेला और कमज़ोर महसूस करते हैं। विश्वासपूर्ण राजेश्वर की चुनौती ने जयप्रकाश को एक सहारा दिया। उसका मन हुआ कि वह फट पड़े, मगर भीतर का आक्रोश दबाकर ईमानदारी से बोला, "अकेला चना भाड़ नहीं भूँज सकता ठाकुर भाई, और मैं अपनों के होते हुए भी अकेला था। किसी ने कभी इतनी हिम्मत नहीं दिखायी कि मेरे स्वर को सहारा दे। मेरी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बनकर रह गयी।"

राजेश्वर तैश में बोला, "मैं तो बरदाश्त नहीं करूंगा ऐसी बातें। मैं गांव का रहनेवाला हूँ और गांव के लड़कों का हित देखना मेरा पहला फर्ज़ है।"

जयप्रकाश ने राजेश्वर को बड़ी आभारपूर्ण दृष्टि से देखा। उसे राजेश्वर में वह अग्नि दिखायी दी जिसकी वह खुद में कमी पाता था। वह शिखा जो बढ़कर दूसरे को छू सकती है, विस्फोट बनकर फैल सकती है और हर जगह प्रज्वलित हो सकती है। वह इसी शिखा की तलाश में तो था। बोला, "इसी बात पर आज से तुम मेरे मित्र हुए। पुराने ज़माने में लोग नयी मित्रता के उपलक्ष्य में पगड़ी बदला करते थे। हम अपने-अपने विचार बदलेंगे।"

और इसके बाद दोनों ने अपना-अपना हृदय खोलकर एक-दूसरे के सामने रख दिया। राजेश्वर की मित्रता पर भाव-विभोर होते हुए जय-

प्रकाश ने कहा, "अब देखना ठाकुर, अब गांववालों का शोषण नहीं हो सकता। अब उनकी उन्नति होगी।" फिर एक पल रुककर बातचीत की गम्भीरता को हल्का बनाने के लिए उसने कहा, "मैं तो मरते समय अपनी औलाद के नाम वसीयत कर जाऊँगा कि मेरी कोई भी सन्तान इस मास्टरी के धन्धे में न पड़े, और मास्टरी भी करे तो प्राइवेट स्कूल-कॉलेज में न करे, और प्राइवेट कॉलेजों में भी करे तो राजपुर के इस हिन्दू-कॉलेज में न आये।"

राजेश्वर को हँसी आ गयी। जयप्रकाश की नियुक्ति की कथा जानने के लिए उसने पूछा, "मगर तुम यहाँ कैसे आ गये ?"

"मैं ?" जयप्रकाश थोड़ा गम्भीर हो गया, बोला, "बस वैसे ही जैसे तुम आ गये। इन्हें एक असिस्टैण्ट टीचर की ज़रूरत थी और सौभाग्य से उस साल इनके किसी रिश्तेदार ने एप्लाई नहीं किया था !"

"ऐसा !" राजेश्वर ने विस्मय से कहा, "बड़ी आसानी से आ गये। मगर मैं ऐसे नहीं आया !"

"तो ?" जयप्रकाश ने प्रश्न किया।

"मुझे तो इन्होंने इण्टरव्यू कार्ड तक नहीं भेजा था। मगर पिताजी मेरे ज़रा दबंग किस्म के आदमी हैं। वह लाला हरीचन्द के भट्ठे पर ईंटें लेने आये थे कुछ दिन पहले, और उनसे साफ़-साफ़ कह गये थे कि अगर लड़के को स्कूल में नहीं रखा तो हमारे आठों गाँवों का एक भी लड़का यहाँ पढ़ने नहीं आयेगा। और यही बात उन्होंने गनेशीलाल के छोटे भाई से भी कही थी जो खँडसाल का व्यापार करता है; बल्कि उससे तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि अगर राजेश्वर नहीं लिया गया तो समझ लो, इस बार चाहे सारी राब सोन में बहा देनी पड़े मगर तुम्हें एक मटकी नहीं मिलेगी। और तुम जानो, बनिये की जात पहले अपना व्यापार देखती है, इसलिए बी० ए० में सप्लीमेण्टरी होने के बावजूद इन्हें मुझे लेना पड़ा।"

जयप्रकाश उसकी नियुक्ति के पीछे किसी-न-किसी सिफ़ारिश की आशा तो जरूर करता था मगर इस तरह की घटना का उसे अनुमान भी न था; इसलिए बहुत हँसा। और उसने भी एक-दो अध्यापकों की

नियुक्तियों की कहानियाँ राजेश्वर को सुनायीं।

शायद नियुक्तियों के पीछे निहित इन्हीं अन्तर्कथाओं को लक्ष्य करके राजेश्वर बोला, "मास्टर साहब! ऐसे माहौल में क्या पढ़ाई होती होगी लड़कों की, और क्या अध्यापक पढ़ाते होंगे?"

जयप्रकाश खुद यही सोच रहा था कि शिक्षा के नाम पर हम कैसा मज़ाक कर रहे हैं। कॉलेज के संस्थापकों का उद्देश्य शिक्षा न होकर संस्था के द्वारा निजी प्रभुत्व का विस्तार करना है। अतः राजेश्वर की बात का उसने कोई उत्तर न दिया।

तभी राजेश्वर ने आग्रह किया, "मुझे इस कॉलेज के बारे में कुछ और बताओ न! तुम तो चुप हो गये।"

इस आग्रह पर जयप्रकाश कुछ तय नहीं कर पाया कि वह क्या बताये। गाँवों के छात्रों के साथ परायों-जैसा व्यवहार। अध्यापकों की तनख्वाहों में से कारण-अकारण कटौती। कुछ अध्यापकों को सौ रुपये देकर एक सौ बीस पर दस्तखत कराना। कॉलेज के दिन-प्रतिदिन के कार्यों में मैनेजमेण्ट का हस्तक्षेप। हर साल नये अध्यापकों की नियुक्ति का अवसर प्राप्त करने के लिए पुराने अध्यापकों को निकाल बाहर करने की तिकड़में। कॉलेज के नाम पर इकट्ठे किये चन्दे की मोटी-मोटी रकमें हड़प कर जाना, या कृषि योजना का सुनहरा फरेब? ये इतनी सारी बातें नक्शे की तरह उसके मानस-पटल पर खुली पड़ी हैं। वह क्या बताये, क्या न बताये?

राजेश्वर ने फिर आग्रह किया तो उसने वस्तुस्थिति की संक्षिप्त-सी रूपरेखा बनाते हुए भारी दिल से कहा, "क्या बताऊँ? यह शिक्षण-संस्था नहीं है ठाकुर, कन्सेण्ट्रेशन-कैम्प है। यहाँ के हालात में कोई आदमी जहर खा सकता है, नौकरी नहीं कर सकता। मगर ठाकुर, जिस तरह मजबूरी आदमी को मरने के लिए विवश करती है, उसी तरह कभी-कभी जीने के लिए भी बाध्य कर देती है।"

और जयप्रकाश के सामने फिर अपने गाँव के वे खेत घूम गये जिन्हें मालिनी नदी ने बरबाद कर रेत से भर दिया था और उसकी अनेक अर्ज़ियों के बावजूद जिनका पूरा लगान उससे अब तक लिया जाता था। गाँव में, खेती से, साल भर खाने योग्य अन्न पाने का जो एकमात्र साधन

था वह भी नष्ट हो चुका था। सारी ज़िम्मेदारी अब अकेले जयप्रकाश पर थी। बोला, "अगर मेरे ऊपर मेरे और मेरे स्वर्गीय भाई के पाँच बच्चों का दायित्व न होता तो मेरी सहनशीलता इस तरह हमेशा मेरे जवान खून का टेम्प्रेचर ऊपर चढ़ने से न रोक लेती।" जयप्रकाश बोलता जा रहा था और राजेश्वर को लग रहा था कि जैसे एक-एक शब्द में वह अपना कलेजा निकालकर रखे दे रहा है। गाँवों के विद्यार्थियों के फेल होने पर राजेश्वर भी दुखी था और उसे कृषि-योजना की रचना एक छलावा प्रतीत हो रही थी, मगर जयप्रकाश के हाव-भाव और आवेशसहित बात करने के अन्दाज़ ने उसमें और ज़्यादा गर्मी पैदा कर दी थी। उसे लगा कि तुरन्त इसके लिए कुछ करना चाहिए, कुछ ऐसा कि जयप्रकाश को शान्ति मिले और उसका दिल हल्का हो। बोला, "क्या इस कृषि-योजना को बन्द नहीं कराया जा सकता?"

यह जयप्रकाश का मर्मस्थल था जहाँ राजेश्वर ने उँगली रख दी। सबसे ताज़ा और रिसता हुआ जख्म। इसी कृषि-योजना के द्वारा तो उसकी भावनाओं का गला घोंटा गया था। उसके कानों में आतंक का शोर ठूंसकर ज़बान पर आदेशों के ताले जड़ दिये गये थे, ताकि वह गाँव के भोले और नासमझ विद्यार्थियों के शोषण के विरुद्ध कुछ न बोल सके। मगर अहसास के रास्ते खुले थे, कुछ सोचते हुए वह बोला, "मुश्किल तो कुछ नहीं, मगर खतरनाक है। मैं भुगत चुका हूँ।"

"खतरनाक कुछ नहीं, तुम कहो तो मेरे गांव के दो-तीन लड़के यहाँ हैं, उनसे बात करूँ कि ये क्या खेती-वेती का चक्कर लगा रखा है तुम लोगों ने?" राजेश्वर ने लापरवाही से, पूर्ण निश्चयात्मक स्वर में कहा।

जयप्रकाश उठ खड़ा हुआ था मगर राजेश्वर का प्रस्ताव सुनकर फिर बैठ गया। बोला, "सोचकर बताऊँगा।"

उसकी उँगली सिर को खुजाने लगी थी और होंठों पर हमेशा पड़ी रहनेवाली मुस्कान ग़ायब हो चुकी थी। राजेश्वर और उसके इस प्रस्ताव के बारे में सोचते हुए उसे लगा कि इस आदमी में शक्ति और हौसला तो है पर सन्तुलन और दूरदर्शिता का अभाव है। एक क्षण को उसने सोचा कि

क्यों न इस आदमी को सीधा उत्तमचन्द के मुक़ाबले पर खड़ा कर दूं, पर दूसरे ही क्षण महसूस किया कि दोस्त बनाकर ऐसा विश्वासघात करना उचित नहीं होगा।

किन्तु राजेश्वर पर उतावली सवार थी। वह चटपट कुछ कर डालना चाहता था। अतः बोला, "कुछ सोचा ?"

जयप्रकाश ने कहा, "देखो, ऐसे मामलों में मेरा सिद्धान्त है कि आवेश में सोची हुई हर बात को 'पेंडिंग' में डाल देना चाहिए। और तब तक उस पर नहीं सोचना चाहिए जब तक कि आवेश बिल्कुल शान्त न हो जाये। यह गुण मैंने उत्तमचन्द से सीखा है।" और कुछ रुककर, कहीं राजेश्वर हतोत्साह न हो जाये, इसलिए उसने फिर कहा, "पहले तुम विद्यार्थियों के नाम बताओ, जिनसे इस बारे में बात करोगे। भई, स्थिति यह है कि यहाँ अध्यापक ही नहीं, कुछ विद्यार्थी भी मैनेजमेण्ट के लिए जासूसी करते हैं। इसलिए बहुत सोच-समझकर क़दम उठाने की ज़रूरत है।"

राजेश्वर जयप्रकाश की बात से आश्वस्त हुआ। और फिर अपने गाँव के विद्यार्थियों के नाम बताने लगा, "गुलशेरसिंह, उम्मेदसिंह, सज्जन और रामपूजन…"

"रामपूजन ?" जयप्रकाश एकदम चौंककर बोला, "तुम्हारे गाँव का है यह लड़का ?"

और फिर बिना उत्तर लिये ही कहने लगा, "मेरा ख़ास स्टूडेण्ट था यह लड़का। इसके फ़ेल होने का मुझे जितना अफसोस हुआ है, उतना खुद उसे भी नहीं होगा। खेल-कूद में वह अव्वल, फुटबाल का वह कैप्टेन और पढ़ने-लिखने और सांस्कृतिक गतिविधियों में वह सबसे आगे। मगर वाह रे उत्तमचन्द ! कृषि-योजना के श्रम-सेवकों का संयोजक बनाकर तूने उस का भी साल बरबाद कर दिया !"

राजेश्वर ने कहा, "मेरे गाँव का ही नहीं, बल्कि खानदानी रिश्ते में मेरा भतीजा लगता है रामपूजन।"

"बस, तो ठीक है।" जयप्रकाश ने खड़े होते हुए कहा, "सारे लड़कों से कहने की ज़रूरत नहीं, उसी से कह देना काफ़ी होगा। आओ।"

और बातें करते हुए दोनों एक-एक कप चाय पीने के लिए गूंगे हल-

वाई की दुकान की तरफ़ चल दिये। तभी रास्ते में राजेश्वर को सत्यव्रत का ध्यान आ गया। बोला, "गाँव का एक साथी और भी तो आया है।"

"मैं मिल चुका हूँ।" जयप्रकाश ने निर्लिप्त भाव से कहा और अपने में खोये हुए जेब से एक बीड़ी निकालकर सुलगा ली। नींबू के नीचे पड़ी खाट पर बैठकर उसने एक लड़के को दो कप चाय लाने के लिए भेजा। राजेश्वर ने जेब से कैंची की सिगरेट निकालकर पेश की तो उसने हाथ जोड़ दिये। बोला, "क्यों मेरे मुँह का ज़ायका ख़राब करते हो, अभी तो चाय पीनी है!"

लौटते हुए

तीसरे पहर, चार बजे के करीब, जब कॉलेज में छुट्टी का घण्टा बजता है तो सारी इमारत लड़कों के भयंकर शोर से दहल उठती है। 'हा-हा, हू हू' करती बेइन्तहा खुशी से उछलती हुई आवाज़ें, इमारत के प्रत्येक कमरे, दरवाज़े और बरामदे की छत से टकराती हुई ऊँघते-से वातावरण में हलचल भर देती हैं। लड़के कक्षाओं से निकलकर ऐसे भागते हैं जैसे वर्षों की क़ैद काटकर छूट रहे हों। बेतरतीब किताबें, कापियाँ और बस्ते दबाये वे जल्दी-से-जल्दी सड़क पर आने की कोशिश करते हैं। और कभी-कभी तो घर पहुँचने के लिए आपस में छोटी-मोटी दौड़ प्रतियोगिता भी हो जाती है।

जब लड़के शहर के पास पहुँच जाते हैं तब कहीं अध्यापक निकलते हैं और दो-दो, चार-चार के समूहों में कॉलेज, घर और बाज़ार की बातें करते धीरे-धीरे शहर की ओर बढ़ते हैं। आम तौर पर सबसे आगे वे अध्यापक होते हैं जिनके घर शहर में हैं और जिनके बीवी-बच्चे उनका इन्तज़ार कर रहे होते हैं। फिर कुछ बुजुर्ग अध्यापकों का दल निकलता है, और सबसे पीछे निकलते हैं वे अध्यापक जिनका न कोई घर होता है और न कोई इन्तज़ार करनेवाला।

उस दिन भी यही हुआ। शनिवार होने के कारण सत्यव्रत शाम की

गाड़ी से घर जाने की सोच रहा था। वह स्कूल से जल्दी निकल जाना चाहता था ताकि साढ़े पाँच बजे तक फिर स्टेशन ग्रा सके···मगर जयप्रकाश ग्रौर राजेश्वर के कारण कॉलेज में ही सवा चार बज गये। ग्रौर फिर वहाँ से निकले तो ऐसी चाल से चलना शुरू किया कि सत्यव्रत को लगा—चालीस मिनट से पहले वह ग्रार्यसमाज मन्दिर नहीं पहुँच सकेगा।

वार-बार सत्यव्रत के पाँवों की गति तेज़ होती ग्रौर वह ग्रपने बराबर चलनेवाले राजेश्वर ग्रौर जयप्रकाश से कुछ क़दम ग्रागे हो जाता। बार-बार जयप्रकाश की बातों का सिलसिला उसके लिए टूट जाता ग्रौर बरबस उसका ध्यान अपने स्टेशन से गाँव तक के उस कच्चे रास्ते पर चला जाता जिसे ग्राज सन्ध्या के ग्रँधेरे में उसे तय करना था। राजपुर से चलकर शाम की गाड़ी सवा सात, साढ़े सात के लगभग मौज़मपुर पहुँचती है। फिर वहाँ से गाँव तक पैदल जाना पड़ता है। हालाँकि डेढ़-दो मील की बात है, कोई ज्यादा फ़ासला नहीं, पर रास्ता काफ़ी खतरनाक है।······ मालिनी और लकड़हान, दो तो नदियाँ ही पड़ती हैं···और दोनों पहाड़ी नदियाँ। ऐसी कि यहाँ चाहे एक बूँद न पड़े पर पहाड़ पर बारिश हो जाये तो लबालब भर जाती हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि स्टेशन पर संग-साथ के लिए बिजनौर की ज़िला-कचहरी से लौटते हुए, ग्रास-पास के गाँवों में जानेवाले सहयात्री ग्रक्सर मिल जाते हैं।

"क्यों भाग रहे हो, यार? तुम्हारी गाड़ी तो छः के भी बाद जाती है। फिर तुम्हें कौन ऐसा सामान बाँधना है?" राजेश्वर ने सत्यव्रत के कुछ ग्रागे निकल जाने पर ग्रपनी झुँझलाहट प्रकट की। फिर जयप्रकाश के साथ तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाने लगा। झेंपकर सत्यव्रत उन दोनों की बराबरी में ग्राने के लिए ठिठक गया। उसने सोचा, सचमुच उसे सामान तो कुछ नहीं बाँधना, बल्कि गाँव से सामान लाने के लिए ही वह जा रहा है। फिर यहाँ सामान ही क्या है उसके पास? हाँ, प्रबन्धकजी को सूचित ग्रवश्य करना है। सम्भवतः स्वामीजी भी उसी के साथ शाम की गाड़ी से नजीबा-बाद जायें।

"हाँ, तो मैं कह रहा था," पास आते हुए राजेश्वर ने सत्यव्रत के

कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "तुम्हें इतनी जल्दी क्या है ? कोई इन्तज़ार कर रहा है ?"

'कोई' शब्द के साथ अनायास जिस तरह राजेश्वर ने दायीं ओर को गर्दन हिलायी उससे सत्यव्रत को सहसा विमला का ध्यान हो आया। हालांकि उस दिन यज्ञवेदी पर बहुत ग़ौर से उसे नहीं देख सका था, फिर भी एक-दो बार उसने यह ज़रूर महसूस किया था कि आत्मीयता और भावविह्वल तन्मयता के क्षणों में विमला अपनी गर्दन को एक हल्का-सा झटका दे देती है। शायद यह उसकी आदत बन गयी है।

परसों जब वह कॉलेज से लौटकर जा रहा था तो चौधरी साहब के घर के सामने से गुज़रते हुए दरवाज़े पर विमला खड़ी दिखायी दी थी। राजेश्वर ने फ़ौरन चुटकी लेकर उसका ध्यान उधर मोड़ दिया था।

तभी धीरे से मुस्कराकर जयप्रकाश ने कहा था, "मैं साफ़ देख रहा हूँ कि हम तीन आदमियों के दल में उसकी दृष्टि सिर्फ़ तुम्हें देखने के लिए तरस रही है, वैसे ही जैसे वर्षा की भयंकर झड़ी में भी पपीहा एक स्वाति-बूंद के लिए तरसता रहता है।"

बातें करते हुए तीनों आगे बढ़ आये थे, फिर भी जयप्रकाश की बात पर चप्पल ठीक करने के लिए नीचे झुके हुए सत्यव्रत की दृष्टि अनायास पीछे की ओर लौट गयी थी। एक क्षण को उसे महसूस हुआ कि एक कोमल दृष्टि अब तक उसके पीछे-पीछे आ रही थी। उधर शायद सत्यव्रत के मुड़-मुड़कर देखने के इस तरीके को विमला भी समझ गयी थी और स्वभाववश उसने गर्दन को एक हल्का-सा झटका दिया था। और उसी झटके से सत्यव्रत को निश्चय हो गया था कि हो-न-हो यह वही यज्ञवाली लड़की है।

सत्यव्रत को कोई जवाब न देते देखकर राजेश्वर ने फिर चुटकी ली, "हाँ भई, बताया नहीं कौन इन्तज़ार कर रहा है ?"

सत्यव्रत चाहे राजेश्वर से कितना ही फ़ासला रखे और कितनी ही शिष्टता बरते मगर राजेश्वर उससे निहायत बेतकल्लुफ़ी से बातें करता है।

"सम्भवतः स्वामीजी आज जायें।" सत्यव्रत ने राजेश्वर के मज़ाक

पर गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए कहा, "वैसे मेरा क्या, मैं तो कॉलेज से सीधा भी स्टेशन जा सकता था। किन्तु···"

"अरे वो स्वामीजी ! जिन्होंने तुमसे और नत्थूसिंह की लौण्डिया से यज्ञ कराया था ?" उद्दण्डता से राजेश्वर ने पूछा।

"हाँ, वह ही।" सत्यव्रत ने सादर उत्तर दिया।

"बड़ा पाखण्डी है !" राजेश्वर ने आँखें मींचकर जल्दी-जल्दी सिर हिलाया और मुँह से साँस की फुरहरी छोड़ते हुए जयप्रकाश से यह कहा, जैसे एक घृणा की भावना उसकी पूरी देह में फैल गयी हो।

जयप्रकाश चुपचाप दोनों की बातें सुन रहा था।

सत्यव्रत को राजेश्वर की बात उचित नहीं लगी। बोला, "आपने ऐसी धारणा सुनकर ही बना ली, राजेश्वर भाई ! मैं कहता हूं यदि आप उन्हें निकट से कभी यज्ञ करते हुए या आहुति देते देखें तो निश्चय ही अभिभूत हो उठेंगे। आपको लगेगा। कि वह वास्तव में सिद्धपुरुष हैं।"

"रहने दो यार, देखा है मैंने !" राजेश्वर लापरवाही से बोला, "इण्टरव्यू से पहले पिताजी के साथ एक दिन मैं भी आर्यसमाज मन्दिर के उस यज्ञ में जा फँसा था। मुझे तो लगता है कि हमारे भाई जयप्रकाश इस स्वामी के रोल को उससे कहीं अधिक अच्छा कर सकते हैं। ऐक्टिंग ही तो है—क्यों भाई ?"

जयप्रकाश ज़ोर से हँस पड़ा। पर तुरन्त ही, कहीं सत्यव्रत की भावना को चोट न पहुँचे, इसलिए संयत होते हुए गम्भीर बनकर बोला, "लोगों के बारे में राय बनाने में तुम बहुत जल्दी करते हो, ठाकुर ! बल्कि कहूँ कि कभी-कभी तो ज़्यादती कर देते हो।"

सत्यव्रत को जयप्रकाश की बात सही लगी। राजेश्वर शायद जयप्रकाश का मूल भाव समझकर चुप हो गया। सत्यव्रत ने कातर दृष्टि से उन दोनों की ओर देखकर गर्दन लटका ली।

शहर शुरू हो गया था। मनिहारों की बस्ती की खपरैलोंवाली झोंपड़ियाँ, कच्चे कोठे और उनके बग़ल में खड़े बिटौड़े, जिनके भीतर शहर की

सड़कों से इकट्ठा किये हुए गोबर के कण्डे भरे थे, नज़दीक आते गये। करंजुओं और कांच की चूड़ियों के टुकड़ों से टीचने का खेल खेलते हुए लड़के अपने में खोये थे। सड़क से हटकर हमवार कच्ची ज़मीन पर उन्होंने कुछ गुच्चियाँ खोद ली थीं और उन्हीं में चूड़ियों के टुकड़ों और करंजुओं को निशाना साध-साधकर फेंक रहे थे। इस समय कॉलेज से आनेवाली भीड़ के वे इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्होंने बिल्कुल पास से गुज़र जानेवाले उन तीनों अध्यापकों पर ध्यान ही नहीं दिया।

सत्यव्रत ने देखा, झोंपड़ियों और बेतरतीब कच्चे कोठों से आगे बने मकान पक्के भी हैं और सिलसिलेवार भी। ये शायद अपेक्षाकृत अधिक मालदार मनिहारों के मकान हैं। इन्हीं मकानों का सिलसिला खत्म होने के बाद सड़क के बायीं ओर एक पुरानी-सी दुमंज़िली इमारत है जिसकी ऊपरी मंज़िल के दरो-दीवार से शीरे की गन्ध आती है और दिनभर लाल बड़े ततैयों की भीड़ भनभनाती रहती है। नीचे एक बड़ा फाटक है जिसके दोनों ओर दो-दो बड़े-से रथखाने हैं। सामने लाला हरीचन्द का एक बड़ा-सा घेर है जिसके फाटक से लगी हुई एक छोटी-सी कोठरी का दरवाज़ा सड़क की तरफ़ भी खुलता है। कोठरी के सामने मुश्किल से एक फुट का चबूतरा है जिससे सरलतापूर्वक बराबरवाले चौधरी नत्थूसिंह के चबूतरे पर चढ़ा जा सकता है। [सत्यव्रत ने अनुभव किया कि स्टेशन से शहर में प्रविष्ट होते ही पहला ढंग का मकान चौधरी साहब का पड़ता है जो बाहर से बैठकनुमा लगता है। आगे के दो कमरों में से पहला अर्थात् सामनेवाला कमरा चौधरी साहब के डॉक्टर लड़के के मरीज़ों के लिए है और दूसरा बायें हाथवाला स्वयं उनके बैठने-उठने के लिए। इन दोनों कमरों के बीचोबीच, बरामदे से हवेली में जाने का दरवाज़ा है।

विमला परसों उसी दरवाज़े में खड़ी थी और आज फिर जब वे तीनों दरवाज़े के सामने से गुज़रे तो वह वहाँ खड़ी दिखलायी दी। सत्यव्रत की दृष्टि अनायास ही उधर चली गयी थी मगर दूसरे ही क्षण उसने आँखें फिरा लीं और राजेश्वर तथा जयप्रकाश की ओर देखने लगा कि कहीं उन्होंने उसे देख तो नहीं लिया।

तभी राजेश्वर ने जयप्रकाश के कुहनी छुआते हुए सत्यव्रत की ओर

देखा। लज्जा से लाल होते हुए सत्यव्रत ने गर्दन झुका ली। मगर राजेश्वर बाज़ न आया, बोला, "अरे भलेमानस, कोई इतनी तन्मयता से प्रतीक्षा कर रहा है, कम-से-कम एक नज़र भरकर देख तो ले !"

ढलती हुई दोपहर की धूप हल्की होती जा रही थी। पड़ोस के मकानों के छज्जों और दीवारों की परछाइयाँ धूप में फ्रेम से उखड़ी तसवीरों की तरह पड़ी थीं। नालियों के पास बैठे कुत्ते हाँफ रहे थे।

राजेश्वर की फब्ती पर सत्यव्रत घबरा उठा। मारे विवशता के उसे कोई उत्तर न सूझा। शायद कुछ बोल न पाने की असमर्थता से पीड़ित होकर ही उसने मजबूरन मुड़कर पीछे देखा। चाँदी-सी उजली धूप पार करके जब उसकी दृष्टि चौधरी साहब के बरामदे में पहुँची तो विमला घर में जाने के लिए पीठ मोड़कर खड़ी हो गयी थी। एक क्षण को उसकी सफ़ेद धूप-सी साड़ी पर पड़ी वेणी सत्यव्रत को ऐसी लगी जैसे धूप बिखरी सड़क पर किसी खम्भे की छाया पड़ रही हो।

"चली गयी !" पीछे देखते हुए राजेश्वर ने होंठ बिचकाकर निराशा के साथ जयप्रकाश से कहा।

जयप्रकाश किसी की नमस्ते का उत्तर दे रहा था। शहर की चहल-पहल शुरू हो गयी थी और जान-पहचान के लोग और विद्यार्थी मिलने लगे थे। अगली दाहिनी गली के छोर पर जयप्रकाश का कमरा था। मगर उधर न मुड़कर वह सीधा इन्हीं लोगों के साथ चलता रहा। सामने पोस्ट ऑफ़िस था और पोस्ट ऑफ़िस से आगे एक खाली मैदान के बाद पक्के-से अहाते में लाला छदम्मीलाल का घेर। आर्यसमाज मन्दिर को जानेवाली गली उसी घेर के नीचे से होकर जाती है।

छदम्मीलाल के इस बड़े-से अहाते में एक तरफ़ बूरा कुटती थी और दूसरी तरफ आटा पीसने, कुट्टी काटने और धान कूटने की मशीन लगी थी। अहाते का एक बड़ा-सा फाटक था जिसके सामने से गुज़रनेवाले लोग चक्की की 'कुक-कुक' कर गूंजती रहनेवाली आवाज से आकृष्ट होकर उधर ज़रूर देखते थे। आज मशीन का कोई पुर्ज़ा खराब हो गया था, इसलिए आने-जानेवाले बिना ध्यान दिये ही उधर से गुज़र जाते थे।

यूँ तो उधर से गुज़रनेवाले सारे अध्यापक छदम्मीलाल को नमस्कार

करते ही थे, पर कई बार ऐसा भी हुआ कि जब उनके पास कोई मेहमान बैठा होता तो ये अध्यापक ज़रूर चुपचाप खिसकने की कोशिश करते थे। ऐसे अवसरों पर छदम्मीलाल को उनकी उपेक्षा अखरती थी और अक्सर उन्हें आवाज़ लगाकर मास्टरों को बुलाना पड़ता था और नमस्कार ग्रहण करने के बाद अपने मेहमान को परिचय देना पड़ता था, "ये हमारे स्कूल में मास्टर हैं। दो-सौ ढाई-सौ रुपये पाते हैं।"

आज भी उन्हें आवाज़ लगानी पड़ी, "आओ मास्टर साहब, कहाँ चले ?" और गली के दूसरी ओर से आते हुए प्रवीणचन्द्र शास्त्री को छदम्मीलाल के घेर में आना पड़ा। हाथ जोड़कर नमस्कार एवं बाबू साहब का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् दोनों खाट पर बैठ गये। तभी फाटक से गुज़रते हुए जयप्रकाश ने छदम्मीलाल और बालिस्टर साहब को नमस्ते की तो उसे भी उन्होंने अन्दर आने का इशारा कर दिया, साथ ही दोनों साथियों को भी।

सत्यव्रत ने शायद इशारा नहीं देखा था। जयप्रकाश उधर मुड़ने को हुआ तो सत्यव्रत बोला, "अच्छा, मैं तो चलूंगा, जय भाई !"

जयप्रकाश ने कहा, "यह हमारी कमेटी के मेम्बर हैं।"

"देखा तो मैंने है, पर कोई परिचय नहीं।" बिना किसी अहम् या गर्व के सत्यव्रत ने कहा और बोला, "मुझे अभी गाड़ी भी पकड़नी है।"

"ठीक है।" जयप्रकाश बोला और खुद राजेश्वर के साथ फाटक में घुस गया।

लस्सी से भरी पतीली सामने रखे छदम्मीलाल ने एक उचाट-सी दृष्टि आनेवाले मास्टरों पर डाली और उन्हें खाट पर बैठने का इशारा करते हुए सामने कुर्सी पर बैठे एक बुज़ुर्ग-से आदमी से थोड़ी और लस्सी लेने का आग्रह करने लगे।

जयप्रकाश आँखों में परिचय और उत्सुकता का भाव भरकर उधर ही देखने लगा। बुज़ुर्ग सज्जन को छदम्मीलाल और उनकी बराबर में बैठे कॉलिज-कमेटी के एक अन्य मेम्बर सागरमल उर्फ़ बालिस्टर साहब, बार-बार 'बाबू साहब' कहकर सम्बोधित कर रहे थे और बाबू साहब अपनी बुज़ुर्गी का अहसास कराते हुए बड़े ही रौबीले अन्दाज़ में उनसे बातें कर

रहे थे। वह साठ वर्ष के मझोले क़द के तन्दुरुस्त आदमी थे और दोनों से ही उम्र में पन्द्रह-बीस वर्ष बड़े थे। इसलिए विषय के विवादास्पद होने के बावजूद बातचीत से एक लिहाज़ साफ़ ज़ाहिर हो रहा था।

बाद में परिचय होने पर जयप्रकाश को मालूम हुआ कि बाबू साहब बालिस्टर साहब के सगे चाचा हैं और हाल ही में एग्रीकल्चर-इन्स्पेक्टर के पद से रिटायर होकर आये हैं। अब भी वह बाग़ में चार-चार घण्टे तक लगातार फावड़ा चला सकते हैं। उन्हें देखकर पहली ही झलक में यह लगता था कि यह दृढ़ प्रकृति का आदमी है।

बातचीत का केन्द्र बालिस्टर साहब का लड़का ईन्दल था जो इस साल दूसरी बार हाईस्कूल की परीक्षा में फेल हुआ था। बालिस्टर का विचार उसे बिजनौर दाखिला दिलाने का था जबकि छदम्मीलाल का कहना था कि ऐसा करने से हमारे स्कूल की बड़ी बदनामी होगी। इस विषय में बाबू साहब की राय की प्रतीक्षा थी।

आख़िर परिचय के बाद बाबू हरकरण सहाय ने कहा, "नहीं, नहीं, तुम नहीं समझते हो, छदम्मीलालजी, यह लड़के की ज़िन्दगी का सवाल है, स्कूल की बदनामी की इसमें कोई बात नहीं। हमेशा मुक़दमे में सबसे अच्छा वकील, बीमारी में सबसे अच्छा डाक्टर और तालीम के लिए सबसे अच्छा स्कूल चुनना चाहिए।"

"मगर बाबूजी, हमीं लोग तो क्या कहदे करे, स्कूल के मेम्बर और करता-धरता हैं, और हमारे ही बच्चे बाहर पढ़ने कू जानै लगैं तो क्या कहदे करें, भला और लोगों पै क्या असर पड़ेगा?" छदम्मीलाल ने अपना तर्क पेश किया।

"नहीं, नहीं, तुम गधे हो, तुम अपनी पोजीशन ग़लत समझते हो। तुम लोग तो नाम-मात्र के मेम्बर हो, कर्ता-धर्ता तो वह हरीचन्द ही है। मैं उसे चालीस साल से जानता हूँ। वह बहुत बदमाश है।" बाबूजी ने अपनी बुज़ुर्गी और अनुभवों की दुहाई देते हुए कहा।

जयप्रकाश को लगा, 'तुम गधे हो'—यह कहना, एक तरह से बाबू साहब का तकिया-कलाम है जिसे वह अपने विपरीत राय प्रकट करनेवाले हर व्यक्ति से कहते हैं।

छदम्मीलाल ने अपने विशेषण पर कोई आपत्ति नहीं की और न बाबू साहब की बात का ही खण्डन किया। वह बालिस्टर की तरफ़ देखने लगे।

"यही बात मैं कहा करता हूँ।" बालिस्टर सागरमल अपने चाचा की बात पर उत्साहित होकर बोला, "हम लोग तो बस हाथ उठाने और दस्तख़त करने-भर के मेम्बर हैं। स्कूल के मालिक तो गनेसीलाल, लाला हरीचन्द और चौधरी नत्थूसिंह ही हैं। इसीलिए मैंने सोचा कि अबके चाहे पचास रुपये महीना ख़र्च हो जायें, पर ईन्दल को भेजूंगा बिजनौर ही।"

"ठीक है, ठीक है।" बाबू साहब ने गर्दन हिलाकर सहमति जतायी और बोले, "देहातियोंवाला काम नहीं करना चाहिए। यहां पर उसकी पढ़ाई नहीं हो सकती।"

बाबू साहब की स्वीकृति से बालिस्टर सागरमल को बड़ा सहारा मिला। बाबू साहब के आगे-पीछे कोई न था, इसलिए उन्हें डेढ़ सौ रुपये के लगभग जो पेन्शन प्रतिमास मिलनेवाली थी उसी से ईन्दल की पढ़ाई का ख़र्च निकालने की योजना बालिस्टर के दिमाग़ में थी। वह सोचने लगा कि रुपयों की बात अभी उठायी जाये या लड़के के दाख़िले के बाद।

छदम्मीलाल को भी मानना पड़ा कि हिन्दू-कॉलेज में पढ़ाई का स्तर गिर गया है, और इसका कारण लाला हरीचन्द और गनेशीलाल का कॉलिज के मामलों में बेजा हस्तक्षेप ही है। मगर ईन्दल को बिजनौर दाख़िला दिलाने की बात पर वह सहमत नहीं हुए, बोले, "अगर अपने स्कूल में पढ़ाई का वो, क्या कहदे करें, स्टेण्डर गिर गया है तो उसे उठाओ। बल्कि मैं तो कहूं हूं अबके गनेसीलाल और हरीचन्द दोनों को कमेटी से सफा कर दो। तब तो हुई बात। वर्ना क्या कहदे करें, ये भी कोई बात हुई कि जिस पांव में फोड़ा है उसे ही काट के फेंक दो!"

तभी घेर से लगी हवेली की सांकल बज उठी और छदम्मीलाल ने पुकारकर एक नौकर को भीतर हवेली में भेजा। फिर प्रसंग बदलते हुए अपने मास्टरों की ओर मुख़ातिब होकर शास्त्रीजी से कहा, "क्यों भई शास्त्रीजी, लगेगी तो तुम्हें बुरी, पर क्या कहदे करें, सच्ची बात को

रोकना भी नइँ चहिए। तो मैं ये पूच्छूं कि सुसरी तुम्हारे स्कूल की पढ़ाई ही हर साल क्यों गिरती जा रई ? ग्रौर भी तो स्कूल हैं···?"

शास्त्रीजी ने सुरमे की डिबियों सरीखी ग्राँखें विस्मय से मटकाते हुए बेचैनी से गर्दन हिलायी ग्रौर ठहरकर बोले, "यह प्रश्न तो, ग्रधिक उत्तम हो, यदि ग्राप प्रिंसिपल महोदय से पूछें !" ग्रौर इसके साथ ही उन्होंने जयप्रकाश की ग्रोर देखा।

जयप्रकाश स्थिति में रस ले रहा था। वह बोलने के मूड में न था। मगर छदम्मीलाल ने भी उसकी ग्रोर मुँह किया तो उसे बोलना पड़ा, "शास्त्रीजी ठीक कहते हैं, लालाजी ! ग्राखिर ज़िम्मेदारी तो प्रिंसिपल की ही होती है ! मेरा तो सुझाव है कि ग्राप उत्तमचन्दजी को प्रिंसिपल बना दीजिए···फिर देखिए···"

"मैं ! ग्ररे, मेरा बस चलै तो मैं उसे, क्या कहदे करें, चपरासी भी न रहने दूं ! सारी इज़्ज़त धूल में मिला दी साले ने ! उसमें काबलियत क्या है सिवाय इसके कि हरीचन्द की गुलामी करता है ? उससे ज्यादा पुराने तो सास्त्रीजी हैं।"

जयप्रकाश ने फ़ौरन शास्त्रीजी को कुहनी मारी ग्रौर मूढ़ा ग्रागे खिसकाकर बोला, "बालिस्टर साहब, ग्राप बड़े खामोश हैं ग्राज, ग्रापकी क्या राय है ?"

बालिस्टर ग्रौर छदम्मीलाल की राय ग्रलग-ग्रलग नहीं होती। ग्रतः वह तुरन्त बोले, "सास्त्रीजी की मैं भी इज्जत करता हूँ। ये भले ग्रादमी है। ये प्रिंसिपल हो जावें तो मेरी भी ग्रात्मा की तृप्ति होवैगी।"

बाबू साहब के मन में ग्राया कि वह भी कुछ कहें। तभी छदम्मीलाल बोले, "सोच-समझकर बातें करनी चाहिए, बालिस्टर ! कोई ऐसी मुश्किल बात नइँ है ये भी। ग्रगर चाहोगे तो सास्त्रीजी भी प्रिंसिपल हो सकैं हैं। पर मेहनत करनी पड़ैगी।"

जयप्रकाश फ़ौरन शास्त्रीजी के हाथ पर हाथ मारकर खड़ा हो गया, बोला, "बस, ग्रापने कह दिया तो समझो शास्त्रीजी प्रिंसिपल हो गये।"

और सबसे विदा माँगकर राजेश्वर ग्रौर जयप्रकाश ग्रहाते से बाहर निकलने लगे। उन्होंने सुना, बाबू साहब कह रहे थे, "हरीचन्द मुझे भी

मेम्बर बना रहा है। तो तीन तो हमीं हो गये और तीन और मेम्बरों से कह देंगे…"

जयप्रकाश, घेर में बैठे हुए शास्त्रीजी पर होनेवाली प्रतिक्रिया की कल्पना करके हँस पड़ा। राजेश्वर ने कारण पूछा तो मुस्कराकर बोला, "यार! अपना कॉलेज भी एक छोटा-मोटा म्युज़ियम है। ज़रा कल्पना करो कि अब शास्त्रीजी प्रिंसिपल होंगे!"

"हो जायेंगे?" राजेश्वर ने पूछा।

"शायद!" लापरवाही से कन्धे ऊपर को उचकाते हुए जयप्रकाश बोला, "लेकिन सवाल होने-न-होने का नहीं है। ये कुपढ़ और अनपढ़ धुने-जुलाहे और अंसारी-पंसारी जब हमारे भाग्य-विधायक हो सकते हैं तो फिर होने को आश्चर्यजनक कुछ भी नहीं रह जाता। पर देखना, बाबू हरकरण सहाय के मेम्बर होते ही कॉलेज की राजनीति में भारी परिवर्तन होगा।"

प्रिंसिपल की कुरसी

सोमवार को स्टाफ़-कौंसिल की मीटिंग हुई जिसके खत्म होते ही हेडक्लर्क पवन बाबू ने अपनी कुरसी मास्टर उत्तमचन्द के पास खिसका ली और गोदी में रखे मोटे-मोटे रजिस्टरों को उनकी मेज पर रखते हुए बोले, "मैंने आपसे पहले ही कहा था न कि यह राजेश्वर ठाकुर साँप का बच्चा है। इसे कॉलेज में नहीं आना चाहिए। अब देख लिया आपने।"

"देख तो लेता, मगर अपाइण्टमेण्ट मेरे हाथ में होता तब ना!" उत्तमचन्द पवन बाबू की बात पर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए झुंझलाये, "तुम तो समझते हो…" और उन्हें लगा कि कहीं कोई सुन न रहा हो।

"आपने कोशिश ही नहीं की, वरना मैं जानता हूँ कि लाला हरीचन्द और सेक्रेटरी गनेशीलाल आपकी बात हरगिज़ न टालते।" पवन बाबू ने उनकी बात काटकर कहा।

"विश्वास करो, पवन, मैंने कहा था। और इन दोनों से ही नहीं बल्कि वाइस प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिंह से भी कहा था।" फिर एक पल रुककर मास्टर उत्तमचन्द लगभग फुसफुसाहट के स्वर में बोले, "जाने इसकी कौन-सी 'एप्रोच' थी कि एक भी मेम्बर ने 'अपोज़ीशन' नहीं किया।"

"इसीलिए तो अब आपका 'अपोज़ीशन' हो रहा है। जयप्रकाश ने बग़ल मे ले रखा है इस ठाकुर को। देखते जाइए, क्या-क्या गुल खिलते हैं।" पवन बाबू ने हर शब्द पर अपनी गर्दन दायें-बायें हिलाते हुए कहा।

उत्तमचन्द को पवन बाबू की चेतावनी पर अविश्वास करने का कोई कारण न दिखा। अभी दस मिनट भी नहीं हुए थे कि राजेश्वर भरी मीटिंग में, विनम्रता से ही सही, मगर ऐसी बातें कह गया था जैसी आज तक उन्होंने किसी मास्टर तो क्या, लेक्चरर तक के मुँह से नहीं सुनी थीं। अतः मन में क्षुब्ध थे।

फिर उत्तमचन्द और पवन बाबू की कुरसियाँ और निकट हो गयीं। दोनों में बहुत धीरे-धीरे बातें होने लगीं। पवन बाबू की गोल-गोल आँखें बार-बार दरवाज़े की चिक और कमरे की छत पर जा टिकती थीं। ऐसा लगता था कि वह ऐनक उतार देंगे तो कमरे की रहस्यमयता भंग हो जायेगी। और हुआ भी यही। वातावरण के प्रति पूर्णतः आश्वस्त होकर जैसे ही उन्होंने ऐनक उतारी कि उत्तमचन्द का वाक्य कान में पड़ा, "मैनेजमेण्ट के नाम से जयप्रकाश की रूह फ़ना होती है और नौकरी उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी है—यह तुमने पिछले साल कृषि-योजना के मामले में देख ही लिया। इस बार भी अगर प्रेसीडेण्ट या सेक्रेटरी उसे एक बार बुलाकर डाँट दें, तो फौरन घुटनों में आ जायेगा। फिर देख लेंगे इस राजेश्वर को।"

"बिल्कुल ठीक।" पवन बाबू जोश में उछलते हुए बोले, "जयप्रकाश ही नहीं गाँव के सारे मास्टर पत्तों में पानी पीने लगेंगे, और राजेश्वर तो पिद्दी-न-पिद्दी का शोरवा···मगर हाँ···!" कुछ सोचकर पवन बाबू बोले, "जयप्रकाश के खिलाफ़ चार्जेज़ क्या होंगे?"

"वही कृषि-योजना का विरोध, गाँव के लड़कों और मास्टरों की

ग्रलग पार्टी बनाना ग्रौर मैनेजिंग कमेटी के मेम्बरों को गाली ग्रादि देना।"

पवन बाबू चार्जेज़ सुनकर ग्रपना नेकर सँभालते हुए कुछ कहने ही वाले थे कि उत्तमचन्द फिर बोल उठे, "मगर सवाल इन्हें साबित करने का है। ग्रौर हाँ, ये सारी बातें मैनेजमेण्ट के पास 'इनडायरेक्टली' (परोक्ष रूप से) पहुँचनी चाहिए।"

"तो ?" पवन बाबू ने ग्राँखों पर ऐनक चढ़ाते हुए पूछा।

"तो ग्रब तुम सोचो। तुम भी तो ग्रपने-ग्रापको चाणक्य समझते हो।" उत्तमचन्द गम्भीर चिन्ता में डूब गये।

कमरे में खामोशी छा गयी। पवन बाबू कोई ऐसी चाल सोच रहे थे कि राजेश्वर चारों खाने चित्त ग्रा गिरे। वह ज्वाइण्ट सेक्रेटरी गुलज़ारीमल के सगे भानजे थे। उनसे बातें करते हुए सारे ग्रध्यापक उनका लिहाज़ करते थे। मगर राजेश्वर की ग्राज की बदतमीजी ग्रौर इससे भी ज्यादा इण्टरव्यूवाले दिन का 'थस' उनके दिमाग़ में भन्ना रहा था।

उत्तमचन्द थोड़ी ही देर पहले उसी कमरे में हुई बातों पर विचार कर रहे थे। स्थानापन्न प्रिंसिपल होने की हैसियत से उन्होंने ग्रपने कमरे में आज स्टाफ़-कौंसिल की एक आवश्यक बैठक बुलायी थी। उद्देश्य केवल यही था कि नये-पुराने ग्रध्यापकों का परिचय हो जाये ग्रौर जब तक कोई प्रिंसिपल ग्राये तब तक के लिए उनकी 'ड्यूटीज़' का एक ग्रस्थायी सा चार्ट बना लिया जाये।

इसी सिलसिले में चपरासी दीनदयाल प्रिंसिपल के नोट पर सब ग्रध्यापकों से हस्ताक्षर कराकर लौटा लाया था, किन्तु मास्टर जयप्रकाश ग्रौर राजेश्वर ठाकुर उसे कहीं नहीं मिले थे। प्रिंसिपल होने के नाते उत्तमचन्द को यह बात अखरी थी कि उनके स्टाफ़ के लोग कॉलेज-टाइम में इधर-उधर मटरगश्ती करते रहते हैं। इसलिए जब सारे ग्रध्यापक इकट्ठे हो गये ग्रौर जयप्रकाश तथा राजेश्वर ठाकुर बाद में ग्राये तो उन्होंने ज़रा रोबीले ग्रौर ग्रफ़सराना ग्रन्दाज़ में पूछा, "मास्टर साहब ! ग्राप लोग कहाँ थे ?"

जयप्रकाश ने इस प्रश्न को कोई महत्त्व नहीं दिया क्योंकि वाइस प्रिंसिपल होने के नाते कई बार उत्तमचन्द ने ग्रस्थायी रूप से प्रिंसिपल

का कार्य किया था और कई बार जयप्रकाश को उनके ऐसे प्रश्नों का लिखित और मौखिक जवाब देना पड़ा था। अतः एक खाली कुरसी पर बैठते हुए प्रत्यक्ष रूप से आवाज़ में भरसक मिठास लाकर उसने नम्रता से कहा, "कहीं नहीं, मास्टर साहब ! ज़रा गूंगे की दुकान तक गये थे। खाली वक़्त में हम अध्यापकों की एक वही तो आरामगाह है।"

इस उत्तर के बाद उत्तमचन्द को कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। हालांकि एक बार उनकी इच्छा हुई कि वह कॉलेज टाइम में अध्यापकों को कॉलेज से बाहर न जाने का आदेश दे दें, मगर इससे सारे अध्यापकों के खिलाफ़ हो जाने की सम्भावना थी।

तभी राजेश्वर ने उत्तमचन्द को सम्बोधित करके पूछा, "क्यों मास्टर साहब, क्या कॉलेज टाइम में अध्यापकों को बाहर तक जाने के लिए अनुमति लेनी पड़ती है ?"

निश्चय ही यह प्रश्न शरारतन किया गया था। किन्तु मास्टर उत्तमचन्द ने बात सँभालते हुए कहा, "नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मगर कह देने से अच्छा रहता है।" और फिर तुरन्त ही इस प्रसंग को बदलते हुए कहने लगे, "मैं समझता हूँ सारे टीचर्स 'प्रिजेण्ट' हैं और हमें आज की कार्यवाही शुरू कर देनी चाहिए। तो आज की मीटिंग, एक तरह से इण्ट्रोडक्शन-मीटिंग है। वैसे तो अब तक आप लोग एक-दूसरे से 'इण्ट्रोड्यूस' हो ही चुके होंगे मगर फिर भी पहले सबका परिचय एक-दूसरे से हो जाना चाहिए।"

और फिर राजेश्वर, सत्यव्रत और पाठक—तीनों नये अध्यापकों का स्वयं परिचय देने के बाद उत्तमचन्दजी ने पुराने अध्यापकों को नये अध्यापकों से परिचित कराने का दायित्व संस्कृत के लेक्चरर प्रवीणचन्द्र शास्त्री पर छोड़ दिया।

शास्त्रीजी अपनी नाक से निकलनेवाली सुरीली आवाज़ में गद्य बोलते हुए बहुत कतराते थे। अतः परिचय जैसे मामूली कार्य के लिए उन्हें अपना उपयोग प्रीतिकर नहीं लगा। फिर भी अपने स्थूल शरीर के साथ कुरसी के हत्थे का सहारा लेते हुए वह उठ खड़े हुए। और मुख पर हमेशा छायी रहनेवाली विनम्रतापूर्ण मुस्कराहट को और चौड़ा करते हुए

क्रम से "आप हैं" कहकर एक-एक अध्यापक का नाम और लेक्चरर के नाम के साथ उसका विषय पुकारते गये। सम्बोधित अध्यापक उठकर नये अध्यापकों की ओर हाथ जोड़ते, और फिर अपनी सीट पर बैठ जाते। इस तरह परिचय की रस्म शान्तिपूर्ण किन्तु नीरस ढंग से पूरी हो गयी। मगर शास्त्रीजी जैसे ही धोती का छोर हाथ में लेकर अपने स्थूल शरीर के साथ कुरसी में बैठने को हुए कि सत्यव्रत ने खड़े होकर परिचय देनेवाले महाशय का परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रकट कर दी और वातावरण सरस हो उठा।

शास्त्रीजी बैठते-बैठते रुक गये। सोचा, हाथ जोड़ने की औपचारिकता निभाकर इकट्ठे ही बैठेंगे। मगर जब तत्काल कोई उनका परिचय देने के लिए खड़ा न हुआ तो वह चेहरे पर विनम्रता की समस्त भंगिमाएँ लाते हुए, अपनी बारीक आवाज़ में स्वयं ही बोले, "परिचय जैसी कोई विशेषता इस नश्वर शरीर में नहीं है। फिर भी स्नेह और कृपावश लोग इस दास को प्रवीणचन्द्र कहकर पुकारते हैं। यहाँ इण्टर आदि के छात्रों को माँ सरस्वती की वाणी अर्थात् संस्कृत का यत्किंचित ज्ञान वितरित करता हूँ और ललित कलाओं में मेरी किंचित अभिरुचि है।"

इस पर सारे अध्यापक छिपकर मुस्करा दिये।

सबके संक्षिप्त-से परिचय देने के बाद अपना परिचय देते हुए वह काफ़ी संकोच का अनुभव कर रहे थे और उनके स्थूल शरीर और गोल मोटी-मोटी आँखों से सौजन्यपूर्ण विनम्रता और संकोच टपके पड़ते थे। शास्त्रीजी बैठने को हुए तो जयप्रकाश उठ खड़ा हुआ, बोला, "शास्त्रीजी ने संकोचवश अपने विषय में कुछ बताया ही नहीं। केवल यह कहकर रह गये कि ललित कलाओं में अभिरुचि है। वस्तुतः अभिरुचि उनकी रचनात्मक एवं सर्जनात्मक प्रतिभा के लिए बहुत ही छोटा-सा शब्द है। वह कवि हैं, गायक हैं, अभिनेता हैं और शिल्पकार भी हैं। संक्षेप में उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। वह हमारे कॉलेज की नाक हैं और सारे शहर को उन पर गर्व है।"

जयप्रकाश के परिचय पर अधिकांश अध्यापकों की मुस्कराहट मुखर हो उठी, केवल शास्त्रीजी ही दाँत निपोरे महान् व्यक्तियोंवाली मुद्रा में

दोनों हाथ जोड़कर चारों ओर घूमे और अपनी कुरसी में गिर गये।

कुछ क्षण बाद मास्टर उत्तमचन्द फिर उठ खड़े हुए, बोले, "आम तौर से जुलाई का महीना छुट्टी का समझा जाता है। इसमें न टीचर्स का पढ़ाने का 'मूड' होता है और न स्टूडेण्ट्स में पढ़ने की इच्छा। मगर अपने रिज़ल्ट को देखते हुए मैं सोचता हूँ कि···हमें अभी से स्टूडेण्ट्स की पढ़ाई के प्रति सीरियस हो जाना चाहिए।"

रिज़ल्ट की बात पर अध्यापक गम्भीर हो गये।

उत्तमचन्दजी अध्यापकों पर अपने कथन की प्रतिक्रिया देखते हुए बोले, "इस साल और भी बहुत-सी योजनाएं हमारे सामने हैं। अभी प्रेसीडेण्ट साहब के यहाँ कमेटी की मीटिंग हुई थी, उसमें छात्रों के लिए एक होस्टल खोलने की बात भी उठी। साथ ही इस साल से हम अपने यहाँ हॉकी भी शुरू करने की सोच रहे हैं। इसके अलावा ये भी ख्याल है कि बिल्डिंग की कमी को पूरा करने के लिए छोटेवाले मैदान में टपरे डलवाकर 'जूनियर क्लासेज़' को वहाँ भेज दिया जाये। इन सब बातों के बारे में अगर आपके कुछ सुझाव या 'सजेशन्स' हों तो आप बड़े शौक से मुझे दें। मैं उन्हें कमेटी के पास भेज दूंगा।"

और मास्टर उत्तमचन्द एक क्षण के लिए रुककर जैसे अध्यापकों के सुझावों की प्रतीक्षा करने लगे। मगर किसी ने कोई सुझाव न दिया। सारे-के-सारे अध्यापक गर्दन नीची किये अपने-अपने ड्यूटी-चार्ट देख रहे थे जो परिचय के दौरान पवन बाबू ने सबके हाथों में थमा दिये थे। अलबत्ता नये अध्यापकों की मास्टर उत्तमचन्द की बातों में दिलचस्पी ज़रूर थी।

तभी सत्यव्रत अपने स्थान से उठा और उत्तमचन्द की आज्ञा लेकर बोला, "इतने बड़े कॉलेज में छात्रावास का न होना सचमुच बहुत खलता है। यहाँ हम विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान देते हैं, सामाजिक ज्ञान और नैतिक आचरण की भी सैद्धान्तिक शिक्षा दे सकते हैं पर इनका वास्तविक और व्यावहारिक शिक्षण यहाँ सम्भव नहीं। इसके लिए छात्रावास की नितान्त आवश्यकता है।" और कुछ संकोच का अनुभव करते हुए उसने आगे कहा, "मैं हलवाई की दुकान पर छात्रों को निरुद्देश्य घूमते, बीड़ी

पीते या गपशप करते हुए देखता हूँ तो बड़ा क्लेश होता है।"

"मगर इस बात की क्या गारण्टी है कि होस्टल खुलते ही लड़के हलवाई की दुकान पर जाना या बीड़ी पीना बन्द कर देंगे ?" नागरिक-शास्त्र के लेक्चरर रामाधीन श्रीवास्तव ने सत्यव्रत की बात को उछालते हुए पूछा।

सत्यव्रत फिर उठ खड़ा हुआ, बोला, "ऐसा तो मैं भी नहीं सोचता कि छात्रावास खुलते ही छात्रों में तुरन्त कोई परिवर्तन हो जायेगा। किन्तु फिर भी इस माध्यम से उनको अध्यापकों के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करने का अवसर अवश्य मिलेगा। और इस प्रकार अध्यापक के व्यक्तिगत चरित्र एवं अध्यवसाय से उन्हें अपने व्यक्तित्व को संगठित करने में भी सहायता मिल सकती है।"

हालांकि सभी अध्यापक मन-ही-मन सत्यव्रत की इस चरित्र-गठन वाली योजना पर मुस्कराये, पर प्रत्यक्ष रूप से इसका विरोधी उत्तर किसी ने नहीं दिया और सब जैसे निरुत्तर हो गये।

तब मास्टर उत्तमचन्द ने कहा, "सत्यव्रतजी ने जो एक 'मोरल' (नैतिक) सवाल हमारे सामने उठाया है, वह दरअसल आज की एक बड़ी 'प्रॉब्लेम' है और हम टीचर्स के लिए एक चुनौती है। इस पर हमें विचार करना है। मगर इस वक़्त मैं आपकी तवज्जह होस्टल, जूनियर क्लासेज़ के लिए बिल्डिंग का इन्तज़ाम और खेल-कूद के सामान की खरीद-फरोख्त की तरफ़ खींचना चाहता था। प्रेसीडेण्ट और सेक्रेटरी साहब इस बारे में शायद जल्दी ही आप सबसे भी बातें करें, मगर मैं चाहता हूँ कि तब तक हम लोग आपस में बातचीत ज़रूर कर लें ताकि हमारे पास उनके सामने रखने के लिए कोई ठोस स्कीम हो।"

फिर किसी भी अध्यापक को ठोस स्कीम का कोई सुझाव न देते देख-कर उन्होंने आगे कहा, "आप जानते हैं इस सबके लिए फण्ड्स की ज़रूरत है और हमारे पास पैसे की कमी है।"

जयप्रकाश की इच्छा हुई कि पिछले साल बिल्डिंग-फण्ड के नाम से जो रुपया अध्यापकों की तनख्वाह से काटा गया था उसके बारे में पूछे कि तभी उत्तमचन्द जैसे उसके मन की बात भांपते हुए बोले, "ज़ाहिर है कि

इतनी बड़ी रकम केवल टीचर्स के डोनेशन्स (चन्दा) के ज़रिये हासिल नहीं की जा सकती। इसके लिए हमें महीने में कम-से-कम एक 'सण्डे' (रविवार) आस-पास के गाँवों में जाने और वहाँ से चन्दा इकट्ठा करने के लिए निकालना पड़ेगा। इसके अलावा मैं सोचता हूँ कि अगर इस साल अपनी कृषि-योजना पर हम ज़रा और मेहनत करें तो काफ़ी तगड़ी आमदनी हो सकती है।"

अपनी बात खत्म करके उत्तमचन्द कुरसी पर बैठ गये। अध्यापकों से किसी उत्तर की अपेक्षा उन्हें न थी और न कोई बोला ही। परन्तु उनकी बातों और कॉलेज के विकास की योजनाओं ने सत्यव्रत को अधिक प्रभावित किया। उसका नया खून अपनी संस्था के प्रति शत-प्रतिशत वफ़ादार रहना चाहता था और वह पूरी ईमानदारी से अपना अस्तित्व वहाँ सिद्ध करने के लिए कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता था जो कॉलेज के लिए लाभदायक और हितकर हो। चन्दा एकत्र करनेवाली योजना उसे पसन्द आयी और उसके प्रति उत्साह से उसका मन भर गया। फिर कृषि-योजना के प्रति उत्साह प्रदर्शित करते हुए उसने पूछा, "प्रिंसिपल साहब, क्या आप संक्षेप में कृषि-योजना पर भी प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?"

उत्तमचन्द ने कहा, "भई, दरअसल ये कृषि-योजना गांधीजी के उसूलों पर बनायी गयी है और एक ऐसी चीज़ है जिससे विद्यार्थियों की 'एक्सरसाइज़' (व्यायाम) भी होती है और उनमें सेल्फ सपोर्टिंग यानी स्वावलम्बन की भी भावना आती है।" और फिर एक क्षण रुककर बोले, "हमारे कॉलेज के चारों ओर जो इतनी ज़मीन बेकार पड़ी थी उसी में पिछले साल से हमने विद्यार्थियों के सहयोग से खेती शुरू की है, और इस साल हम योजना को और भी मेहनत से चलाना चाहते हैं।"

चन्दे की योजना की भाँति सत्यव्रत को यह कृषि-योजना भी सरल लगी। उसे लगा कि इसकी सफलता के लिए भी वह पूरा समय और सहयोग दे सकता है।

तभी राजेश्वर उठ खड़ा हुआ, बोला, "क्या मैं इस योजना के बारे में कुछ पूछ सकता हूँ।"

"हाँ, हाँ, ज़रूर।" उत्तमचन्द ने कहा, "आप ही की तो योजना है।

बल्कि मैं तो चाहूँगा कि गाँव के टीचर्स में से ही कोई साहब इसे अपने हाथ में ले लें तो मेरा बोझ कम हो जायेगा।"

राजेश्वर ने पूछा, "मास्टर साहब! कृषि-योजना में जुताई का कार्य किराये के ट्रैक्टरों से होता है या बैलों से? और उन्हें क्या किराया दिया जाता है?"

"भई, जुताई तो किराये से ही होती है मगर किराये के रूप में हमने तो पैदावार की अधबटाई कर दी थी। यही यहाँ सब लोग करते हैं।" उत्तमचन्द ने बात और साफ़ करते हुए आगे कहा, "दरअसल सारे हल-बैल प्रेसीडेण्ड और वाइस-प्रेसीडेण्ट साहब के थे, इसलिए कोई कठिनाई नहीं हुई।"

राजेश्वर ने फिर पूछा, "पिछले साल कुल कितने मन अनाज पैदा हुआ था?"

"यही कोई दो सौ मन।" उत्तमचन्द ने उत्तर दिया।

"इसमें से सौ मन अनाज तो हल-बैलों के किराये में दे दिया गया होगा और शेष मज़दूरी वगैरह···"

"मजदूरों का सवाल कहाँ उठता है?" उत्तमचन्द ने वाणी में मिठास घोलते हुए कहा, "अगर हम मज़दूर रखने लगें तो स्टूडेण्ट्स में स्वावलम्बन की भावना पैदा करने का हमारा बेसिक मक़सद ही खत्म हो जायेगा।"

"मगर मास्टर साहब! विद्यार्थी खेती की सारी बारीकियों को कैसे समझ सकते हैं जब तक कि कुछ अनुभवी मजदूर उनके साथ न हों?" राजेश्वर ने सरल बनकर पूछा।

इस बात पर उत्तमचन्द थोड़ा-सा हँसे, फिर धीरे से बोले, "देखिए मास्टर साहब, हमारी कृषि-योजना के सारे विद्यार्थी गाँव के हैं और सभी के घर खेती होती है। इसलिए वे सारी बारीकियाँ भी···"

उत्तमचन्द बात पूरी कर भी नहीं पाये थे कि तुरन्त राजेश्वर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए बोल उठा, "तब तो आपका बेसिक मक़सद ही खत्म हो गया। देखिए न, आपने कृषि-योजना के दो फ़ायदे बताये—एक व्यायाम, दूसरा स्वावलम्बन। परन्तु आपकी कृषि-योजना में जब सारे लड़के गाँव के ही हैं जिनके घर खेती होती है तो फिर वे स्वावलम्बन और व्यायाम

की क्रियाओं से भी परिचित ही होंगे। अब सवाल ये है कि जो पहले से ही स्वावलम्बी हैं उन्हें स्वावलम्बन की शिक्षा देने से क्या फायदा ? आप यह स्वावलम्बन की भावना शहर के लड़कों में पैदा कीजिए न !'

उस पर तुरन्त जयप्रकाश भी बोल उठा, "हाँ मास्टर साहब, मैं भी यही सोच रहा था कि गाँव के लड़के तो हृष्ट-पुष्ट होते ही हैं, क्यों न कृषि-योजना की व्यायाम-प्रणाली से शहरी लड़कों को भी तन्दुरुस्त बनाया जाये ? आप स्वीकार करेंगे कि उन्हें इस योजना से वंचित रखकर अब तक हमने उनके साथ न्याय नहीं किया है।"

जयप्रकाश ने अपनी बात इतनी मासूमियत से कही थी कि सत्यव्रत और यहाँ तक कि शहर के संस्कृत के लेक्चरर प्रवीणचन्द्र शास्त्री ने भी उसका समर्थन किया।

मास्टर उत्तमचन्द को सहसा कोई उत्तर न सूझा तो राजेश्वर ने फिर कहा, "आपने फ़रमाया था कि आप इस योजना को किसी गाँव के टीचर के सुपुर्द करना चाहते हैं, तो मैं हाज़िर हूँ। मुझे विश्वास है कि व्यायाम और खेती के अपने थोड़े-बहुत ज्ञान से मैं शहरी लड़कों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हुए उनमें स्वावलम्बन की भावना भर सकूँगा।"

मास्टर उत्तमचन्द इसके लिए बिल्कुल तैयार न थे। अतः उनका मुँह फ़क़ हो गया। उत्तर के लिए उन्हें कुछ नहीं सूझा तो लगभग सच्चाई पर उतर आये, बोले, "देखिए, ये बात एक बार मैनेजिंग कमेटी में उठी थी, पर स्वीकार नहीं हुई।" फिर बात को सँभालते हुए बोले, "शायद शहर के लड़कों ने भी कृषि-योजना में हाथ बँटाने से इन्कार कर दिया था।"

राजेश्वर ने तुरन्त कहा, "लड़कों की बात जाने दीजिए, मास्टर साहब ! लड़के तो किसी भी अच्छी बात को पसन्द नहीं करते। वे गूंगे की दुकान पर रसगुल्ले खाना पसन्द करते हैं। कोई थियेटर या नौटंकी आ जाये तो उसमें नाच देखना पसन्द करते हैं। भला यह कोई बात हुई ? मगर हमें तो उनका भविष्य देखना है।"

उत्तमचन्द निरुत्तर होते जा रहे थे कि तभी सत्यव्रत ने उठकर कहा, "राजेश्वर भाई की बात बिल्कुल सही है। विद्यार्थियों के हित के लिए

अगर हम थोड़ी कड़ाई से भी काम लें तो कोई हानि नहीं।"

पवन बाबू ने उत्तमचन्द की स्थिति को भाँप लिया। अतः कमीज़ की आस्तीन नाक पर रगड़ते हुए बोले, "मास्टर साहब ! सवाल केवल लड़कों की ही इच्छा का नहीं, उनके गार्जियन्स की इच्छा का भी तो है। शहरी लोग अपने बच्चों से खेती कराना पसन्द नहीं करते।" और इतना कहकर उत्तमचन्द की कोहनी पर हाथ छुआते हुए उन्होंने कहा, "क्यों, मास्टर साहब ?"

उत्तमचन्द को पवन बाबू की बात से बहुत सहारा मिला। तुरन्त सँभलते हुए, "यही तो सबसे बड़ी दिक्कत है।"

राजेश्वर बोला, "आप समझते हैं कि गाँवों के लड़कों के माँ-बाप अपने बच्चों से खेती कराना पसन्द करते हैं या उन्हें यहाँ हल जोतने के लिए भेजते हैं ? माफ़ कीजिए, अगर उन्हें यही काम कराना हो तो वे अपने बच्चों को आपकी कृषि-योजना में नहीं, किसी एग्रीकल्चर-कॉलेज में भेजेंगे या फिर घर पर रखेंगे।"

जयप्रकाश ने मार्क किया कि राजेश्वर की आवाज़ में कुछ कड़ुवाहट उभर आयी है। अतः बराबर से हाथ डालकर उसने राजेश्वर का कुरता थोड़ा झटक दिया। राजेश्वर फौरन बात समझ गया। अतः आवाज़ में कोमलता लाकर बोला, "मैं आपसे बताता हूँ कि हमारे गाँव का एक लड़का इण्टर में और दो लड़के हाईस्कूल में थे। इत्तिफ़ाक से तीनों फ़ेल हो गये। माँ-बाप ने सबब पूछा तो कहने लगे कि हमसे तो इम्तिहानों के दिनों में रबी की कटाई करायी है और मास्टर उत्तमचन्दजी ने हमसे सारे साल हल जुतवाया है—हम पास कैसे होते ?"

मास्टर उत्तमचन्द ने इस इलज़ाम का प्रतिवाद करते हुए तेज़ी से कहा, "ये बिल्कुल फिज़ूल-सी बातें हैं।"

"वही तो मैंने भी कहा," राजेश्वर तुरन्त बोला, "भला कोई अध्यापक जान-बूझकर क्यों अपने स्टूडेण्ट्स का साल खराब करेगा ! मगर वे कहने लगे कि साहब, जब प्रेसीडेण्ट और वाइस-प्रेसीडेण्ट साहब के हल-बैल आते थे तो उनके नौकरों को उत्तमचन्दजी यह कहकर छुट्टी दे देते थे कि तुम जाकर और काम देखो, और हल हमें जोतना पड़ता था।"

"हद हो गयी।" उत्तमचद ने बेचैनी से कहा।

"वही तो।" राजेश्वर ने आगे कहा, "वह तो कहिए मेरी वजह से उनके मां-बापों ने फिर उन्हें यहाँ भेज दिया वरना लड़के बिल्कुल तैयार न थे। कहते थे कि साहब, कृषि-योजना की सारी हरी फ़सल—जैसे चरी, मटर और जौ-चने—तो बिना बटाई के ही कट-कटकर इधर-उधर चले जाते थे।"

इस पर जयप्रकाश उठ खड़ा हुआ, बोला, "उनकी बकवास को छोड़िए मास्टर साहब, शुरू-शुरू में मेरे मन में भी इसे लेकर शंका उत्पन्न हो गयी थी। मगर अपने मन में हम सच्चे हों तो दुनिया आलोचना करती फिरे, क्या होता है? अब हमें तो इस कृषि-योजना के हित को देखना है, चलाना है। इसलिए कोई सुझाव आपके पास हो तो दीजिए।"

सहसा उत्तमचन्द को कुछ राहत मिली।

राजेश्वर ने कहा, "जी हाँ, इस पचड़े में खास बात तो रह ही गयी। हाँ, तो मैं यह कह रहा था कि हमारे प्रिंसिपल साहब ने कृषि-योजना की जो पैदावार हमारे सामने रखी उससे स्पष्ट है कि वर्तमान स्थिति में इससे हमें कोई लाभ नहीं है। पिछले साल कुल दो सौ मन अनाज हुआ था जिसमें से सौ मन हल-बैलों की बटाई का निकल गया और पिछले और अगले साल का बीज निकाल देने के बाद हमारे पास लगभग सत्तर मन अनाज बचा। उसमें से भी जमीन का लगान, खाद और सौ विद्यार्थियों की एक साल की मजदूरी निकाली जाये तो कॉलेज को हज़ार-पाँच सौ रुपये का घाटा ही बैठेगा। ऐसी सूरत में यह आवश्यक है कि इस साल हम हल-बैलों की बजाय खेतों की जुताई ट्रैक्टर से करायें जिसका खर्च बैलों की अपेक्षा आधे से भी कम पड़ेगा। और ट्रैक्टर का इन्तज़ाम मुझ पर छोड़ दीजिए।"

मगर राजेश्वर की लाभदायक बात उत्तमचन्द ने पूरी नहीं सुनी। उनके सिर में दर्द होने लगा था, बोले, "माफ़ कीजिए, मास्टर साहब! ये बातें हम फुरसत से फिर कभी करें तो ज्यादा अच्छा रहे। तब तक मैं प्रेसीडेण्ट साहब से भी मिल लूंगा। हाँ, अपने ड्यूटी-चार्ट्स के बारे में आप लोग कुछ पूछना चाहें तो मैं शाम तक यहीं हूँ।"

"नहीं, नहीं।" जयप्रकाश ने तुरन्त कहा, "आपकी तबीयत ठीक नहीं लग रही, मास्टर साहब! आप आराम कीजिए। हमें तो जो पूछना है कल भी पूछ सकते हैं।"

और इसी के बाद एक-एक कर सारे अध्यापक कमरे से बाहर चले गए। केवल पवन बाबू रह गये वहाँ।

अचानक कमरे का सन्नाटा भंग करते हुए पवन बाबू बोले, "अरे मास्टर साहब! किस सोच में पड़ गये?"

"कुछ नही, ऐसे ही जयप्रकाश की बात का खयाल आ गया था। देखा नहीं तुमने, राजेश्वर को सिखा-पढ़ाकर लाया था और मीटिंग में मीठी-मीठी चुटकियाँ ले रहा था। सोचता है कि मैं कुछ समझता ही नहीं। हूं...!"

पवन बाबू ने एकदम गोल-गोल आँखें इधर-उधर घुमाते हुए कहा, "एक चीज़ हो सकती है। दीनदयाल के ज़रिये आज की सारी बातें प्रेसीडेण्ट के पास पहुंचवा दी जायें।"

"इसमें पकड़ की कौन-सी बात है?" उत्तमचन्द ने झल्लाकर कहा। दरअसल उन्हें जयप्रकाश के मिठवेपन से चिढ़ थी और आज की मीटिंग में जयप्रकाश ने कोई पकड़ में आने लायक़ बात नहीं की थी।

निराश हो पवन बाबू बोले, "क्या करूँ, मास्टर साहब, एकाउण्ट्स का मामला न हुआ, नहीं तो साले को ऐसा गच्चा देता कि अब तक एक लाख की बिल्डिंग में नज़र आता। याद है, पिछले प्रिंसिपल को..."

"हाँ, हाँ, याद है।" पवन बाबू की गर्वोक्ति पर ध्यान न देते हुए उत्तमचन्द ने धीरे-से कहा, "एक दाँव मैंने सोच लिया है, तुम्हें आठ-दस लड़के तैयार करने पड़ेंगे।"

हॉस्टल

पूरी जुलाई बीत चुकी थी और अब तक केवल बूंदाबांदी ही हुई थी। खुलकर बारिश एक दिन भी नहीं हुई।

लाला हरीचन्द की बैठक में बैठे कमेटी के मेम्बर वातावरण की उमस पर बातचीत कर रहे थे। कॉलेज खुलने के बाद से कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी की यह दूसरी बैठक थी जो लाला हरीचन्द ने अपने घर पर बुलायी थी। इसमें बाहर के विद्यार्थियों के लिए हॉस्टल खोलने और उसकी व्यवस्था करने के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाने थे। कमेटी के तेरह मेम्बरों में से आठ आ चुके थे, औरों का इन्तज़ार था।

आखिर जब काफ़ी देर हो गयी और कोई नहीं आया तो कमरे में बड़े से तख़्त पर बैठे सभी लोग पहलू बदलने लगे। कोई खास गर्मी न थी, फिर भी लाला हरीचन्द की बग़ल में बैठे गनेशीलाल ने यह बेचैनी महसूस की। कालीन के सिरे पर लगी मसनद पर कोहनी टिकाते हुए झुककर बोले, "हाँ, तो लालाजी, कोरम पूरा हो गया, अब आप अपना व्याख्यान सुरू करो।"

मूढ़ों पर बैठे सदस्यों ने इत्मीनान की साँस ली।

लाला हरीचन्द फ़ौरन मसनद से आगे खिसक आये और दोनों हाथों के पंजों को एक-दूसरे में फँसाते हुए गम्भीरता से बोले, "भय्यो ! आपको याद होवैगा कि पिछली बार की मीटिंग में आप सभी की उपस्थिती में यहाँ एक हौस्टिल खोलने की बात उट्ठी थी। अब उसी बात पै हमें बिचार करना है और उसे किरया में लाना है। आप तो जान्नै ही हैं कि बाहर के बच्चों को यहाँ कित्ती तकलीफ़ें हैं ! फूल-से बच्चे यहाँ आ-आकै कुम्हला जावै हैं।" और इतना कहकर वह रुक गये।

कमरे में व्याप्त हलकी-सी उमस गहरा गयी। लालाजी की प्रश्न-दृष्टि सबके चेहरों से टकराती, करुणा उपजाती हुई चली गयी। पल-भर ठहरकर चौधरी नत्थूसिंह ने कहा, "बेशक ! बेशक !!" और वह लालाजी की बात का समर्थन करते हुए आगे कहने लगे, "पिछले साल एक लड़का हैजे से मर गया, मगर हमें उस वक़्त खबर हुई जब उसका किरया-करम भी हो चुका था। अगर हमारे यहाँ कोई हौस्टिल होता तो हौस्टिल का सुपरिण्टेण्डेण्ट फ़ौरन उसकी मुनासिब दवा-दारू का इन्तज़ाम करता और हो सकता है कि लड़का बच भी जाता।"—और उन्हें अपने लड़के का ध्यान आ गया जिसकी होम्योपैथी की प्रैक्टिस चल नहीं रही थी।

गाँवों से पढ़ने आनेवाले लड़के हॉस्टल के अभाव में शहर में रहते थे। दस-बारह रुपये महीने पर वहाँ अच्छे कमरों की कमी न थी जिन्हें तीन-चार लड़के मिलकर बाँट लेते थे। आटा-दाल और घी वे घर से लाते ही थे और रोटियाँ किसी ग़रीब ब्राह्मणी को तीन-चार रुपये देकर बनवा लिया करते थे।

खाते-पीते घरों के कुछ लड़के ऐसे भी थे जो आटे-दाल के झंझट से बचने के लिए कल्लू के ढाबे पर खाना खाया करते थे। चौधरी नत्थूसिंह की बात पर गनेशीलाल ने पिछले साल की घटना याद करते हुए कहा, "अरे, वो लड़का! उसे तो भय्या कल्लू के ढाब्बे के खाने नै मार दिया। मेरा तो अकीन है कि उसके खाने का पिरबन्ध ठीक होत्ता तो उसे हैज्जा होइ नइँ सकै था।"

गनेशीलाल ने यत्नपूर्वक चेहरे पर उभर आये दर्द के चिह्नों को वातावरण में सजाते हुए आगे कहा "सुबह-सवेरे का बखत है, मैं सच्ची कहूँ हूँ, अगर मेरा बस चलै तो मैं कल्लू के ढाब्बे में दिन-दहाड़े आग लगा दूँ। थोड़े से पैस्सों के लिए लौण्डों की जिन्दगी से खेलना कोई अच्छी बात है?"

कई मेम्बरों की गर्दनें गम्भीरता से समर्थन में हिलीं, मगर लालाजी ने महसूस किया कि कुछ को यह बात अच्छी नहीं लगी है। विषय को आलोचनात्मक एवं बहस का रूप न मिल जाये, इस गरज़ से लालाजी ने उसे अपने हाथ में ले लिया और बोले, "तो बच्चों का खाना-पीना, उनकी दवा-दारू और लिखाई-पढ़ाई के ये सारे प्रस्न तब तक हल नइँ हो सकते जब तक हमारे यहाँ कोई हौस्टिल न हो। आज सहर में लड़के जिधर-तिधर मारे-मारे फिरै हैं। दुगने-तिगने किराए पै कमरे लेक्कै रहवै हैं। न कोई खाने का ढंग है, न पीने का; न चरित्र है, न सिच्छा। ये भला हमें अच्छा लगै है···" और लालाजी अपनी बात की पुष्टि में कमेटी के कर्तव्यों पर भाषण देने के मूड में आ गये।

ज्वाइण्ट सेक्रेटरी गुलज़ारीमल ने लालाजी के भाषण से घबराकर फ़ौरन कहा, "तो हॉस्टल खोल दो ना, इसमें परेशानी क्या है? प्रस्ताव तो पहले ही पास हो गया है।" उसे लालाजी की यह बात बहुत नापसन्द

थी कि वह एक ही बात को लेकर बैठ जाते और उस पर भाषण शुरू कर देते।

गनेशीलाल धोती के पल्ले से हवा करने लगे। नत्थूसिंह भी माथे का पसीना पोंछते हुए कहीं और खोये थे। लालाजी को ही गुलज़ारीमल की बात का जवाब देना पड़ा। बोले, "भय्या गुलज़ारीमल, किसी भी काम का करना इत्ता आसान नईं होत्ता! उसमें बड़े-बड़े पेंच आवें हैं।" फिर गनेशीलाल की ओर सहारे के लिए ताकते हुए उन्होंने कहा, "क्यों भय्या गनेसीलाल, तुम्हारी राय क्या कहवै?"

गनेशीलाल ने फ़ौरन विषय को चतुरता से पकड़ लिया, बोले, "मैं तो गुलजारीमल की बात से सहमत हूँ, लालाजी! जब एक काम कू करना ही ठैहरा तो उसमें देर काहे की? फ़ौरन कर दो। मैं इत्ती देर से येई सोच रया था कि हौस्टिल के लिए कौन-सी जगह मौजूं रहवैगी?"

लाला हरीचन्द ने मधुर मुस्कान से चौधरी नत्थूसिंह की ओर देखा और सन्तोष की साँस छोड़कर चुप हो रहे। चौधरी नत्थूसिंह ने धीरे से पूछा, "तो कोई जगह आयी समझ में?"

"मैं तो समझूं हूँ," गनेशीलाल ने नत्थूसिंह की बात का उत्तर देते हुए कहा, "तुम्हारे मकान की बरोब्बर में लाला हरीचन्द का जो घेर है, उससे बढ़िया जगह सारे शहर में दूसरी ढूंढ़े नईं मिलने की।"

लालाजी ने कोई राय ज़ाहिर नहीं की। तख्त पर बिछे कालीन पर नज़रें गड़ाये वह सिर्फ़ गर्दन हिलाते रहे।

चौधरी नत्थूसिंह ने फ़ौरन सोचते हुए कहा, "हाँ ऽ ऽ, जगह तो बुरी नहीं है मेरे खयाल से। क्यों गुलज़ारीमल...?"

गुलज़ारीमल ने प्रतिवाद में हाथ उठा दिया, बोला, "आप उस अस्तबल की बात कर रहे हैं जहाँ चार साल पहले घोड़े बँधा करते थे! उसमें इतने पिस्सू और इतने मच्छर होंगे कि लड़के अगले ही दिन बोरिया बिस्तर बाँधते नज़र आयेंगे।"

प्रश्न जितना सहज और सरल था उत्तर उतना ही कटु और अनपेक्षित। अतः सहसा गनेशीलाल और नत्थूसिंह को गुलज़ारीमल की बात का कोई उचित उत्तर नहीं सूझा। हाँ, लाला हरीचन्द उसकी आपत्ति

के ढंग से समझ गये कि वह अपने ही किसी मकान में हॉस्टल खोलने इच्छुक है।

वास्तव में लाला हरीचन्द के पास आने से पहले यह घर साहनपुर रियासत का एक अस्तबल ही था। मगर रियासतों के खत्म होने के बाद लाला हरीचन्द ने इसे राजा साहब साहनपुर से सस्ते दामों में खरीद लिया था। पहले उनका इरादा इसमें खंडसाल डालने का था, पर इधर भट्ठे का काम बढ़ जाने की वजह से उन्हें खंडसाल का इरादा फ़िलहाल छोड़ देना पड़ा। और अब गनेशीलाल और नत्थूसिंह के सहयोग से वह इसमें हॉस्टल खोलना चाहते थे। अतः एक क्षण रुककर बोले, "भय्या गुलजारीमल, जहाँ तक पिस्सुओं और मच्छरों का सवाल है, इत्ता मैं ज़रूर कहूँगा कि अब लो सारी गर्मियों, मैं वहीं सोया हूँ और मुझे एक भी मच्छर नहीं लगा। हाँ, मकान की अच्छाई-बुराई के बारे में मैं कुछ नई कहूँ, वो गनेसीलाल और चौधरी साहब ही बता सकें हैं।"

लाला हरीचन्द की बात से चौधरी नत्थूसिंह को इशारा मिल गया कि बात किसी तरह से करनी चाहिए। खुद लालाजी ने एक बार गुलज़ारीमल की अस्तबलवाली बात का विरोध नहीं किया था, अतः चौधरी नत्थूसिंह ने उत्तर का सूत्र पकड़ते हुए कहा, "देखो भई गुलज़ारीमल, कोई जगह अस्तबल होने से ही अच्छी या खराब नहीं कही जा सकती। हौस्टिल के साथ हमें बहुत-सी चीज़ें देखनी पड़ती हैं। जैसे यह कि इमारत में लड़कों के खेलने-कूदने के लिए सहन है या नहीं। कमरे खुले हुए और बड़े-बड़े भी हैं या नहीं। इसके अलावा उसे शहर से दूर और कालिज के पास होना चाहिए। और इसी खयाल को लेकर मैंने गनेशीलालजी की तजवीज़ को मान लिया था। वैसे आपकी नज़र में कोई और ऐसी जगह हो तो बेशक बताओ…!"

गुलज़ारीमल के सारे मकान शहर के बीचोबीच थे और उनमें इतना बड़ा सहन नहीं था। अतः चौधरी नत्थूसिंह के तर्क के सामने उसे विवश एवं निरुत्तर होना पड़ा।

गनेशीलाल ने उसे चुप होते देख और चुप करने की गरज़ से कहा, "लालाजी के मकान में एक कमी मुझे अखरै है कि कमरों के दरवज्जों

पर फाटक नईं हैं। पर हां, कमरे इत्ते बड़े-बड़े हैं कि उनमें तीन-तीन, चार-चार लौण्डे रह सकैं हैं। यही एक खूब्बी ऐसी है जिसका सारे शहर में जवाब नईं।"

गुलज़ारीमल ने सोचा कि एक घोड़े के बँधने की जगह में तीन-चार लड़के तो बँध ही सकते हैं। मगर वह बोला कुछ भी नहीं। गनेशीलाल ने परिस्थिति को अनुकूल देखकर अन्य मेम्बरों से उनकी राय माँगी। और एकमत से लाला हरीचन्द के घेर में हॉस्टल खोलने की बात पक्की हो गयी।

लाला हरीचन्द के मुख पर वैसी ही सन्तोष की रेखाएँ उभर आयीं जैसी पन्द्रह साल पहले उस समय उभरी थीं जब अपने स्वर्गीय पिता द्वारा बनवायी गयी धर्मशाला में उन्होंने हिन्दू-स्कूल की स्थापना की थी। तब उन्होंने भावावेश में मुस्लिम-स्कूल के जवाब में उसका नाम हिन्दू-स्कूल प्रस्तावित किया था, मगर आज उस भूल के लिए उन्हें थोड़ा पश्चात्ताप है। वह कुछ समझ से काम लेते तो स्कूल का नाम अपने पूज्य पिताजी के नाम पर गुलाबचन्द स्मारक हाईस्कूल रख सकते थे। उससे प्रतिमास किराये की एक मोटी रक़म भी वसूल कर सकते थे। मगर तब उन्हें क्या पता था कि आस-पास के गाँवों में स्कूल को चन्दे और ज़मीन के रूप में इतना सहयोग मिलेगा कि सात साल के अन्दर-ही-अन्दर यह हाईस्कूल इण्टर कॉलेज हो जायेगा! फिर भी उन्होंने कॉलेज के संविधान में यह धारा जुड़वा ली थी कि यह इमारत स्कूल को दान देने के प्रतिफलस्वरूप लाला हरीचन्द आमरण इसकी व्यवस्थापक-समिति के अध्यक्ष रहेंगे।

अपनी दूसरी इमारत को कॉलेज-हॉस्टल के लिए देते समय उन्हें खुशी थी कि वह इस बार अपनी पिछली आर्थिक भूलों को नहीं दोहरा रहे हैं। अतः चेहरे पर यथासम्भव कोमलता और वाणी में मृदुता लाकर बोले, "जब पंचों ने फैसला कर लिया है तो मैं क्या बोल्लूं? रई भाई गनेसीलाल की बात, सो मैं आज ही बढ़ई कू बुलवाकै सारे कमरों पै क़िवाड़ों की जोड़ी फिट करने का आडर दिये दूं हूँ।" गनेशीलाल तेजी से बोले, "मगर लालाजी, किराये की खास बात तो छूट्टी ही जा रई है। उसे भी तो खोल दो।"

फ़ौरन लालाजी कानों पर हाथ रखकर खड़े हो गये, बोले, "भय्या गनेशीलाल, अब इस मामले में मुझसे कुछ मत बुलवाओ। मकान तुम्हारा देखा-भाला है। तुम्हें इख्तियार पूरा है। जो रजिस्टर में लिख दोगे, मुझे मंजूर होवैगा।"

गनेशीलाल ने और मेम्बरों की ओर देखा तो वे सब भी सहमति की मुद्रा में दिखायी दिये। इसी स्थिति को भाँपते हुए चौधरी नत्थूसिंह ने कहा, "गनेसीलालजी, आप किस संकोच में पड़े हैं? आप हमारे कालिज के सेक्रेटरी भी हैं और खज़ांची भी। क़ानून के हिसाब से सेक्रेटरी को ऐसे मामलों में पूरा हक़ होता है कि वह जो किराया चाहे फ़ाइल पर लिख दे। इसमें तो मेम्बरों की राय की भी ज़रूरत नहीं है।"

क़ानून के मामले में चौधरी साहब की राय अन्तिम होती है क्योंकि उन्होंने मुख्तारी की है।

इसी के बाद मीटिंग खत्म हो गयी। सौजन्यवश चौधरी नत्थूसिंह की बात का किसी ने विरोध नहीं किया, किन्तु कुछ मेम्बर रजिस्टर में दस्तखत करते-करते भी यह ज़रूर सोच रहे थे कि अगर किराया तय करने का अख्तियार सेक्रेटरी को खुद ही है तो फिर मीटिंग बुलाने की आवश्यकता ही क्या थी! बाहर निकलते हुए ज्वाइण्ट सेक्रेटरी गुलज़ारीमल भी हैरान थे कि लाला हरीचन्द ने कौन-सी पुट देकर गनेशीलाल और नत्थूसिंह को एक जगह कर दिया। वह कौन-सा सूत्र था जिसके कारण लड़ने-भिड़ने और एक-दूसरे से सख्त नफ़रत करने के बावजूद दोनों ऐसी बातों पर हिर-फिरकर एक के एक हो जाते हैं।

सब चले गये तो गनेशीलाल रजिस्टर सँभालते हुए बोले, "सबके दस्तखत तो हो ही गये हैं, अब आपका जित्ता मन हो उत्ता किराया लिख लो।" और फिर उन्होंने रजिस्टर खोलकर उसमें अपने भी दस्तखत कर दिये।

लालाजी के अधरों की मुस्कान कानों तक फैल गयी, बोले, "भय्या गनेसीलाल, तुम जरा रुकियो। मैंन्ने उससे ठण्डयाई बनवाने कू कया था। देखूं हूं बन गई क्या?" और बैठक में गनेशीलाल को अकेले छोड़कर वह हवेली में चले गये।

थोड़ी-सी गर्मी, अकेले गनेशीलाल और पीठ पीछे मसनद। बिल्कुल ऐसी ही हालत में वह सुबह अपनी हवेली में बैठे थे। लाला हरीचन्द खानदानी रईस थे मगर गनेशीलाल भी पिछले सात-आठ सालों से शहर के बड़े रईसों में गिने जाने लगे थे। उन्होंने भी अपनी बैठक को बिल्कुल लाला हरीचन्द की बैठक के डिज़ाइन पर बनवाया था। इसी प्रकार हवेली से लगी हुई तिदरी, उसमें एक बड़ी-सी चौकी और उस पर पूरे साइज़ की जाज़म, चाँदनी और कालीन, और दीवार से लगी हुई मसनदें। वह सोचने लगे, उनकी बैठक इससे किस बात में कम है?

फिर उनकी विचारधारा कपड़े की दुक़ान की ओर बह निकली।

—नयी दुकान में बिजली का पंखा फिट होना चाहिए—उन्होंने अपने-आपसे कहा और उनके सामने अपनी नयी कपड़े की दुक़ान नाचने लगी। कल पहली बार उस दुकान पर बैठकर कैसे सुख और गौरव का अनुभव हुआ था उन्हें!

हालाँकि बूढ़े बाप लाला पचकौड़ीमल यह सब पसन्द नहीं करते, मगर गनेशीलाल को बढ़ती हुई प्रतिष्ठा में हल्दी-रँगी दाग़दार धोतियाँ पहनते हुए अच्छा नहीं लगता।

"गनेसी, ये मैं किया सुन रिया हूँ? तेरा दिम्माग खराब हो गिया है? तुझे पता नईं सुफेद कपड़ों की चौंध से लछमीजी दूर भागै हैं।"

गनेशीलाल को हँसी आ गयी, बप्पा की बात याद करके। भला लछमीजी कहाँ लो भागेंगी? और अगर गन्दे कपड़ों से ही लछमीजी को प्रेम है तो शहर में गन्दे कपड़े पहननेवालों की क्या कमी है? फिर बप्पा कौन कम गन्दे कपड़े पहनते थे? उनके पास तो लछमीजी क़भी फटकी भी नहीं। ये तो कहो जब से खुद दुक़ान का काम सँभाला तभी से घर की काया-पलट हुई।

वह मन-ही-मन अतीत की तुलना अपने वर्तमान से करने लगे। पहले शहर में पचकौड़ीमल को कोई जानता भी न था। बिरादरी में कोई इज्ज़त न थी, इसीलिए गनेशीलाल के रिश्ते तक की किसी ने बात न पूछी, मगर अब···?

अब उनकी पक्की हवेली है। एक पसरहट्टे की और दूसरी कपड़े की

दुकान है। लेन-देन का काम और खँडसाल का व्यापार है। लक्ष्मीजी की कृपा है···

···बप्पा सोचते हैं, गन्दे कपड़े पहनने से ही लछमीजी खुश हो जाती हैं···मगर गनेशीलाल जानते हैं कि पैसा पैसे को खींचता है। इसलिए दुकान सँभलाते ही गनेशीलाल ने शानदार हवेली बनवायी, सत्यनारायणजी का मन्दिर बनवाया और मण्डी में एक प्याऊ बिठलायी। और इस सबके कारण अच्छे-अच्छे घरों से छोटे भाइयों के रिश्ते आये तो उन्होंने दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह हज़ार का दहेज लेकर उनसे खँडसाल और लेन-देन का काम शुरू किया था।

आज ये सब बातें पुरानी हो गयी हैं। घर में अब सुख और शान्ति है। आज्ञाकारी भाइयों की बहुएं और बच्चे हैं जो उनकी इज़्ज़त करते हैं। शहर में लोग उन्हें 'सिकट्टरी साहब' के नाम से पुकारते हैं—इसी कालिज की बदौलत।···मगर एक ज़माना वह भी था कि इसी कालिज की बदौलत दोनों छोटे भाई उनसे गाली-गलौज करने लगे थे। पचकौड़ीमल ने अपने दोनों छोटे लड़कों को लाख समझाया था कि भई, रुपया मुझसे पूछकर लिया गया है। पर वे यही रट लगाये थे कि इन्हें क्या हक था जो इन्होंने सिकट्टरी बनने के लालच में पाँच सौ रुपये की रकम कालिज को दान कर दी। 'साझे के माल में हकतलफ़ी, बेईमानी, चोरी'···उन्होंने और भी न जाने क्या-क्या कहा था। और बात बहुत बढ़ गयी थी···

बस, वही एक घटना याद है गनेशीलाल को, जब भाइयों ने उनके सामने जबान खोली थी। अब तो वह खुद कहते हैं कि पैसा कमाना सबको आता है मगर खर्च करना सिर्फ़ भाई साहब को आता है। आज इसीलिए दोनों भाइयों की सारी कमाई गनेशीलाल के पास रहती है और एक-एक पैसा उनसे पूछकर खर्च किया जाता है।

···इतनी इज़्ज़त आज के ज़माने में कौन भाई करता है?—लोग कहते हैं। लोग यह भी कहते हैं कि 'आगे नाथ न पीछे पगहा, गनेशीलाल सारी कमाई को कौन छाती पर रखकर ले जायेगा? सब दोनों भाइयों के ही तो लिए है।' मगर भाई कुछ नहीं बोलते। दोनों भाइयों की पत्नियों में भी जेठजी की खातिर करने के लिए होड़-सी लगी रहती है। दिन-भर वे

चाहे बिल्लियों की तरह लड़ती रहें, परन्तु गनेशीलाल के घर में घुसते ही एकदम शान्त हो जाती हैं।

'जिस घर में फूट होगी
वो घर तबाह होगा।'

गनेशीलाल अक्सर इस शेर को गुनगुनाया करते हैं। कपड़े की नयी दुकान से आकर बैठक में बैठे-बैठे आज सुबह वह यही शेर गुनगुना रहे थे। पीठ-पीछे एक गोल-सा मोटा तकिया लगा था, बिल्कुल ऐसा ही, पाँव पर रखा पाँव हिल रहा था और उनकी आँखें बन्द थीं। तभी उन्हें ख़याल आया कि अरे आज तो मीटिंग है कमेटी की, और उन्होंने आँख खोल दीं।

तभी मझले भाई मोहन को अपने सामने बैठा देखकर गनेशीलाल ने सँभलकर पूछा, "हाँ भई, बोल कित्ता पैस्सा चाहिए? मगर ये सोच ले कि तेरे खात्ते में सोहन से बहुत कम पैस्सा है और तू बहोत फिज़ूलखर्च होत्ता जा रया है!"

गनेशीलाल दोनों भाइयों की आमदनी और खर्च का हिसाब अलग से एक बहीखाते में रखते थे। उसी को मोहन की ओर बढ़ाते हुए बोले "ले, तू खुद देख ले जो मैं झूठ कै रया हूँ।"

और जब मोहन ने बहीखाते की ओर नज़र भी नहीं उठायी तो गनेशीलाल को उस पर दया आ गयी, बोले, "अच्छा बता कित्ता चाहिए? मगर देख, पैस्से कू देख-भालकै खर्च किया करें।" और उनका हाथ गल्ले की ओर बढ़ चला।

मोहन बोला, "जी, मैं पैसा लेने नहीं आया।"

"फिर?" गनेशीलाल ने अचरज से कहा, जैसे पैसे के अलावा और किसी काम से उनके भाई उनके पास आते ही न हों।

"मैं कहने के लिए आया था कि···" मोहन को अपनी बात पूरी करने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिले।

"हाँ, हाँ, बोल!" गनेशीलाल ने प्यार से कहा। और उनका स्नेह-भरा आश्वासन पाकर मोहन ने जैसे-तैसे अपनी प्रार्थना उनके सामने रख दी। उसका कहना यह था कि जब गनेशीलाल की नज़र में दोनों भाई एक समान हैं तो उन्होंने अकेले सोहन को ही पसरहट्टे की दुकान क्यों दी?

क्या उसकी ग्रामदनी पर दोनों भाइयों का बराबर हक नहीं है ?

दरअसल कपड़े की दुकान खुल जाने के बाद से गनेशीलाल ने पसर-हट्टे की दुकान पर सोहन को बिठला दिया था, और यद्यपि बात ज़रा-सी थी मगर मोहन को डर था कि जाने भाई साहब की इस पर क्या प्रति-क्रिया हो !

मोहन की बात सुनकर गनेशीलाल ज़ोर से हँस दिये और फिर शान्त होते हुए धीरे से बोले, "बेफिकर रो, तुझे मैं घाट्टे में नईं रहनै दूंगा। तेरे लियो मैंन्ने एक होटल खोलने की बात सोच्ची है। और सोच्नी ही नईं बल्कि लाला हरीचन्द के घेर के सामने जो रथखान्ना है ना, उसे दस रुपये महीने किराये पै ले भी लिया है।"

मोहन, जो अरसे से गनेशीलाल की बात का विरोध करना छोड़ चुका था, असमंजस में पड़ गया। उसके देखते-देखते कितने ही होटल-ढाबे बड़े-बड़े मौक़े की जगहों पर शहर के बीचोबीच खुले और बन्द हो चुके थे। गनेशीलाल से भी यह बात छिपी न थी। फिर होटल खोलने में कौन-सी तुक है ? यह बात मोहन की समझ में नहीं आयी और उसने अपने विचार दबे-से शब्दों में व्यक्त भी कर दिये।

गनेशीलाल के माथे पर झुंझलाहट के तीन-चार बल पड़ गये, बोले, "अच्छा भैया, मेरा दिम्माग फेल हो गया है पर तुम्हारा होटल फेल नईं होगा, बस !"

फिर कुछ रुककर बोले, "तुम लोग्गों के साथ सबसे बड़ी कठिनाई येई है कि तुम किसी का कहना नईं सुनते। बस बात को कुरेदने लगो हो, और कह दो तो फिर सब जगह उसका ढँढोरा पीटते फिरा हो।"

मोहन, गनेशीलाल की बात को अन्तिम और अचूक समझता था। उस पर सन्देह या शंका करना वह वर्षों पहले छोड़ चुका था। मगर शहर से दूर एक कोने में होटल खोलने का औचित्य उसकी समझ में न आ सका।

गनेशीलाल ने कहा, "देख भई, तू मेरा दिम्माग तो चाट्टै मत, अभी मुझे जाना है मीटिंग में। दुपहर, रोट्टी के बखत, तू मुझसे सारी बात्तें पूछ लीजो।"

श्रौर लाला हरीचन्द की बैठक में अकेले पड़े-पड़े अचानक गनेशीलाल को ध्यान आया कि उन्होंने अभी तक अपनी ही बात नहीं की।

लालाजी की हवेली से कूंडी में कुछ घोटे जाने की आवाज़ आने लगी थी। मगर लालाजी हवेली में ही जाकर गुम हो गये थे।

...कहीं बादाम खुद तो नहीं घोटने लगे! गनेशीलाल ने एक क्षण के लिए सोचा और उसी क्षण सामने के दरवाज़े से मुस्कराते हुए लालाजी ने प्रवेश किया, बोले, "माफ करना, देर हो गयी भय्या गनेशीलाल! वो ठण्डयाई कू तो कह दिया, मगर बदाम्मों की चाब्बी मेरी जेब में ही रह गयी थी।"

गनेशीलाल ने आत्मीय-सी मुस्कराहट होंठों पर बिखेर दी। लालाजी बैठते हुए बोले, "हाँ तो भय्या, कित्ता किराया लिख दिया?"

गनेशीलाल ने कहा, "आप ही लिक्खो लालाजी, मैं तो, आप जान्न, मुण्डी हिन्दी जान्नू हूँ।"

"फिर भी कुछ बोल्लो तो!" लालाजी ने पूछा।

"आप ही हिसाब लगाकै लिख लो।" उत्तर मिला।

"मैं क्या हिसाब लगाऊं?" लालाजी ने बड़े असमंजस में कहा, "मकान तो तुम्हारा देक्खा हुआ है। बड़े-बड़े पूरे पन्द्रह कमरे हैं और दो कोठरी। सहर में एक कमरा पन्द्रह-बीस रुपये में मिलै है। और दस-दस रुपये में कोठरी। मगर तुम कहो तो मैं सिर्फ ढाई सौ लिखे लूं हूँ।"

गनेशीलाल की आंखें फैलने को हो आयीं। राजपुर में बड़ी-से-बड़ी इमारत का किराया चालीस रुपये से ज़्यादा न था। और लाला हरीचन्द ऐसी बड़ी मात दे बैठेंगे, इसकी कल्पना भी न थी गनेशीलाल को। उस घेर में पन्द्रह घोड़ों के बंधने के लिए पन्द्रह अस्तबल ज़रूर थे मगर उन्हें पन्द्रह बड़े-बड़े कमरे कहना ज़्यादती थी। अलमारी, खिड़की, कार्निस, रोशनदान या दरवाज़े—अर्थात् कमरे का कोई भी चिह्न तो न था उनमें। गनेशीलाल किराये की रक़म सुनकर सकते में आ गये।

ठण्डाई आ गयी थी। गिलास गनेशीलाल के हाथ में देते हुए लालाजी ने फिर वही सवाल दोहराया तो गनेशीलाल को मोहन के होटल का ध्यान हो आया और बरबस उनके होंठों पर मुस्कान खिंच आयी। गर्दन

हिलाते हुए बोले, "पन्द्रह-पन्द्राम दोस्सौ पच्चिस और बीस रुपये दो कोठरियों के। कुल मिलाके दोस्सौ पैंतालीस हुए। मैं येई सोच रया था कि पाँच रुपये के पीच्छे किसी कू उँगली उठाने का मौक्का क्यूं दिया जावै। इसलियो लालाजी, आप तो दोस्सौ पैंतालीस लिक्खो।"

लाला हरीचन्द को सहमत होना पड़ा। फिर गनेशीलाल की दूरदर्शिता की सराहना करते हुए अचानक धीरे से उन्होंने पूछा, "अब तुम कहो ? रथखान्ना लै लिया ?"

गनेशीलाल की जान-में-जान आयी। आखिर जो बात वह करना चाह रहे थे वही खुद लालाजी ने शुरू कर दी। निःश्वास छोड़कर कहा, 'हाँ, ले तो लिया, मोहन की इच्छा भी है कि वो एक होटल खोल्लै। मगर लालाजी, मेरा तो जी घबरावै है। भला आज लो कोई होटल चला है यहाँ ?"

एक पल के लिए लालाजी गनेशीलाल के वाक्यों को तोलते रह गये। और दूसरे ही क्षण समझाते हुए बोले, "जरा मौक्का तो सोच्चो, भय्या गनेसीलाल ! भला जहाँ चालीस-पचास विद्यार्थी होवेंगे, वहाँ होटल फेल हो सकै है ? तुम मोहन कू होटल जरूर खुलवा दो। बाक्की जिम्मा मेरा।"

"देक्खो, अब आप कै रयो हो तो ठीक ही है !" गनेशीलाल ने उठते हुए हाथ जोड़कर कहा। और गनेशीलाल के कन्धे पर हाथ रखकर बाहर तक छोड़ने के लिए आये लालाजी मन-ही-मन मुस्करा दिये। वह जानते थे कि इस मामले में यदि गनेशीलाल कें इन्कार की गुंजाइश होती तो न उनके घेर में होस्टल खुलता और न उसका किराया ही दो सौ पैंतालीस रुपये तय हो पाता।

विमर्श और परामर्श

सत्यव्रत सोचता है कि मैनेजमेण्ट के दोषों को ढूंढना अध्यापकों की आदत क्यों बन गयी है ? क्यों ये लोग छिद्रान्वेषण से आगे जीवन के और वृहत्तर

उद्देश्यों को नहीं देख पाते ?

खुद सत्यव्रत मनुष्य में दुर्बलता स्वीकार करता है। वह यह भी स्वीकार करता है कि उन दुर्बलताओं के कारण मैनेजिंग कमेटी के कुछ सदस्यों ने कृषि-योजना या कॉलेज की अन्य किसी चीज़ से कभी आर्थिक लाभ प्राप्त किया होगा। किन्तु वह आधारभूत विचार की श्रेष्ठता को अस्वीकार नहीं कर सकता—चाहे वह हॉस्टल हो या कॉलेज-कृषि-योजना। और अध्यापक हैं कि उन्हें शोषण, छल और फ़रेब के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं देता !

सत्यव्रत जब से हॉस्टल का सुपरिण्टेण्डेण्ट हुआ है—कुछ लोग उसे और सशंकित दृष्टि से देखने लगे हैं ! उसकी समझ में नहीं आता कि वह कैसे विश्वास दिलाये ! वह कैसे समझाये कि उसने इसके लिए किसी से सिफ़ारिश नहीं करायी। उसे खुद उसकी योग्यता, या अन्य विशेषताओं के कारण सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाया गया है। मगर अध्यापक जैसे यह मानने को तैयार ही नहीं।

यहाँ नियुक्तियों की सिफ़ारिशों के सैकड़ों क़िस्से वह सुन चुका है। वह उन्हें असत्य भी नहीं मानता। आदमी कभी-कभी परिस्थितियों से विवश हो जाता है मगर वह यह नहीं मान पाता कि इस कारण मैनेजमेण्ट ने सदैव सही और योग्य व्यक्तियों की उपेक्षा की होगी। वह स्वयं जो इसका प्रमाण है।

और चर्चा छिड़ने पर यही बात उसने उस दिन जयप्रकाश को समझायी थी, "मैं कैसे मान लूं जय भाई, कि मैनेजमेण्ट के लोग बेईमान हैं, बुरे हैं और पक्षपात करते हैं, जब तक कि मैं स्वयं अपनी आँखों से न देख लूं, अपने कानों से न सुन लूं ?"

"आपकी बात सही है, मास्टर साहब !" जयप्रकाश ने कोमल स्नेह से आँखें झपकाते हुए कहा था, "आदमी को अपने विचार अपने अनुभवों पर बनाने चाहिए, दूसरों के नहीं।"

"फिर आप मैनेजमेण्ट को बुरा क्यों कहते हैं ?" सत्यव्रत ने प्रश्न के लिए क्षमा माँगते हुए कहा।

"इसलिए कि मेरे विचार मेरे अनुभवों पर आधारित हैं !" जयप्रकाश

ने उत्तर दिया।

"अगर आप अन्यथा न लें तो इसी विषय पर मैं आपसे कुछ और प्रश्न पूछूं? वस्तुत: मैं अपने दृष्टिकोण को साफ करना चाहता हूं।" सत्यव्रत ने संकोचपूर्वक कहा।

और जयप्रकाश ने प्रोत्साहन दिया, "आप अवश्य पूछिए। मैं जानता हूं आप ये प्रश्न अपनी जिज्ञासा के लिए पूछ रहे हैं, मैनेजिंग-कमेटी तक पहुंचाने के लिए नहीं!"

सत्यव्रत ने फिर विषय पर आते हुए कहा, "मैनेजमेण्ट के विषय में आपकी धारणाएं अपने अनुभवों पर आधारित हैं जय भाई, किन्तु उस दिन हॉस्टल के विषय में मैनेजमेण्ट को लेकर आपने जो विचार व्यक्त किये थे वे तो आपके अनुभवों पर आधारित नहीं हो सकते। फिर···?"

"वे मेरे अध्ययन पर आधारित हैं।" जयप्रकाश ने मुस्कराकर कहा, "आप शायद यह कहना चाहते हैं कि आप हॉस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, आपको हॉस्टल का निकटतम अनुभव है और आपको उसमें ऐसी कोई बात नहीं लगती जिससे मैनेजमेण्ट का स्वार्थ और कपट दिखलायी पड़े! यही न?"

सत्यव्रत ने कुछ नहीं कहा।

"तो यह वस्तुस्थिति के अध्ययन और दृष्टिकोण का अन्तर हुआ!" जयप्रकाश बोला, "दरअसल आप इतने अच्छे आदमी हैं कि आपको हर आदमी और हर चीज़ में अच्छाई ही नज़र आती है।"

"फिर आपको मुझमें अच्छाई कैसे नज़र आती है?" सत्यव्रत ने मुस्कराकर जयप्रकाश के उत्तर से ही प्रश्न निकाला।

"मैंने यह कब कहा कि मैं बुरा आदमी हूं और मुझे हर आदमी और हर चीज़ में बुराई नज़र आती है? मैं तो साधारण आदमी हूं; न ज़्यादा अच्छा, न ज़्यादा बुरा। और वस्तुनिष्ठ भाव से हर चीज़ को देखता हूं।" जयप्रकाश निस्संग भाव से बोला।

"अच्छा, आपको याद है, आपने हॉस्टल खुलने की बात सुनकर क्या कहा था?" सत्यव्रत ने मुस्कराते हुए पूछा और उसे यह सोचकर सुख मिला कि कम-से-कम एक तो ऐसा आदमी है, जो उसे ठीक-ठीक समझता

है और उसकी बातों का बुरा नहीं मानता।

"मुझे शब्द याद नहीं, लेकिन विचार याद हैं, क्योंकि वे आज भी बदले नहीं हैं।"

तभी ज़ोर से बिजली कड़की और तड़ातड़ वर्षा की बूंदें गिरने लगीं। वातावरण की उमस सहसा कम हो गयी। सत्यव्रत को लगा कि इधर का दरवाज़ा खोल दूं तो ठण्डी हवा के झोंके भीतर आते रहेंगे।

इधर कुछ दिनों से वह अक्सर उस दरवाज़े को बन्द रखने लगा था।

शुरू-शुरू में तो सत्यव्रत को अपनी कोठरी के उस दरवाज़े से हॉस्टल के आंगन में लड़कों की गतिविधि पर नज़र रखनी पड़ती थी। मगर इधर कुछ दिनों से, जब से विमला अपने मकान के पिछले हिस्से की छत और ज़ीने पर आकर इधर झांकने लगी है और लड़कों ने उसे लेकर आपस में कानाफूसी शुरू कर दी है, तब से उसने वह दरवाज़ा बन्द कर दिया है और बाहर सड़क की ओर खुलनेवाला दरवाज़ा खोल लिया है। जयप्रकाश ने भी उसे समझाया था, "आप अगर इतना कण्ट्रोल रखेंगे और लड़कों की स्वतन्त्रता पर चौबीस घण्टे का बन्धन बन जायेंगे मास्टर साहब, तो इसका परिणाम कोई अच्छा नहीं निकलेगा।" और उसे बात पसन्द आयी थी।

बिजली की कड़क और वर्षा की बूंदों के साथ उसे लगा, विमला छत पर कपड़े उतारने आयी होगी। मगर वह दरवाज़ा खोलने के लिए नहीं उठा। जयप्रकाश की बात का सूत्र पकड़ते हुए बोला, "हां, तो आपने कहा था, शोषण का एक और जाल! बताइए तो छात्रावास के सन्दर्भ में इसका क्या औचित्य है?"

जयप्रकाश सोचने की मुद्रा में कुछ क्षण खामोश खड़ा रह गया और सत्यव्रत ने उसी बीच कई-सारे प्रश्न और पूछ डाले।

"क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि बाहर के विद्यार्थियों के लिए यहां छात्रावास का होना आवश्यक है? क्या आप यह मानते हैं कि छात्रों से किराये के रूप में प्राप्त आय को मैनेजमेण्ट के लोग खा जायेंगे? या आप यह सोचते हैं कि मुझे इस छात्रावास का सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाकर एक अनुचित और अयोग्य व्यक्ति को प्रश्रय दिया गया है और मैं छात्रों का

मैनेजमेण्ट के हित में शोषण करूँगा ?

"नहीं।" जयप्रकाश ने एकदम शान्त और निर्विकार मुद्रा में धीरे-धीरे कहा और उसकी आवाज़ क्रमशः ऊपर उठती गयी, "मैं अनुभव करता हूँ कि बाहर के छात्रों के लिए हॉस्टल खुलना नितान्त आवश्यक था, मगर मैं यह अनुभव नहीं करता कि वह हॉस्टल यहाँ इस अस्तबल में ही खुलना चाहिए था। मैं जानता हूँ कि हॉस्टल के छात्रों से किराये के रूप में प्राप्त आय मैनेजमेण्ट के लोग खा नहीं सकते मगर वे हॉस्टल के माध्यम से आमदनी के और ज़रिये ढूंढ सकते हैं—जैसे गनेशीलाल के छोटे भाई मोहन ने सामने होटल खोल लिया है। मैं यह मानता हूँ कि आपको हॉस्टल का सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाकर उन्होंने अनजाने हो बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है, किन्तु उसका कारण यह नहीं कि आपके द्वारा उन्हें छात्रों का शोषण करना है बल्कि यह है कि वे खुद आपका ही शोषण करना चाहते हैं !"

"मेरा शोषण ? "सत्यव्रत ने चकित होते हुए पूछा था।

"हाँ, आपका शोषण ! आप बताइए कि क्या आप चौधरी नत्थूसिंह की लड़की को पढ़ाने के लिए रोज़ाना घण्टे-दो घण्टे का समय नहीं देते ?"

सत्यव्रत को यह तर्क बड़ा अजीब और हल्का जँचा। अगर उसने चौधरी साहब की प्रार्थना पर स्वेच्छा से उनकी लड़की को घण्टा-दो घण्टा समय देना स्वीकार कर लिया तो यह शोषण कैसे हुआ ? चौधरी साहब ने तो उसे पैसे भी देने चाहे थे। कहा था, "अगर आप मुनासिब समझें तो शाम को घण्टे-दो घण्टे का समय विमला को दे दिया करें। वह इस साल फिर विद्या-विनोदिनी में बैठ रही है। आप जो कहेंगे, मैं आपको दे दिया करूँगा।"

उसने स्वयं ही चौधरी साहब की सज्जनता और आपसदारी का लिहाज़ करते हुए पैसे लेने से मना कर दिया था, "जी नहीं, पैसों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु मैं आजकल तनिक छात्रावास की सफ़ाई में व्यस्त हूँ। दो-तीन दिन बाद ही उपस्थित हो सकूँगा।"

"हाँ हाँ, कोई जल्दी नहीं है।" चौधरी साहब ने कहा था और इस बात को महसूस करते हुए कि हॉस्टल के अहाते में कितने झाड़-झंखाड़

ग्रौर गन्दगी है ग्रौर उसकी सफ़ाई कितने परिश्रम का काम है, वह ग्रपने चबूतरे की तरफ़ बढ़ गये थे। हॉस्टल खुलने के चार दिन बाद ही सत्यव्रत विमला को पढ़ाने जा सका था।

यही सब सोचकर झिझकते हुए सत्यव्रत ने कहा, "जय भाई, ग्राप बुरा न मानिए पर बात है अजीब-सी। मेरा शोषण हो रहा है ग्रौर मुझे पता भी नहीं चल रहा। ग्रौर ग्राप हैं कि···" जयप्रकाश ने बात पूरी नहीं होने दी, बोला, "इसमें ग्रजीब कुछ भी नहीं। ऐसा ही तो होता है। जाल में फँसते हुए शिकार का ध्यान जाल के फन्दों की ग्रोर नहीं बल्कि उस प्रलोभन की ओर होता है, जिसके वशीभूत होकर वह जाल की तरफ़ खिचता है। ग्राकर्षण की उस स्थिति में वह स्वयं जाल को चाहे न देख पाये, मगर इधर-उधर छिपे तमाशबीन तो उसे जाल के एक-एक फन्दे में फँसते हुए देख ही सकते हैं।"

ग्रौर यहीं पर बहस समाप्त हो गयी थी···ग्राखिर जयप्रकाश ने भी वही बात कही जो सुबह हॉस्टल के लड़कों के मुँह से सत्यव्रत ने ग्रनायास सुन ली थी। वही बात जिसकी फुससाहट कुछ दिन पूर्व टीचर्स-रूम में भी हुई थी। जयप्रकाश को वह बुद्धिमान ग्रौर विश्वसनीय ग्रादमी समझता था, भले ही वह मैनेजिंग-कमेटी के प्रति कुछ पूर्वाग्रहों और द्वेषों को मन में पाले हो। सत्यव्रत की उसमें आस्था थी। मगर उसने भी ग्रफ़वाहों पर विश्वास कर लिया! सत्यव्रत ऊपर से नीचे तक काँप उठा।

जिस ग्राकर्षण ग्रौर प्रलोभन की ग्रोर जयप्रकाश ने इशारा किया था, वह, दिन-भर लकड़ी के खोखों पर खड़े होकर नत्थूसिंह के घर में झाँकनेवाले हॉस्टल के लड़कों के लिए ग्राकर्षण हो सकती है, उसके लिए तो मात्र कर्त्तव्य है। वह लड़की सही, मगर शिष्या है ग्रौर ज्ञान-दान के रिश्ते से ग्रात्मजा है। सत्यव्रत उसे दूसरी दृष्टि से नहीं देख सकता।

मगर सत्यव्रत दूसरी दृष्टि की कल्पना करके ज़रूर सिहर उठता है। दूसरी दृष्टि यानी विमला की दृष्टि। उसकी छात्रा चौधरी नत्थूसिंह की लड़की की दृष्टि! वह देखती है तो देखती ही रह जाती है। ग्रौर उस समय तक देखती रहती है जब तक कि सत्यव्रत उससे किताब निकालने को

नहीं कहता।

मगर ऐसा अभी कुछ दिनों से होने लगा है। पहले तो कॉलेज से लौटकर शाम के समय वह उसे पढ़ाने के लिए जाता था, तो बैठक से मिले बरामदे में बैठकर तब तक इन्तज़ार करनी पड़ती थी जब तक चौधरी नत्थसिंह ज़ोर से पुकारकर आवाज़ नहीं लगाते थे, "बेटी, देखो मास्टर साहब आ गये।" पर अब! अब तो सत्यव्रत के पहुँचते ही वह तुरन्त छाती से किताब और कापियाँ लगाये आ पहुँचती है।

शुरू-शुरू में सत्यव्रत को उसका इतनी-सारी किताबें और कापियाँ लिये फिरना बच्चों-जैसा शौक लगता था। जब वह मदरसे में पढ़ता था तो वह भी मोटी-सी गुटका रामायण, वीर अभिमन्यु और महाभारत-जैसी अनावश्यक पुस्तकें अपने बस्ते में बाँधे रहता था ताकि बस्ता मोटा दिखायी पड़े। मगर तब वह बच्चा था···विमला तो इतनी बच्ची नहीं है।

इसी कौतूहलवश उसने उस दिन पहली बार विमला की ओर आँखें उठाकर देखा था। वह किताबों और कापियों का ढेर सीने से चिपकाये मूढे पर बैठनेवाली थी। इक्कीस-बाईस साल की उम्र, भरा हुआ पुष्ट वक्षस्थल, सुडौल गोरी बाँहें और छोटी मगर बोलती हुई आँखें। रंग एकदम गोरा···मुख और किताबों से चिपके वक्षस्थल को ही वह एक नज़र देख पाया था और उसी से उसने विमला की उम्र का अनुमान लगा लिया था। हाँ, बच्ची नहीं है। पर किताबें बिल्कुल बच्चों की तरह लाद-कर चलती है। और अपनी बचपन की यही आदत याद करके उसकी साफ़ नीले समुद्र-सी आँखों में शरारत-जैसी हँसी तैर गयी थी।

शायद उसी समय विमला ने भी सत्यव्रत की ओर देखा था। उसके मुस्कराते हुए होंठ और हँसती हुई आँखों में विमला को ऐसा सर्प-सा सम्मोहन दिखायी दिया था कि वह विसुध-सी रह गयी थी और उसके सीने से लगी हुई किताबें एक-एक कर पकड़ से फिसलने लगी थीं।

"अरे रे रे!" सत्यव्रत ने किताबें सँभालने की कोशिश में विमला की उँगलियों पर हाथ रखते हुए अनायास ही किताबों को ऊपर की ओर उठा दिया था, "इतनी किताबें क्यों लेकर चलती हैं?"

विमला के वक्ष में कम्पन होने लगा था। सत्यव्रत के हाथ से दबी किताबों ने उसके वक्ष की धड़कनों को बढ़ा दिया है। तब से रोज़ाना उसकी एकाध किताब गिरती है और सत्यव्रत सँभालकर उसे पकड़ा देता है। किताब लेने-देने की कोशिश में अगर उसकी उँगली सत्यव्रत की उँगली से छू जाती है, तो उसकी समूची देह झनझना उठती है।

तभी से वह सत्यव्रत की ओर देखती है। जाने क्या है उसकी दृष्टि में कि सत्यव्रत घबराकर गर्दन झुका लेता है। यह मोह है या ममता, स्नेह है या आकर्षण, मगर कुछ है अवश्य···सत्यव्रत बुरा नहीं मानता। आखिर मनुष्य तो निमित्त-मात्र है, नियामक तो कोई और ही है। कोई और ही है, जो सारे सूत्रों का संचालन करके मानव को गतिशील रखता है। उसमें गुण-अवगुण, शक्ति और दुर्बलता भी उसी की दी हुई हैं। हाँ, मनुष्य उनका पूरा उपयोग करे अथवा अधूरा, यह उसकी क्षमता और कर्त्तव्य-निष्ठा का प्रश्न अवश्य है।

विमला के सन्दर्भ में सत्यव्रत को यही हर्ष होता है कि वह कभी अपने कर्त्तव्य से नहीं गिरा। यद्यपि इससे पूर्व उसे किसी ग़ैर लड़की से इतनी निकटता प्राप्त नहीं हुई, फिर भी वह संयम के पथ पर दृढ़ है। यह सच है कि विमला के पास बैठकर कॉलेज की सारी थकान पल-भर में काफ़ूर हो जाती है और जब वह कहती है, "बस मास्टर साहब, अब जितना पढ़ाया है, उसे याद कर लेने दीजिए;" तो वह शान्त होकर बैठ जाता है और उसका मन होता है कि वह चुपचाप इसी तरह बैठा रहे।

मगर पहले दिन जब वह विमला को पढ़ाने गया था और उसके पास जाकर बैठा था तो मन में इतनी शान्ति न थी। विशेषकर उस स्पर्श के बाद तो एक अजीब-सी गन्ध उसके नासापुटों से होती हुई मन और मस्तिष्क में महक उठी थी। अपनी ही कस्तूरी से विह्वल उसके तन का रन्ध्र-रन्ध्र रोमांचित हो उठा था। उसे लगा था कि वह विमला के साथ किसी अदृश्य-अनजान यज्ञ में आहुति देने के लिए आ बैठा है और हर आहुति के साथ आँच की तेज़ी बढ़ती जा रही है। किसी भी क्षण लपटें बढ़कर उसके अस्तित्व को पकड़ लेंगी और उसका मुँह झुलस उठेगा। इसीलिए उसने तत्काल जैसे मुँह को आँच से बचाने के लिए विमला की

ओर फेर लिया था और उसे महसूस हुआ था कि उस पर भी लपटों का प्रभाव छा गया है, क्योंकि उसका मुँह भी सुर्ख़ हो उठा था। उसकी कनपटियों के पास भी नसें उभर आयी थीं और वह भी कुछ बोल सकने की स्थिति में नहीं थी।

आख़िर यह ठहराव सत्यव्रत ने ही तोड़ा था, "आज के लिए इतना पर्याप्त है।" हाथ की किताब बन्द करके मेज़ पर रखते हुए उसने कहा और संयत होकर उठने का उपक्रम करने लगा।

विमला को शायद लगा कि कोई सपना बनते-बनते टूट गया है, क्योंकि उसने सँभलकर उत्तर देने में काफ़ी समय लिया। पहले उसने सिर्फ़ 'ऊँ' की और फिर कुछ सोचने लगी।

सत्यव्रत का मन हुआ कि अपनी इस जन्मजात दुर्बलता को दबाने के लिए भागकर कोठरी में चला जाये और गीता-पाठ करने लगे।

"नहीं, मास्टर साहब! आप बैठिए, हम अभी पूरा पाठ देखे लेते हैं। आप चले गए और हमें कोई दिक्क़त हुई तो कौन बतायेगा?" विमला ने धीरे से कहा था। सत्यव्रत ने अनुभव किया था कि अब तो वह बहुत बोलने लगी है। हर बात का आँखें मिलाकर उत्तर देती है और बात-बे-बात रहस्यमय ढंग से मुस्करा उठती है। मगर अब सत्यव्रत में वह दुर्बलता नहीं रही।

अब तो सत्यव्रत सोचता है कि विमला हर दृष्टि से एक साधारण-सी लड़की है। अनुभव, आयु और ज्ञान हर बात में उससे कम है। वह उसे अनौचित्य की ओर जाने के लिए विवश नहीं कर सकती। वह उसके संयम को चुनौती है तो हो, वह स्थिति से सामने पड़कर संघर्ष करेगा वह पलायन को समस्या का निराकरण नहीं मानता। हाँ, पहले दिन वह ज़रूर दुर्बल हो गया था।

इस पर भी जयप्रकाश कहता है, "फँसते हुए शिकार का ध्यान जाल के फन्दों की ओर नहीं बल्कि उस प्रलोभन की ओर होता है जिसके वशीभूत होकर वह जाल की तरफ़ खिंचता जाता है।" मगर सत्यव्रत अनुभव करता है कि उसके सामने कोई प्रलोभन या कोई आकर्षण नहीं है। यदि कुछ है तो एक नैतिक प्रश्न, एक आत्म-संघर्ष। उसके चरित्र को एक

चुनौती, जिसे वह जान-बूझकर स्वीकार कर रहा है। इसलिए कि वह विजयी हो और उसका व्यक्तित्व सफलता के एक और विश्वास से मण्डित हो उठे।

मगर ये सारी बातें वह किससे कहे? राजेश्वर से! जिसने सम्भवतः यह अफ़वाह उड़ायी हो। या जयप्रकाश से! जो अधूरा विश्वास करता है। फिर किससे? इनमें कोई भी तो ऐसा नहीं, जो उसकी पीड़ा और व्यथा का ईमानदारी से सहभोगी हो सके। सारे-के-सारे अन्धकार और अविश्वास के यात्री हैं, वह किससे प्रकाश और आस्था की याचना करे?

एक मिनट के लिए सत्यव्रत ने अपने-आपको नितान्त अकेला और आश्रयहीन महसूस किया। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके दिमाग में उन गंगा-तट वासी स्वामीजी का व्यक्तित्व कौंध गया जिनके पास गुरुकुल-जीवन में वह अक्सर अपनी नैतिक और आध्यात्मिक समस्याएँ लेकर जाता था। उसे लगा जैसे मन के निविड़ अन्धकार में एक ज्योति-शलाका लिये हुए स्वामीजी खड़े हैं और उसे अपनी ओर आने का संकेत दे रहे हैं।

सत्यव्रत ने फौरन काग़ज़-कलम उठा लिया और उन्हें पत्र लिखने बैठ गया :

प्रातःस्मरणीय परमपूज्य स्वामीजी,

सादर चरण-स्पर्श!

निवेदन है कि परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा और आपके आशीर्वाद से मेरी नियुक्ति यहाँ के हिन्दू इण्टर कॉलेज में सहायक अध्यापक के रूप में हो गयी है। मैंने जुलाई मास से कार्य-भार ग्रहण कर लिया था। किन्तु लगभग तीन मास बीत जाने पर भी मैं अपनी अन्तरात्मा में उस शान्ति और स्थैर्य का अभाव अनुभव करता हूँ, जो जीवन में मनचाहा कार्य मिल जाने पर होना चाहिए।

ऐसी स्थिति में मुझे आपके मार्गदर्शन की अतीव आवश्यकता है। मैं संक्षेप में सारी बातें आपके श्रीचरणों में निवेदन कर रहा हूँ। कृपया मुझे सत्पथ की ओर प्रेरित करनेवाले आशीर्वचन देकर अनुगृहीत करें।

यहाँ कॉलेज में शिक्षा का जो वातावरण होना चाहिए, वह निश्चय

ही नहीं है। छात्र उद्दण्ड, अविनीत और उद्धत हैं। नैतिक और चारित्रिक मूल्यों के प्रति उनमें न कोई आग्रह है, न आकर्षण। गांव के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा, विवाह का माध्यम है तो नगर के विद्यार्थियों के लिए समय बिताने और बहीखाते लिखने योग्य भाषार्जन करने का। उनमें शिक्षा के प्रति कोई भी उत्कट लालसा या ललक नहीं है।

मेरा मन इस स्थिति में बड़ा विक्षुब्ध है; क्योंकि अन्ततः इस सबके उत्तरदायी अध्यापक-गण ही हैं। उन्हीं की कर्त्तव्यपरायणता में शिथिलता होने के कारण छात्रों का पतन हो रहा है और शिक्षा का ह्रास। मैं समझ नहीं पाता, इन्हें कैसे बताऊँ कि—

विद्या ददाति विनयं, विनयादयाति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं ततः सुखम्॥

अध्यापक अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति उदासीन हैं। जाने क्यों वे कॉलेज के कुछ निर्धारित घण्टों में छात्रों को पढ़ाकर ही अपने कर्त्तव्य की इति मान लेते हैं!

उनकी बातें सुनता हूँ तो और भी क्लेश होता है। मेरे चरित्र और व्यक्तित्व के विषय में तो वे तरह-तरह की मिथ्या बातें करते ही हैं, विद्यार्थियों में भी स्वयं अनादर और अनास्था के बीज बोते हैं। किन्तु ऐसा वे किसी दुर्भावना से नहीं करते, बल्कि यह उनका स्वभाव हो गया है। वे अपने प्रति भी ऐसे ही अनुदार और उदासीन हैं जैसे छात्रों और शिक्षा एवं कर्त्तव्य के प्रति।

अधिकांश अध्यापकों ने कॉलेज की व्यवस्था-समिति के सदस्यों के प्रति एक पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण बना रखा है, फलतः स्वयं ही उससे आतंकित और भयभीत रहते हैं और समय-असमय सदस्यों की कटु आलोचना करते रहते हैं।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने सदस्यों के व्यवहार या आचरण में कोई ऐसी बात नहीं देखी जो अप्रिय एवं आलोच्य हों। किन्तु यही बात जब मैं अपने साथी अध्यापकों से कहता हूँ तो वे मुझे अत्यन्त अपरिचित दृष्टि से देखते हैं, जैसे मैं उनका साथी न होकर व्यवस्था-समिति का ही कोई सदस्य हूँ। मुझे बड़ा क्लेश होता है यह देखकर कि यहाँ हर अध्यापक

विचारों की यात्रा अविश्वास और संशय से ही शुरू करता है।

गुरुदेव ! आप बताएँ कि क्या इन्हीं दुर्बल और संशयग्रस्त कन्धों पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है ? क्या इन्हीं के विचारों के रक्त-मांस पर पलनेवाली पीढ़ी नयी गन्ध और नयी फ़सल लेकर आ सकेगी ? क्या नींवों में ऐसी कच्ची पोली ईंटों को रखकर किसी बड़े भवन का शिलान्यास किया जा सकता है ?

कृपया मुझे आदेश दें कि मानसिक संकुलता की इस स्थिति में मेरा क्या कर्त्तव्य है ? प्रतिपल आपके उत्तर की प्रतीक्षा में—

श्रीचरणों में सादर विनयावनत

—सत्यव्रत

और सत्यव्रत विमला के प्रसंग को जान-बूझकर छोड़ गया। उसने सोचा, विमला एक वैयक्तिक समस्या है, उस पर फिर भी विचार किया जा सकता है। सबसे प्रमुख और ज्वलन्त प्रश्न तो इस वातावरण में अपना कर्त्तव्य निर्धारित करने का है।

समझौता ?

जयप्रकाश कोतवाली में उम्मेदसिंह के काम से गया था, किन्तु वहाँ उसने एक दूसरा ही माजरा देखा।

मण्डी में झगड़ा हो गया था। लखूवाले गाँव के जाटों की तीन गाड़ियाँ सोसाइटी से सनी लेने के लिए आयी थीं। मगर सोसाइटी बन्द होने के कारण हल्दी-मिर्च-मसाला खरीदकर ही उन्हें अपने शहर आने के श्रम को सार्थक मानना पड़ा। उनमें से एक ने सोहन की दुकान से पाँच सेर नमक खरीदा था और दूसरे ने कुबले खाँ की दुकान से। बाद में जाँच की तो सोहन की दुकान से खरीदा हुआ नमक उन्हें कुछ कम लगा और उसी को लौटाने पर 'तू-तू, मैं-मैं' से होती हुई बात गाली-गलौज तक जा पहुँची थी।

सोहन, सिकट्टरी गनेशीलाल का भाई श्रौर शहर का जाना-माना रईस। गांव का एक मामूली श्रादमी उसे श्रबे-तबे करे, यह उससे बरदाश्त नहीं हुश्रा। श्रौर वह श्रधसेरी, जिसे हाथ में लिये वह बहुत देर से मारने की धमकी दे रहा था, श्रचानक उसके हाथ से छूटकर किसना जाट की खोपड़ी में जा लगी श्रौर खून की कुर्रो फूट निकली। फिर क्या था! जाटों ने उसकी पिटाई की सो तो की ही, मगर कोतवाल ने बलवा, बेईमानी श्रौर जब-शदीद की जाने कौन-कौन-सी दफ़ा लगाकर उसके हाथों में हथकड़ी ही डाल दीं श्रौर जब तक गनेशीलाल हवेली से श्रायें तब तक सोहन को कोतवाली पहुंचा दिया। इस तरह एक ऐसी घटना घट गयी जिसने पूरे शहर में सनसनी पैदा कर दी।

हॉस्टल में यह ख़बर जयप्रकाश के ज़रिये पहुँची।

वह भी एक संयोग ही था कि जयप्रकाश उम्मेदसिंहवाले मामले में बातचीत करने कोतवाल के पास जिस वक्त पहुँचा उस वक्त वह दीवान से कह रहा था, "बड़ा मोटा मुर्ग़ा फँसा है। जाट को श्रस्पताल पहुँचा दो श्रौर डॉक्टर साहब से कहना कि कम-से-कम पाँच चोटें तीन सौ तेईस की श्रौर एक दफ़ा तीन सौ पच्चीस की बननी चाहिए। उनका हिस्सा उन्हें पहुँच जायेगा। श्रौर हाँ, देखना, जाट न टूटने पायें···"

जयप्रकाश के सलाम के जवाब में कोतवाल उसे बाँह से पकड़कर श्रपने क्वार्टर की तरफ़ ले गया।

एक बड़े-से लम्बे कमरे में दफ़्तर था जहाँ एक पक्के चबूतरे पर डेस्क लगाये मुंशी श्रौर दीवानजी बैठते थे। कमरे के सामने था बरामदा श्रौर श्रौर पीछे कुछ फ़ासले पर कोतवाल साहब का क्वार्टर, जिसके बरामदे के एक कोने में स्टूल पर सोहन गर्दन झुकाये बैठा था।

जयप्रकाश को सोहन की तरफ़ श्राश्चर्य से देखते हुए पाकर कोतवाल बोला, "जी हाँ, श्रापके सेकट्टरी साहब के भाई साहब हैं। बेचारे सीधे-सादे गांववालों को लूट रहे थे श्रौर उन्होंने एतराज़ किया तो जनाब, उन्हें लाठियों श्रौर बल्लमों से पिटवाया गया, ये हाल हैं!"

सोहन यद्यपि काफ़ी फ़ासले पर बैठा था, पर इतना बड़ा झूठ इतनी ज़ोर से कहा गया था कि सुनकर वह खामोश न रह सका श्रौर तिलमिला-

कर वहीं से बोला, 'कोतवाल साहब, राई का पहाड़ मत बनाइए। हम भला दुकानदारी करेंगे कि गुण्डे पालेंगे ?"

"भई, मुझे क्या मालूम ? जैसी रिपोर्ट लिखवायी गयी है, वही मैं कह रहा हूँ। वैसे आजकल आप-जैसे बड़े लोगों में पाँच-सात गुण्डे पालने का फैशन तो है ही। बाकी झूठ-सच तो तहकीक़ात करने पर ही मालूम होगा।"

जयप्रकाश वहाँ आकर बड़ी उलझन में फँस गया था। किसकी कहे, किसकी न कहे ? फिर भी उसे कहना पड़ा, "कोतवाल साहब, सचाई कुछ हो, इतनी बात मैं भी कहूँगा कि सोहनलालजी झगड़ालू आदमी नहीं हैं। इन्होंने भी बिल्कुल सेक्रेटरी साहबवाला स्वभाव पाया है। सबसे मीठा बोलना···"

"अजी छोड़ो !" कोतवाल साहब ने लापरवाही से कहा, "यह सब तो अदालत में साबित होगा कि कौन झगड़ालू है और किसने झगड़ा किया !"

फिर उसने इशारे से एक सिपाही को बुलाकर सोहन को दफ़्तर में ले जाने का आदेश दिया; और धीरे से पहरेवाले सिपाही को बुलाकर पूछा, "लाला हरीचन्द और गनेशीलाल तो नहीं आये ?"

"जी नहीं।"

"अच्छा, मास्टर साहब के लिए शरबत लाओ। और देखो, वे लोग अगर आयें, और मेरा खयाल है कि आने ही वाले होंगे, तो उन्हें कुछ देर पहले तनहाई में सोहन से मिल लेने देना, तब मेरे पास लाना।" फिर जयप्रकाश की ओर देखकर धीरे से आँखें सिकोड़कर बोला, "मास्टर साहब, ज़रा ये तो बताइए कि ये उम्मेदसिंह कैसा लड़का है ? यानी उसका चाल-चलन···?"

कोतवाल साहब इस वक्त अपने क्वार्टर में थे और बड़े दोस्ताना और आत्मीय ढंग से जयप्रकाश से बातें कर रहे थे। यों भी अपने पुत्र का गुरु होने के नाते वह जयप्रकाश को हमेशा ही उचित सम्मान देते थे।

जयप्रकाश ने उम्मेदसिंह के चाल-चलन, खानदान और शराफ़त की बाक़ायदा तसदीक़ की। और कुर्सी पास खिसकाते हुए बोला, "कोतवाल

साहब ! इस केस की असलियत जरा नाजुक है···"

"मुझे मालूम है।" कोतवाल ने बड़ी लापरवाही से कहा, "इस उम्मेदसिंह कमबख़्त की ग़लती तो सिर्फ इतनी थी कि यह आटेवाले के लड़के को रसगुल्ले खिलाने के लिए गूंगे हलवाई की कोठरी के अन्दर ले गया। किया-धरा तो इसने कुछ भी नहीं !"

जयप्रकाश को खुशी हुई कि पुलिस मामले की तह तक पहुँच चुकी है। बोला, "जिस वक्त हम लोग वहाँ पहुँचे तो आटेवाले सेठ का लड़का गोपाल, गूंगे की गोद में बैठा हुआ रसगुल्ले खा रहा था। गूंगे को कुछ कहना-सुनना बेकार था, इसलिए हम लोग लड़के को लेकर चले आये। अब आप ही बताइए···"

"मुझे मालूम है।" सर्वज्ञ की भाँति गर्दन हिलाते हुए कोतवाल उसी तरह बोला।

"मगर मेरी समझ में यह बात नहीं आयी, कोतवाल साहब, कि सारी बातें मालूम होने के बावजूद आपने उम्मेदसिंह को हिरासत में क्यों लिया ?"

"अमाँ यार, कहाँ की हिरासत ? उसे तो शर्बत पिलाकर मैंने कभी का भेज दिया। वह तो सच पूछो मास्टर साहब, इन तुम्हारे बनियों के आँसू भी पोंछने पड़ते हैं; वरना साले शिकायत करते हैं। फिर आपके प्रिंसिपल उत्तमचन्द तक ने भी कहा कि यह उम्मेदसिंह बदमाश लड़का है। और जानते हैं ? रिपोर्ट में लिखाया गया था कि लड़के को कोठरी में क़त्ल करना चाहते थे।"

जयप्रकाश ने आवेश सँभालते हुए कहा, "हमारे उत्तमचन्दजी चीजों को समझने की कोशिश नहीं करते। उन्हें जैसे कोई कह दे···! वरना भला उम्मेदसिंह और क़त्ल ?"

"हाँ, वही तो। मेरे खयाल से हुआ यह होगा कि लाला हरीचन्द के पास आटेवाला गया होगा। और गूंगे को 'सेव' करने के लिए उन्होंने उम्मेदसिंह के खिलाफ़ रिपोर्ट लिखा दी। और उत्तमचन्द को कहना पड़ा कि उम्मेदसिंह छँटा हुआ बदमाश है।" और अपनी छोटी-छोटी आँखों को फिराते हुए वह एक सिगरेट निकालकर जयप्रकाश की ओर बढ़ाते हुए

बोला, "आप बेफ़िक्र रहें, मैंने फ़ाइनल रिपोर्ट लगा दी है। मामला खत्म।"

"शुक्रिया।" जयप्रकाश ने अपनी बीड़ी निकाली।

तभी सिपाही ने आकर बताया, "लाला हरीचन्द और गनेशीलाल सोहन से मिल चुके हैं और वे अब हुजुर से मिलना चाहते हैं।"

"आइए, मास्टर साहब!" जयप्रकाश को साथ लेकर मुस्कराते हुए कोतवाल अपनी बैठक से उठा और दफ्तर की ओर चल दिया।

लाला हरीचन्द और गनेशीलाल, दफ्तर में सोहन के पास पड़े स्टूलों पर बैठे थे। मुंशी अपना रजिस्टर सँभाले, कुछ फ़ासले पर बैठा बिल्ली-जैसी आँखों से इन तीनों को घूर रहा था और पहरे का सिपाही संगीन ताने मुस्तैदी से बाहर खड़ा था। वातावरण में अनुशासनपूर्ण खमोशी थी।

कोतवाल उन्हें देख, खुशी से चिल्लाकर बोला, "कौन···लालाजी?" और फिर मुंशी और पहरेवाले सिपाही दोनों को डाँटते हुए गरजा, "अबे, कम-से-कम यह तो देख लिया करो कि कौन आया है! चलो, मूढ़े लाकर रखो।" और वह गनेशीलाल और लाला हरीचन्द दोनों का हाथ पकड़-कर बड़े आग्रह और स्नेह से उन्हें बाहर बरामदे में ले आया जहाँ चार मूढ़े लगा दिये गये थे।

गनेशीलाल का मुंह उतरा हुआ था। वह कुछ बोलने के मूड में नहीं थे। बात लाला हरीचन्द को ही शुरू करनी थी। मगर उनसे पहले ही कोतवाल ने कहना शुरू किया, "देख लीजिए लालाजी, क़ानून कैसा बेवफ़ा होता है। ऐसा शिकंजे में कसता है कि न अपना देखे, न पराया। अब यही लो कि गनेशीलालजी से और आपसे मेरे ज़ाती ताल्लुक़ात हैं। उधर मास्टर जयप्रकाशजी मेरे लड़के के उस्ताद हैं, ये भी घण्टे-भर से मुझे इस बात के लिए कोस रहे हैं कि मैने यह क्या किया? मगर मैं बुरी तरह क़ानून की गिरफ़्त में हूँ। मामले को खत्म करता हूँ तो मौत, और नहीं करता तो रुसवाई। समझ में नहीं आता, क्या करूँ? उधर जाटों ने अलग शोर मचा रखा है। सुना है उसके जर्ब शदीद आयी है।"

अब लाला हरीचन्द का बोलना निश्चित था। वह पहले कोतवाल

की खुशामद करेंगे, फिर कुछ लेने-देने की बातचीत होगी, और यह सब अकेले में ही शोभा देता है, यही सोचकर जयप्रकाश उठ खड़ा हुआ, बोला, "कुछ हो कोतवाल साहब, सोहनलालजी को छूटना ही चाहिए। मैं जाते-जाते आपसे फिर अपील करता हूँ।" और तीनों से विदा लेकर वह कोतवाली से लौट आया। भीतर-ही-भीतर वह खुश था कि उसका एक्टिंग सफल रहा।

हॉस्टल का वातावरण तनावपूर्ण था। उम्मेदसिंह के छूटकर आते ही हॉस्टल में खलबली मच गयी थी। गाँवों के तीस-पैंतीस लड़के सहन में खाट बिछाकर आ बैठे थे और उत्तमचन्द को पीटने की योजना बनायी जाने लगी थी।

रामपूजन ने सलाह दी कि इस मामले में जयप्रकाशजी की राय लेना जरूरी है। और लड़कों ने उसका समर्थन किया। सत्यव्रत लड़कों के विद्रोह को दबाने में अपने को असमर्थ और अक्षम अनुभव करते हुए कोठरी में जा पड़ा था। उसकी समझ में गाँव और शहर का यह वर्गीकरण बिल्कुल नहीं आ रहा था जिससे उत्तेजित होकर छात्र उत्तमचन्द के विरुद्ध ज़हर उगल रहे थे।

दरअसल लड़कों को मालूम हो गया था कि प्रिंसिपल उत्तमचन्द ने उम्मेदसिंह के खिलाफ़ बयान दिये हैं। सब यही सोच रहे थे कि रसगुल्लों का प्रलोभन देकर कोठरी में ले जाने का मक़सद अगर उसका क़त्ल करना था तो भला उम्मेद वहाँ से चला क्यों आता? और क्यों आकर खुद ही लड़कों में यह बात कहता कि गोपाल गूंगे की कोठरी में रसगुल्ले खा रहा है? और क्यों यह बात प्रिंसिपल और अध्यापकों तक पहुँचती? क़त्ल कहीं शोर मचाकर किया जाता है!

और फिर गूंगे का क्या बिगड़ा? अध्यापकों ने अपनी आँखों से उसे गोपाल को गोदी में बिठाकर चूमते हुए देखा। मगर दोष सारा मढ़ दिया गया उम्मेदसिर के सिर! ज़रूर उत्तमचन्द की बदमाशी है। सब लड़के इसी मत के थे कि उत्तमचन्द को सज़ा जरूर मिलनी चाहिए।

दरअसल जिस वक़्त जयप्रकाश ने हॉस्टल में क़दम रखा, उस वक़्त

उसकी वहाँ सख्त ज़रूरत थी। लड़के उसे देखते ही उठकर खड़े हो गये। वे इन्तज़ार कर रहे थे कि मास्टर साहब क्या ख़बर लाते हैं।

सत्यव्रत भी अपनी कोठरी से निकल आया।

"उम्मेदसिंह कहाँ है?" जयप्रकाश ने तीखी आवाज़ में पूछा और डाँटकर कहा, "तुम लोगों ने क्या पंचायत जोड़ रखी है? चलो अपने-अपने कमरे में। खबरदार जो एक भी लड़का बाहर दिखा!"

सारे लड़के तुरन्त इधर-उधर हो गये और उम्मेदसिंह सामने आ गया। जयप्रकाश ने रामपूजन को भी बुला लिया और सत्यव्रत को लिये हुए वापस उसकी कोठरी में तख्त पर जाकर बैठ गया, और बड़े इत्मीनान से सबको सोहनवाला क़िस्सा सुनाने लगा।

"पुलिस किसी की नहीं होती," एक बीड़ी सुलगाकर उसने सत्यव्रत से कहा और फिर दरवाज़े में खड़े रामपूजन की ओर इशारा करके बोला, "ज़रा रामदत्त को पहले बुलाओ।"

जयप्रकाश से रामदत्त का नाम सुनते ही सत्यव्रत को रात की घटना याद हो आयी। सुना, रात उसने रामलीला में स्टेज पर पैसे फेंककर कोई गन्दा-सा शेर पढ़ा था। सुबह होते ही पुलिस उम्मेदसिंह को थाने बुला ले गयी थी। इसी चिन्ता के कारण सत्यव्रत को रामदत्त का ध्यान नहीं आया था। अब रामदत्त को सामने पाकर उसका मन हुआ कि इसे कठोर-से-कठोर दण्ड दिया जाये।

सत्यव्रत मन में दण्ड ही तय कर रहा था कि तब तक जयप्रकाश ने तड़ातड़ पाँच-सात झापड़ रामदत्त के मुँह पर उड़ा दिये और गरजकर कहा, "आइन्दा ऐसी हरकत की तो खाल खींच लूँगा। समझे? पैदायश के पोतड़े अभी सूखे नहीं और इश्क़ फ़रमाने लगे!"

रामपूजन और उम्मेदसिंह दरवाज़े में खड़े हुए पाँव के अँगूठे से ज़मीन की मिट्टी खुरचने लगे। उनके हृदय आशंका से धड़क रहे थे। यद्यपि मास्टर जयप्रकाश सिद्धान्ततः बड़े लड़कों पर हाथ नहीं उठाते, फिर भी...!

फिर उम्मेदसिंह की बारी आयी। जयप्रकाश का आसमान को चूमता हुआ स्वर धरती से आ लगा। वाणी आर्द्र हो गयी, बोला, "तुमने,

उम्मेदसिंह, वह काम किया है कि आज सारा शहर तुम्हारे और गाँव के के नाम पर थू-थू कर रहा है।"

पहले उम्मेदसिंह ने सोचा था कि मेरी ग़लती सिर्फ़ इतनी है कि मैंने रोजाना रसगुल्लों के लिए ललचानेवाले उस लड़के का सम्पर्क गूँगे से करा दिया। लड़का साला खुद बदमाश हो तो कोई क्या करे ? मगर अब उसके मुँह से बोल नहीं निकला और शर्म के मारे उसकी आँखों में पानी छलक आया।

उत्तर दिया रामपूजन ने। बोला, "वह सब ग़लत बात है, मास्टर साहब ! यह तो उन्होंने उम्मेदसिंह से कृषि-योजना का बदला निकाला है।"

"क्या ?" जयप्रकाश ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं सच कह रहा हूँ, मास्टर साहब ! आप गुलशेर, उम्नेद, ताहर सिंह और ज्ञान—किसी से पूछ लें। कल मुझे और उम्मेदसिंह को बुलाया था प्रिंसिपल साहब ने। कह रहे थे—'भई रामपूजन, अब तो बारिश भी हो गयी। ज़मीन में हल निकलने चाहिए।' "

"हूँ !" जयप्रकाश ने कुछ सोचते हुए आगे बोलने का इशारा किया।

"फिर उन्होंने श्रम-सेवकों की लिस्ट मेरे और उम्मेद के हाथ में पकड़ा दी और कहने लगे कि इस बार ज़रा मेहनत हो जाये तो ज़मीन सोना उगलेगी।"

जयप्रकाश को लगा कि सचमुच ज़मीन सोना उगल रही है। विद्यार्थी और सारे अध्यापक खड़े हुए हसरतभरी आँखों से उसे देख रहे हैं और वह सोना गाड़ियों में लद-लदकर प्रेसीडेण्ट और सेक्रेटरी साहब के घर जा रहा है। ठहरकर बोला, "तुमने क्या जवाब दिया ?"

"हमने कह दिया कि इस साल हमें पढ़ना है और पास होना है। हम कृषि-योजना के चक्कर में नहीं पड़ेंगे। इस पर प्रिंसिपल साहब भड़क उठे और फिर आपकी तरफ़ इशारा करके कहने लगे, मैं जानता हूँ तुम किसके सिखाये हुए बोल रहे हो। तब उम्मेद ने कहा कि वह सिखाते तो यह आपकी योजना एक दिन भी न चलती, और एक भी गाँव का लड़का इस कॉलेज में दिखायी न देता। और साहब, फिर हम उनके कृषि-योजना के कागज़ वहीं फेंककर चले आये।"

सत्यव्रत चुपचाप कौतूहल और दिलचस्पी से सारी बातें सुन रहा था। जयप्रकाश को सहसा उस दिन की याद ताज़ा हो आयी जिस दिन कॉलेज खुला था।

राजेश्वर, सत्यव्रत और पाठक तीनों की नियुक्ति की खबर पूरे कॉलेज में फैल गयी थी। विद्यार्थी उन्हें देखने-परखने के लिए बहाने बना-बनाकर उनके आस-पास मँडरा रहे थे। रामपूजन को जब मालूम हुआ कि राजेश्वर चाचा भी कॉलेज में आ गये हैं तो उनसे मिलने के लिए उन्हें ढूंढता हुआ वह उसी नींबू के पेड़ के नीचे आ पहुंचा था।

राजेश्वर ने चाय का प्याला खत्म करके नीचे रखा ही था कि रामपूजन दिखायी दिया। फौरन चाय की स्फूर्ति क्रोध के आवेग में बदल गयी और उसने तल्खी से पूछा, "क्यों भई, तू यहाँ पढ़ने के लिए आया है कि हल जोतने? अगर खेती का ही शौक है तो घर की ज़मीन में क्या आग लग गयी जो बनियों की बेगार करता फिरता है?"

न चाचा को प्रणाम, न ख़ैर-ख़ैराफ़ियत का हाल—रामपूजन कुछ भी न कह-सुन सका। और आकस्मिक प्रहार और रिश्ते के लिहाज़ के मारे उसका बोल भी नहीं निकला।

जयप्रकाश ने महसूस किया कि क्रोध के प्रदर्शन का न यह कोई अवसर है, न स्थान। अतः रामपूजन को डाँटने का कार्य खुद सँभालते हुए उसने धीरे से कहा, "अपनी-अपनी क़िस्मत है ठाकुर, अगर इनकी क़िस्मत में बैलों की पूँछ मरोड़ना ही लिखा है तो हम क्या करें?"

चारों तरफ़ लड़के और अध्यापक घूम रहे थे और जयप्रकाश को डर था कि यहाँ कोई तमाशा न खड़ा हो जाये। इसलिए राजेश्वर को बोलने का मौक़ा न देकर, स्वर को भरसक संयत करते हुए धीरे-धीरे वह खुद ही बोलता गया, "क्यों भई, तुममें से किसी की परीक्षा में यह आया था क्या, कि जौ और मटर के अच्छे उत्पादन के लिए ज़मीन कैसे तैयार करनी चाहिए? या यह कि लाला हरीशचन्द के बैलों की जोड़ी एक बीघा जौ कितने दिनों में सफ़ाचट कर जाती है और गनेशीलाल के यहाँ पहाड़ी आलू खाया जाता है या देसी?"

स्पष्टतः जयप्रकाश का इशारा इस ओर था कि जब कॉलिज में कृषि का विषय ही नहीं है तो गाँव के लड़के कृषि-योजना में अपना वक़्त क्यों बरबाद करते हैं ? यही बात उन्होंने एक बार पिछले साल भी कही थी।

रामपूजन अपराधी के भाव से गर्दन झुकाये खड़ा रहा। जयप्रकाश के प्रश्न हास्यास्पद होने के बावजूद इतने ठोस थे कि रामपूजन से कोई उत्तर देते न बन पड़ा। अलबत्ता वह यह ज़रूर सोचने लगा कि अगर मास्टर जयप्रकाश ने सख़्ती से एक बार भी और मना किया होता तो क्या गाँव का कोई लड़का कृषि-योजना में भाग ले सकता था—उनकी मरज़ी के ख़िलाफ़ !

राजेश्वर ने फिर डाँट पिलायी, "अब बोलता क्यों नहीं, क्यों फेल हो गया ?"

रामपूजन को विवश होकर बोलना पड़ा। हकलाते हुए जयप्रकाश की ओर इशारा करके उसने कहा, "अगर मैं मास्टर साहब की बात मानकर कृषि-योजना की बजाय पढ़ने-लिखने में ध्यान लगाता तो फेल नहीं हो सकता था। मगर मास्टर उत्तमचन्दजी ने···"

"उत्तमचन्द की···!" दाँत किटकिटाते हुए राजेश्वर ने मुँह में आयी गाली अधूरी छोड़ दी और फिर आवाज़ में रोबीला-सा अन्दाज़ लाते हुए उसने पूछा, "अच्छा, इस साल क्या इरादा है ? कृषि-योजना चलाना चाहते हो या पास होना ?"

"जैसी आप आज्ञा देंगे···" रामपूजन ने दोनों की ओर बारी-बारी से देखते हुए उत्तर दिया। और उसके मुँह पर एक अजीब-सा दर्द उभर आया।

जयप्रकाश ने देखा, बेबसी का वही दर्द उन दोनों के चेहरों पर आज फिर उभर आया है। अतः फिर वर्तमान में आते हुए बोला, "तो तुम्हारा पक्का निश्चय है कि तुम दोनों कृषि-योजना में कार्य नहीं करोगे ?"

"हम दोनों ही नहीं, गाँव का कोई भी लड़का नहीं करेगा, मास्टर साहब !" उम्मेदसिंह ने आवेश में कहा, "और मास्टर साहब, अगर आप इजाज़त दें तो इस उत्तमचन्द की थोड़ी-सी···"

सत्यव्रत को एक विद्यार्थी का अध्यापक के सम्बन्ध में ऐसे बेहूदे ढंग से बात करना बहुत अखरा। और सबसे ज़्यादा उसे अखरा कृषि-योजना का विरोध। मगर उसने हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

जल्दी से जयप्रकाश ही ने कहा, "नहीं, नहीं, ग़लत बात है। ऐसी बात सोची तो मुझसे बुरा कोई न होगा!" और सत्यव्रत की विह्वलता समझकर उसका कन्धा दबाते हुए मुस्करा दिया।

"मगर वह आपके बारे में अंटशंट बकवास करता फिरता है। उसने पवन बाबू के ज़रिये दो-तीन लड़कों को आपके खिलाफ़ दरखास्त देने के लिए भी उकसाया था। वो तो..."

जयप्रकाश ने रामपूजन की बात बीच में ही काट दी, "मुझे सब मालूम है। लेकिन मैं उनसे अपने-आप निपटता रहूँगा। तुम बीच में क्यों पड़ते हो?"

"लेकिन उम्मेदसिंह का बदला तो, मास्टर साहब, हम लेंगे!" राम-पूजन के स्वर में आग्रह आ गया था।

"ठीक है। बदला लो, मगर उससे लो, जिसने यह सब कराया है। उत्तमचन्द तो प्रेसीडेण्ट और सेक्रेटरी साहब के हाथों की कठपुतली है। उसने क्या किया? सज़ा किसे देनी है और कैसे देनी है—मैं बताऊँगा। मगर इस गोपाल और गूंगेवाले केस में सरासर तुम्हारी गलती है और आइन्दा मैंने ऐसी बात सुनी तो मुझसे बुरा कोई न होगा।"

सत्यव्रत जयप्रकाश की तरफ़ देखता रह गया। अजीब दुश्मनी है इसकी उत्तमचन्द से। हमेशा उसकी बुराई और हमेशा उसका बचाव करता है।

सत्यव्रत को याद आया कि उस दिन टीचर्स-रूम में जब जयप्रकाश से, लेट आने के कारण, प्रिंसिपल उत्तमचन्द ने जवाब तलब किया था, और राजेश्वर ने कहा था, "आपको फँसाने की कोशिश कर रहा है उत्तम-चन्द," तब भी जयप्रकाश ने यही कहा था, "मुझे फँसाने की कोशिश नहीं कर रहा, बल्कि खुद जिस जाल में फँसा हुआ है उससे निकलने की कोशिश कर रहा है।"

जयप्रकाश की हर चीज़ की अपनी व्याख्या है। उसका खयाल है कि

उत्तमचन्द जिस स्थिति में है उससे बच निकलने के लिए ही वह विवेक और अविवेकपूर्ण हर तरह के हथकण्डे काम में लाता है। वह प्रिंसिपल बनना चाहता है, और इसीलिए मैनेजमेण्ट की कृपा और दया प्राप्त करना चाहता है। साथ ही उसे हमेशा यह भय भी बना रहता है कि कहीं उसका कोई आलोचक उसकी बुराई करके सफलता के मार्ग में रोड़ा न अटका दे। इसलिए वह विरोधियों और आलोचकों का मुँह बन्द रखना चाहता है। उन्हें अपनी ही चिन्ताओं में उलझाये रखना चाहता है। तो, यह अपने ही ऊपर पड़े जाल से निकलने की कोशिश नहीं तो और क्या है?

जयप्रकाश कहा करता है, "सवाल यह है कि उत्तमचन्द के, मेरे या हम सबके ऊपर यह जाल किसने फेंका है! इसलिए हमारा विरोध तो उससे है, न कि उत्तमचन्द से।"

क्षण-भर के लिए लगा, सत्यव्रत कुछ बोल न सकेगा।

रामपूजन और उम्मेद अब भी दरवाजे में खड़े थे। जयप्रकाश फिर बोला, "देखो, मुमकिन है इस कृषि-योजना के बारे में लाला हरीचन्दजी भी तुम्हें बुलायें। उनसे तुम बहस मत करना। कह देना, साहब, घरवाले मना करते हैं। बस। और अब तुम बेफ़िक्री से जाओ। हाँ, उम्मेदसिंह का मामला खत्म हो गया है। मगर इस बात को लेकर हुल्लड़ मचाने या पंचायत जोड़ने की क़तई ज़रूरत नहीं है। समझे···"

और जयप्रकाश हाथ-पाँव फैलाकर चटाई पर लेट गया। ठण्डी नम जमीन और किवाड़ों की दरारों से छनकर आती हुई बरसाती हवा की मस्त लहरें। एक मिनट के लिए उसका ध्यान अपने चारों ओर गया।

सत्यव्रत की कोठरी में तीन चित्र टँगे थे। एक स्वामी दयानन्द सरस्वती का, दूसरा मदनमोहन मालवीय का और तीसरा बापू का। थोड़ी-सी किताबों, बर्तनों और चन्द कपड़ों के अलावा उसके कमरे में खास कुछ भी न दिखा।

जयप्रकाश के सिरहाने की तरफ़ बैठा हुआ सत्यव्रत चुप था। वह अभी-अभी जयप्रकाश और छात्रों के बीच हुई बातचीत पर विचार कर रहा था। यह ठीक है कि छात्र जयप्रकाश से आत्मीयता अनुभव करते हैं और वह खुद भी करता है, मगर ऐसी भी क्या आत्मीयता कि उत्तमचन्द-

जी को अपमानित करने का परामर्श लिया जाये ! जयप्रकाश पहले अध्यापक हैं। क्या अध्यापकों के सम्मान की रक्षा करना उनका पहला कर्त्तव्य नहीं है ? फिर बिना किसी कारण के कृषि-योजना-जैसी महत्त्वपूर्ण योजना को पंगु बना देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है !

और इसीलिए उसे जयप्रकाश से कहना पड़ा, "जय भाई, आप लोगों के आपसी मतभेद कॉलेज के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। और मुझे लगता है कि यह सब ठीक नहीं हो रहा।"

जयप्रकाश ने उत्तर नहीं दिया। वह इधर बहुत बदल गया है। अक्सर बातें करते-करते खो जाता है। सोचता है तो सोचता रह जाता है। और उसके बोलने में भी उतना संयम, उतनी सहनशीलता और उतना अंकुश नहीं रहा। शायद थोड़ा राजेश्वर की सोहबत का असर पड़ा है और थोड़ा उन कठिन परिस्थितियों का, जिनमें घिरकर निरन्तर डरते रहने पर आदमी का डर खत्म हो जाता है और उसके पास सिवाय साहस के और कुछ नहीं बचता।

जयप्रकाश को आश्चर्य ही इस बात का था कि अब तक कृषि-योजना की बात क्यों नहीं उठी ! सितम्बर खत्म हो रहा है और खेतों की जुताई पिछड़ी जा रही है।

अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर सत्यव्रत फिर बोला, "आपका कमेटी से द्वेष हो सकता है मगर कृषि-योजना से क्या द्वेष ? वह तो हमारी संस्था के हित के लिए..."

"कौन कहता है !" बहुत अप्रत्याशित ढंग से जयप्रकाश ने कहा और उसके मुँह पर अजीब विकृतिपूर्ण तनाव आ गया।

और फिर जैसे शून्य से बातें करता हुआ बोला, "सब अपना-अपना पेट भरने की सोचते हैं। मैं पूछता हूँ, क्या फ़ायदा हुआ पिछले साल इस योजना से ? और अगर इससे फ़ायदा उठाना है तो क्यों राजेश्वर के सुझाव नहीं मान लिये गये ? बस, गाँव के सीधे-सादे लड़कों को बैलों की तरह कहीं भी जोत दो। आप बताइए कि वे यहाँ पढ़ने के लिए आये हैं या खेती करने के लिए...!"

सत्यव्रत किसी से उत्तेजित होकर या उत्तेजना दिलाकर बात करने के

पक्ष में नहीं है। वह खामोश हो गया। जयप्रकाश शान्त हो ले, तब बातें होंगी।

कोठरी में फिर खामोशी छा गयी। तख्त पर पड़ी चटाई पर लेटा हुआ जयप्रकाश शून्य में उँगलियों से जाने क्या-क्या लिखता रहा। उसके पाँव की उँगलियाँ बार-बार अकड़कर ऊपर-नीचे उठती रहीं और उसकी अधखुली आँखें कहीं बहुत दूर के सपनों में खोयी रहीं।

सत्यव्रत एक बात और पूछना चाहता था कि उम्मेदसिंह के मामले में जयप्रकाश ने मैनेजमेण्ट के लिए कौन-सा दण्ड निर्धारित किया है। वह कहता है तो जरूर ही किया होगा। उसने उसको राजेश्वर से कहते सुना था कि कृषि-योजना के इन खेतों को जब तक खेलों के मैदान में न बदल दूँगा, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। और उसने सचमुच वही स्थिति उत्पन्न कर दी। अब इन खेतों का, खेल के मैदान बनाने के अतिरिक्त और क्या उपयोग हो सकता है?

मगर एक बात सत्यव्रत की समझ में नहीं आती। लड़के जयप्रकाश की इतनी इज्जत क्यों करते हैं? वे लड़के जिन्हें पंचायत जोड़ने के लिए सत्यव्रत आज दिन-भर डाँटता रहा और जिन्होंने उसकी बातें इस कान सुनकर उस कान से निकाल दीं, जयप्रकाश के सामने क्यों भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाकर भाग गये!

"आपने देखा, मास्टर साहब!" जयप्रकाश ने सत्यव्रत से कहा, "किसका दोष किसके सिर पर मढ़ दिया गया? अगर इनमें साहस है तो दें गूंगे को सजा! उसका ठेका खत्म कर दें।"

"मगर गूंगे ने क्या किया?" सत्यव्रत बोला।

"और उम्मेदसिंह ने क्या किया?" जयप्रकाश ने पूछा।

सत्यव्रत अभी तक नहीं समझ पाया था कि मामला क्या है। उसे बस इतना मालूम हुआ कि गोपाल को मारने के अपराध में उम्मेदसिंह को गिरफ्तार किया गया था। अतः बोला, "सच पूछिए तो मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

"तो आपका न समझना ही अच्छा है। कोई बहुत सुखद बात है भी नहीं।" जयप्रकाश ने झुँझलाकर कहा और उठकर खड़ा हो गया।

बजती हुई साँकलें

सत्यव्रत ने हॉस्टल में एक वातावरण बनाने का प्रयत्न किया है—इसे सब स्वीकार करते हैं। अन्दर जो बड़ा-सा आँगन है उसके चारों ओर फूल उगाये गये हैं और बीच में हवन-कुण्ड बनवाया गया है। जिस दिन वर्षा नहीं होती, लड़के सुबह-सुबह चार बजे उठकर यहीं हवन-पूजा करते हैं।

कम-से-कम बीस लड़कों को यज्ञ के पूरे श्लोक कण्ठस्थ हो गये हैं। सत्यव्रत ने एक रजिस्टर खोला है जिसमें सुबह की प्रार्थना की हाज़िरी ली जाती है। वह स्वयं हर कमरे में जा-जाकर लड़कों को उठाता और स्नान के लिए भेजता है। फिर भी कुछ लड़के टाल जाते हैं। कुछ तख़्त के नीचे घुस जाते हैं और कुछ दूसरे नहाकर लौटे हुए लड़कों के तौलिये और घुटन्ने लेकर अपने नहा लेने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

एक महीने में छात्रों ने काफ़ी प्रगति की है। कम-से-कम गायत्री-मन्त्र, शान्ति-पाठ और आर्य-समाज के सारे नियम तो हर लड़के को कण्ठस्थ हैं।

मगर जब से रामलीला शुरू हुई है, हॉस्टल की दैनिक चर्या में भारी व्याघात होने लगा है। लड़के रात को रामलीला देखने जाते हैं और दो-तीन बजे से पहले वापस नहीं लौटते। सत्यव्रत के लाख प्रयत्न करने के बावजूद सुबह की यज्ञ-प्रार्थना में आजकल एक-चौथाई लड़के आ पाते हैं और सुबह चार बजे उठने की बजाय उठने में वे आठ और कभी-कभी नौ भी बजा देते हैं।

रातभर गाने होते हैं—

'हुआ करेजवा के पार, तीर तोरे नयनों का...'
'ऊँची-नीची दुनिया की दीवारें सैंया तोड़के...'

सत्यव्रत को रामलीला और इन गानों में कोई संगति नहीं दीखती, इसीलिए उसने एक दिन लड़कों को डाँटा, फिर समझाया भी। मगर कुछ नतीजा निकले इससे पहले ही चौधरी नत्थूसिंह ने सब प्रयत्न बेकार कर दिये, "भगवान् की लीला देखेंगे तो इन्हें कुछ अच्छी बातें हासिल होंगी, आज्ञाकारी बनेंगे और माता-पिता तथा गुरुओं का आदर करना सीखेंगे।

इन्हें रोकना नहीं चाहिए। मैं तो विमला तक को भेजता हूँ।" उन्होंने अपना मत दिया और बात खत्म हो गयी।

तभी बराबर के मकान से आवाज़ आती रहती है—उसने सोचा—और उसे कल का सुना गीत याद हो आया—

'तोरे नयनों ने, तोरे नयनों ने चोरी किया
मेरा छोटा-सा जिया
परदेसिया !
ओ तोरे नयनों ने···'

सत्यव्रत पहचानता है कि वह विमला का ही स्वर था। उसका कण्ठ बहुत मुखर हो उठा है इन दिनों। जब से हॉस्टल खुला है बराबर में, और जब से वह इसका सुपरिण्टेण्डेण्ट हुआ है, उसी के कुछ दिनों बाद से देख रहा है कि उसमें रोज़ाना परिवर्तन हो रहे हैं। उसने सोचा कि चौधरी साहब से इतना तो कहा जा सकता है कि विमला का रोज़-रोज़ रामलीला देखने जाना अच्छा नहीं। पर फिर सोचा कि चौधरी साहब जानें और विमला जाने ! उसका तो इतना ही सम्बन्ध है कि वह उसे पढ़ाता है।

"नमस्कार, मास्टर साहब !" राजेश्वर ने कमरे में घुसते हुए कहा, "बैठूंगा नहीं ! लाला हरीचन्दजी ने रामलीला देखने का न्योता भिजवाया है। अभी मण्डी में मिल गये थे। कहा है आप ज़रूर आयें। उनका पोता आज राम की भूमिका में उतर रहा है। बस सूचना देने-भर के लिए आया था। शाम को वहीं मिलूंगा।"

"और असली राम का क्या हुआ ?" उसने अचानक लौटते हुए राजेश्वर से प्रश्न किया।

"उसे अच्छे बदमाश भगा ले गया है। शंकर भगवान् और गुरु विश्वामित्र की भूमिका में उतरनेवाला एक्टर भी भाग गया है। उसकी जगह बालिस्टर साहब का लड़का इन्दल शंकर भगवान का रोल करेगा। अच्छा, आना ज़रूर !"

राजेश्वर चला गया। वह उसे बैठने को भी न कह पाया। तीसरे पहर के ढलते हुए साये हॉस्टल की मुंडेर से उतरकर चौधरी नत्थूसिंह के चबूतरे पर आ बैठे थे।

सत्यव्रत को मुकद्दम चाचा की बात याद आ गयी। जाने किसने सुनायी थी! और उसका मन गहरी घृणा से भर गया। छी:! राम का इतना महान चरित्र और उसकी ऐसी भोंडी अनुकृति!

तभी वह इस विचार में खो गया कि वह शाम को जाये या न जाये! लाला हरीचन्द का निमन्त्रण है। और उसी किंकर्त्तव्य की-सी अवस्था में वह पत्र आदि लिखने बैठ गया, फिर डायरी भी भरी किन्तु यह निश्चय फिर भी नहीं हो पाया कि उसे जाना है या नहीं।

धीरे-धीरे साँझ झुक आयी। सामने की सड़क से खड़-खड़ करते हुए इक्के-ताँगे गुज़रने लगे। कभी-कभी चूं-चराक करती, गाँव को लौटती हुई कोई बैलगाड़ी भी निकल जाती थी। ऊपर आकाश में पंछियों के झुण्ड चीखते-चिल्लाते अपने नीड़ों में बसेरा करने के लिए लौट रहे थे। जंगल से वापस आती हुई गायों और बछड़ों के गले की घण्टियाँ दूर से बजती हुई क्रमशः नज़दीक आती जा रही थीं। सड़क पर लोगों का आवागमन अचानक बढ़ गया था और एक अजीब-सी भन्नाहट समूचे वातावरण में व्याप्त थी।

सत्यव्रत ने दरवाज़े से आसमान की ओर देखा। पश्चिमी आकाश का रंग सुरमई से हल्का लाल होकर काला होता जा रहा था। अचानक उसे अपने गाँव की याद हो आयी। नागल जानेवाले रास्ते पर नन्दूवाले तालाब के किनारे खड़े होकर जब वह शाम के आकाश को निहारता तो ऐसा लगता था मानो किन्हीं अदृश्य फ़ौलादी हाथों ने सूरज के बहुत बड़े फूल को कसकर दबा रखा है और उसका रंग और रस बह-बहकर दिशाओं के आँचल में बेतरतीबी से बिखर रहा है। तालाब के पानी, काँसों के झुरमुटों और खेतों में खड़ी फ़सलों पर गिरनेवाली लाल-लाल हल्की-हल्की किरणें मानो मधु की बूंदें हैं और चायँ-चायँ करती हुई चिड़ियाँ मानो इस दृश्य की निर्ममता के प्रति विरोध प्रकट कर रही हैं।

गाँव से सम्बन्धित और भी अनेक बातें उसके स्मृति-पटल पर आती चली गयीं। कितनी ही देर तक वह अपने घर, माँ-बहन और गाय-बैलों के बारे में सोचता हुआ उदास-सा बैठा रहा लेकिन अचानक उसका ध्यान तब टूटा जब हॉस्टल के सारे लड़के एक साथ शोर मचाते हुए, बराबरवाले

फाटक से बाहर निकले। सत्यव्रत समझ गया कि ये लोग रामलीला देखने जा रहे हैं।

सड़क पर अँधेरा छा गया था और चलते-फिरते आदमी महज़ परछाइयों की तरह लग रहे थे। दूर चौराहेवाले म्युनिसिपल्टी के लैम्प में बत्ती जल उठी थी, मगर हॉस्टल के सामने का लैम्पपोस्ट सूना-सा खड़ा था। शायद किसी ने उसका लैम्प निकाल लिया था।

सत्यव्रत ने अपनी लालटेन की चिमनी साफ़ करके जलाने की बात सोची ही थी कि तभी बराबर के चबूतरे से चौधरी नत्थूसिंह की आवाज़ आयी, "मास्टर साहब ! मास्टर साहब !"

सत्यव्रत चबूतरे पर आ गया।

"डॉक्टर साहब गाँव गये हुए हैं, और मुझे इसी गाड़ी से बिजनौर जाना पड़ रहा है।" चौधरी साहब ने अपने डॉक्टर लड़के का और अपना कार्यक्रम बताते हुए कहा। फिर जैसे जाने की सफ़ाई देते हुए बोले, "गाड़ी आज दो घण्टे लेट है, शायद मिल जायेगी। हाँ, विमला अकेली रामलीला देखने गयी है। आप ज़रा लौटते में उसे अपने साथ लेते आइएगा। बहुत रात हो जाती है। मैंने उससे कह दिया है···"

"जी, आप निश्चिन्त रहें !" सत्यव्रत ने सहज तत्परता से कहा और चौधरी साहब एक हाथ में झोला लटकाये, दूसरे हाथ से अपना बन्द गले का कोट और गोल टोपी सँभालते हुए स्टेशन की ओर बढ़ गये।

लालटेन जलाकर सत्यव्रत तख़्त पर लेट रहा। सोचने लगा, कितनी सहजता से उसने चौधरी साहब को आश्वासन दे दिया। क्या उसका इरादा रामलीला देखने जाने का था ? वह तो राजेश्वर द्वारा दिये गये लालाजी तक के निमन्त्रण पर अभी तक कोई मत स्थिर न कर पाया था।

ज़मीन पर रखी लालटेन की धीमी-धीमी रोशनी, चटाई और कोने में दीवार से टिकी किताबों पर पड़ रही थी। पीछे प्रकाश का एक वृत्त सत्यव्रत के बायीं ओर लटके हाथ के नीचे बन गया था। कोई आठ-साढ़े आठ बजे होंगे। अलस भाव से सत्यव्रत ने अँगड़ाई ली और उठकर रामलीला जाने के लिए चप्पल पहनने लगा। चौधरी साहब से वायदा किया है—जाना तो पड़ेगा ही।

रामलीला नौ-साढ़े नौ बजे शुरू होती है। कभी-कभी दस भी बज जाते हैं। लेकिन आठ बजे से ही वहाँ जो भीड़ इकट्ठा होनी शुरू होती है, उसे देखकर जनता की श्रद्धा और रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। अपनी ही विचारधारा में खोया हुआ सत्यव्रत वहाँ तक चला तो गया, किन्तु वहाँ जाकर उसे ऐसा लगा जैसे वह किसी वर्जित स्थान पर आ पहुँचा हो। एक बड़ी-सी चहारदीवारी में पण्डाल लगा था जिसमें पहुँचने के दो ही रास्ते थे—एक उत्तर और दूसरा दक्षिण की ओर से। पण्डाल से बाहर खड़े हुए लोग ठेलों पर लगी चाय, पान और बीड़ी की दुकानों के इर्द-गिर्द मंडरा रहे थे। पाँवों से उखड़कर कच्ची जमीन की धूल ऊपर तक उठ आयी थी, जो साँस लेते हुए नाक में अजीब-सी गन्ध भरती हुई फेफड़ों तक पहुँच जाती थी। चारों ओर बीड़ी-सिगरेट का धुआँ था। सत्यव्रत की अन्दर जाने की हिम्मत न हुई।

तभी जाने किधर से आते हुए राजेश्वर ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया और लगभग अपने साथ घसीटते हुए कहा, "लौट रहे हैं? लीला नहीं देखेंगे क्या, मास्टर साहब!" और सकपकाये हुए रँगे-हाथों पकड़े गये अपराधी के-से भाव से सत्यव्रत राजेश्वर के पीछे-पीछे हो लिया।

पण्डाल आदमियों और औरतों से खचाखच भरा था। शामियाने के बाँसों पर आदर्श वाक्य और गैस की लालटेनें टँगी थीं। बच्चों की चिल्ल-पों और स्त्रियों की अर्थहीन ऊँची आवाजें, शोर का एक निश्चित स्तर बनाये थीं। आने-जाने का भीड़ में कोई रास्ता न था सिवाय उस एक किनारे के, जहाँ आठ-दस कुर्सियाँ और मूढ़े विद्यार्थियों ने मास्टरों के लिए ला रखे थे। वे दोनों वहाँ बैठ गये। जयप्रकाश भी वहाँ बैठा था। एक मूढ़ा सबसे आगे लाला हरीचन्द के लिए खाली छोड़ दिया गया था। पर्दा उठने में देर थी। मंच पर गैस के दो बड़े-बड़े हण्डे जल रहे थे। प्रकाश में पर्दे पर बनी आठ गोपियाँ और उनके बीचोबीच खड़े मुरली बजाते हुए कृष्ण नारियों के आकर्षण-केन्द्र बने थे। थोड़ी देर बाद नक़ली सिल्क की भड़कदार साड़ी पहने और कृत्रिम उरोज लगाये किशोर वय का एक लड़का विंग से निकलकर सामने आया और मटक-मटककर गाने लगा:

"सैयाँ ने अँगुली मरोड़ी रे,
राम कसम सरमा गयी मैं···"

उसके साथ ही फुन्देदार टोपी लगाये और मुँह पर सफ़ेद-काली धारियाँ बनाये हुए विदूषक भी दूसरे विंग से निकला और गीत को नाट्य-रूप दिया जाने लगा।

दर्शकों में उत्साह फैल गया और सबकी निगाहें मंच पर स्थिर हो गयीं। केवल सत्यव्रत बीड़ियों की दुर्गन्ध पर सोचता हुआ कहीं दूर खो गया। नाट्य चलता रहा। पर्दे उठते और गिरते रहे। लाला हरीचन्द आकर अपने मूढ़े पर बैठ गये। सभी की भाँति उसने भी उठकर उन्हें नमस्ते की किन्तु उसका ध्यान स्टेज पर केन्द्रित नहीं हो पाया। उसे अभी तक वातावरण में घुटन और नथुनों में एक दुर्गन्ध-सी महसूस हो रही थी।

तभी जोर से तालियाँ बज उठीं और शोर मच गया। बालिस्टर साहब का लड़का भगवान् शंकर का वेश बनाये, नंगे बदन, भभूत मले, रबड़ का साँप गले में डाले, मंच पर आ बैठा था। और लाला हरीचन्द का लड़का राजसी पोशाक में वहीं खड़ा मुस्करा रहा था। बालिस्टर साहब की बूढ़ी माँ सीधी स्टेज पर जा पहुँची थीं और भगवान् शंकर का हाथ पकड़कर चिल्ला रही थीं, "जलगये! इस सर्दी में नंगा बैट्ठा है, चल, तुझे मैं बताऊँगी! भला कोई है देखनेवाला इस हरीचन्द का? इनने अपने लौण्डे कू तो राजा बना दिया और तुझे उत्ते यहाँ नंगा करके बिठा दिया है। जैसे सबसे ज्याद्दा चन्दा इनने ही दिया हो। चल बेट्टे, घर चल!"

इस अप्रत्याशित नाटकपर जनता बेतहाशा हँस रही थी और भगवान् शंकर-रूपी उनका पोता इन्दल कैलास के वातावरण में ऐसा रमा था कि उसकी शोभा छोड़कर घर जाने-को तैयार नहीं हो रहा था।

सत्यव्रत ने स्त्रियों की भीड़ में देखा तो उसे विमला दिखायी दी। पण्डाल के बाँस से टिकी वह बराबर उसी की ओर देखे जा रही थी। इधर लाला हरीचन्द जयप्रकाश के कान में इस काण्ड के फूहड़पन की चर्चा कर रहे थे। जैसे-तैसे यह नाटक खत्म हुआ और शंकर भगवान् फिर अपनी पोजीशन में आ गये। यह देखने के लिए कि विमला किधर देख रही है,

सत्यव्रत ने एक बार और उधर दृष्टि डाली और फिर अपलक दृष्टि से मंच की ओर देखने लगा।

गाना हो रहा था : "जोगन बन जाऊँगी सैंया तोरे कारण···हो सैंया···"

विदूषक और वही पुराना लड़का मंच पर फिर आ गये थे। जनता-जनार्दन में फिर हास्य की लहरें उत्पन्न हो गयी थीं। विदूषक बार-बार बाँहें फैलाकर मीरा-वेशधारी उस लड़के की ओर दौड़ता था और लड़का उसकी पकड़ से निकल-निकल जाता था।

अचानक विद्यार्थियों की ओर से किसी लड़के ने कुछ पैसे मंच पर फेंक दिये। सत्यव्रत का ध्यान फिर उचटकर मंच की ओर चला गया। बालिस्टर साहब की माँ विंग से निकलकर धीरे-धीरे बाहर बैठी औरतों की ओर आ रही थीं और मंच पर लगे दोनों गैस के हण्डों में हवा कम हो गयी थी। तभी शायद स्टेज-मैनेजर ने चिल्लाकर गैसवाले लड़के को डाँटा, "अबे, कहाँ मर गया! हण्डों में हवा खत्म हो रही है।"

सचमुच मंच पर कुछ ही क्षणों में रोशनी इतनी कम हो गयी थी कि विदूषक की फुन्देदार टोपी काग़ज़ के हैट की तरह लगने लगी थी और दोनों आकृतियाँ धुंधली हो गयी थीं।

एक विद्यार्थी की सीटी पर अचानक कई और सीटियाँ पण्डाल में गूंज उठीं। एक क्षण को ऐसा लगा जैसे सरकस के कटघरे में बन्द कई हाथी सहसा बिगड़ गये हों और सूंड से 'सी-सी' की आवाज़ें कर रहे हों।

मैनेजर ने दुबारा ज़ोर से आवाज़ लगायी तो पण्डाल से बाहर निकलता हुआ लड़का सहसा लौट आया और चिल्लाकर बोला, "मैं हण्डों में हवा भरूँ के सीताजी के लियो पान-बीड़ी लाऊँ? मुस्सै एकी काम हो सकै। हाँ।"

इस संवाद पर जयप्रकाश और राजेश्वर ज़ोर से हँस रहे थे। मुस्कराकर सत्यव्रत ने अन्य दर्शकों की ओर देखा तो उसकी दृष्टि फिर विमला पर जा टिकी। वह कुछ ऐसे पोज़ में बैठी थी कि एक आँख मंच पर और एक सत्यव्रत की तरफ़ लगी थी।

थोड़ी देर बाद भीड़ का कोलाहल, सीटियाँ और बातें करने की

ग्रावाज़ें धीमी होती हुई एकदम खामोशी में बदल गयीं। लड़के ने हण्डों में हवा भरके उन्हें फिर यथास्थान लटका दिया था।

खेल शुरू हो गया था। भगवान् राम धनुषबाण लटकाये मंच पर ग्रा गये थे। कानों में पन्नी के नकली कुण्डल ग्रौर सिर पर चमकदार मुकुट-किरीट धारण किये वह माता कौशल्या से ऋषियों की रक्षा के लिए वन में जाने की ग्रनुमति माँग रहे थे और माता कौशल्या उनकी ग्रल्पवय ग्रौर कैशोर्य की दुहाई देती हुई ग्रपना मातृत्व-सहज वात्सल्य ग्रौर भय प्रकट कर रही थीं···

जनता वात्सल्य-रस में सराबोर गद्‌गद भाव से इस स्थिति में डूबी थी। कहीं ज़रा-सा भी शोर न था। कोई छोटा बच्चा यदि ग्रचानक चीख-कर रो पड़ता तो माँ उसे फ़ौरन चुप कराती हुई उसके मुँह में दूध ठूँस देती थी। इतनी ग्रधिक शान्ति थी कि पण्डाल के बाहर की ग्रावाज़ें बखूबी ग्रन्दर सुनी जा सकती थीं।

कुछ देर तक इसी खामोशी में बैठे रहने के बाद सत्यव्रत को लगा कि ग्रब चलना चाहिए। मंच पर माता कौशल्या भोंडे ढंग से दुख प्रकट कर रही थीं ग्रौर बार-बार कूल्हे मटकाकर ग्रपने कृत्रिम उरोजों को ग्रागे कर लेती थीं। सत्यव्रत विमला की तरफ़ देखकर उठ खड़ा हुग्रा। उसकी गर्दन ग्रनायास इस ढंग से हिल उठी कि कोई भी देखता तो समझ जाता कि यह व्यक्ति अब लौटकर यहाँ नहीं ग्रायेगा।

"चलें!" उसने धीरे से राजेश्वर की बाँह थपथपाकर कहा ग्रौर ग्रागे बढ़ गया। मंच पर करुण संवाद चल रहे थे।

ग्रौरतों की भीड़ में से विमला भी उठ खड़ी हुई। राजेश्वर ने एक दृष्टि सत्यव्रत पर ग्रौर दूसरी विमला पर डाली ग्रौर उसके होंठों पर ग्रनायास एक कुटिल-सी मुस्कराहट खेल गयी। कुछ क्षण ठहरकर आगे झुकते हुए उसने जयप्रकाश का कन्धा दबाया ग्रौर एक ग्राँख दबाकर इशारे से उसे सत्यव्रत ग्रौर विमला को जाते हुए दिखाया। जयप्रकाश ने एक नज़र पीछे डाली ग्रौर फिर सामने मंच की ग्रोर देखने लगा। सत्यव्रत भीड़ में से निकलने का रास्ता बनाते हुए पण्डाल के उत्तरी दरवाज़े तक जा पहुँचा था। विमला भी उधर की तरफ़ ही बढ़ रही थी।

राजेश्वर ने फिर कुछ बात करनी चाही तो जयप्रकाश ने हाथ हिलाकर मना कर दिया। उसका इशारा था कि यह बात करने की जगह नहीं है।

पण्डाल के दरवाज़े से थोड़ा आगे एक नीम के पेड़-तले खड़ा सत्यव्रत विमला का इन्तज़ार कर रहा था। उसके मन में एक बार भी यह संशय नहीं आया कि शायद वह न आये! सत्यव्रत इतना आश्वस्त था जैसे वह उससे कोई वचन ले चुका हो।

"अरे, मैं सोचती थी कि कहीं आप आगे न निकल गये हों।" सहसा तेज़ क़दमों से आती हुई विमला उसे पेड़-तले अँधेरे में खड़ा देखकर ठिठक गयी। दोनों साथ-साथ चलने लगे।

सत्यव्रत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रात का घटाटोप अन्धकार और उसमें तिमिर से लड़ने की असफल चेष्टा करते हुए फ़ासले पर खड़े म्युनिसिपैल्टी के लैम्प-पोस्ट! तीन-चार फ़र्लांग का रास्ता और बारह-एक का वक़्त।

रामलीला के संवादों की आवाज़ अब भी आ रही थी। ऐसा लगता था कि किसी तहख़ाने में कुछ लोगों को बन्द कर दिया गया है और वे गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे हैं। ज्यों-ज्यों ये दोनों आगे बढ़ते गये, रामलीला की आवाज़ें धीमी होती गयीं। मगर फिर झींगुरों और झिल्लियों की आवाज़ें उभरने लगीं जो पहली आवाज़ों से ज़्यादा अजनबी और भयावह थीं। सड़क ऊबड़-खाबड़ थी जिसके रोड़ों से बरबस ठोकर लग जाती थी। सत्यव्रत सड़क से उतरकर बराबर की कच्ची पगडण्डी पर आ गया तो विमला भी उसी के बराबर-बराबर चलने लगी।

सत्यव्रत की दृष्टि चौकन्नी-सी आगे-पीछे घूम रही थी कि कहीं कोई आ तो नहीं रहा। उसके दायें हाथ पर विमला इतने धीरे-धीरे चल रही थी जैसे आज घर पहुँचने का उसका कोई इरादा ही न हो। उसे लग रहा था कि इसी तरह सत्यव्रत के साथ चलते रहने में कोई बड़ा भारी सुख है जिसकी तुलना किसी भी लौकिक सुख से नहीं की जा सकती। बायें हाथ पर नाली थी जिसमें खड़ी घास और भंभोलन के छोटे-छोटे पेड़ों में जब-तब कोई कीड़ा सरसरा उठता था।

सहसा नाली की घास में से उछलकर रास्ता काटती हुई एक बिल्ली सड़क के दूसरी ओर निकल गयी और इस आकस्मिकता से घबराकर विमला एकदम सत्यव्रत से आ सटी और उसके सीने पर सिर रखकर उससे चिपट गयी। सत्यव्रत के क़दम अपने-आप रुक गये। क्षण-भर के लिए वह स्थिति पर विचार-सा करता रह गया मगर दूसरे ही पल घबराकर पीछे देखते हुए उसने बाँह पकड़कर विमला को अपने से अलग कर दिया। फिर जैसे स्पष्टीकरण देता हुआ बोला, "बिल्ली थी। जुलाहों के मकान पर चढ़ गयी।"

"हमें बड़ा डर लगता है।" काँपती हुई आवाज में विमला ने कहा और अलग होकर चलने लगी।

झींगुरों और झिल्लियों की झंकार और रामलीला के संवादों की आवाज़ अब भी आ रही थी, पर उसका शोर शायद उनके भीतर उठने वाले उस कोलाहल से ज़्यादा न था जिसे वे दोनों ही सुन रहे थे।

दोनों के क़दम लड़खड़ा रहे थे; और दोनों चलते हुए बीच में फ़ासला बनाये रखने की कोशिश कर रहे थे।

सहसा हवा तेज़ हो गयी। थोड़ी देर पहले जब वे रामलीला-पण्डाल से चले थे तो आसमान पर बादल छाये थे और एकाध बूंद धरती पर गिर चुकी थी। मगर अब वर्षा की कोई सम्भावना न थी। हवा उत्तेजित पगली औरत की तरह सायँ-सायँ कर रही थी।

सत्यव्रत सोच रहा था, 'राजेश्वर ने ज़रूर दोनों को उठते हुए देखा होगा···हॉस्टल के लड़कों को तो पहले से ही शक है···कल टीचर्स-रूम में जाने क्या-क्या सुनने को मिले?'

विमला सोच रही थी, 'ये खामखाँ दूरी बनाये रखना चाहते हैं। प्रकृति के सहज नियम पर अपना हठ रोपकर अपने को बड़ा साबित करना चाहते हैं। वैसे इनके मन में स्नेह तो है ही।"

तभी थाने में एक का घण्टा बजा और वातावरण में घण्टे की गूंज भर गयी। दोनों घर के नज़दीक आ गये थे। सहसा विमला ने निस्तब्धता को तोड़ा, "अब आप कोठरी में जाकर क्या करेंगे?"

"सो जाऊँगा।"

"अभी से सो जायेंगे ?" विमला ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं, अभी तो कुछ देर जागूंगा।" सत्यव्रत ने ऐसे कहा जैसे अभी से जाकर सो जाना सचमुच कोई बहुत खराब बात हो।

"तब ठीक है!" विमला सन्तुष्ट होकर बोली।

सत्यव्रत चौंक उठा। क्या ठीक है ? यह उसकी पूछने की इच्छा हुई। लेकिन वह बोल नहीं सका। उसे लगा कि अनायास उसने विमला को किसी बात की स्वीकृति तो नहीं दे दी ? वह याद करने की कोशिश करने लगा कि विमला ने क्या पूछा था और उसने क्या उत्तर दिया था। शायद बात कुछ ऐसी थी कि वह जाकर फ़ौरन सो तो नहीं जायेगा। मगर उसका विमला से क्या सम्बन्ध ? उसने क्यों यह प्रश्न पूछा ? कहीं···कहीं उसका इरादा···!

विमला अपने घर के दरवाज़े पर पहुँचकर साँकल खड़खड़ाने लगी थी। उसकी बूढ़ी दादी शायद बहुत गहरी नींद सो रही थी। बहुत देर तक साँकल खड़कती रही, खड़कती रही, तब जाकर दरवाज़ा खुला।

अपनी कोठरी में पहुँचकर सत्यव्रत को भी बहुत देर तक नींद नहीं आयी। उसे बराबर ऐसा लग रहा था जैसे उसके दरवाज़े पर कोई दस्तकें दे रहा हो। अगर उसने फ़ौरन दरवाज़ा न खोला तो साँकलें बजने लगेंगी और देर तक बजती रहेंगी और सारा मुहल्ला उसके दरवाज़े पर जमा हो जायेगा।

आखिर उसने उठकर कोठरी के बाहरी दरवाज़े की साँकल खोल दी। तब कहीं जाकर उसे नींद आ सकी।

जाले

शहर के लोग बरसात पर पारम्परिक दृष्टि से सोचते हैं—इस साल बारिश खुलकर नहीं हुई। एक दिन होती है, फिर तीन दिन के लिए बन्द। गांव के अध्यापक इस स्थिति पर फ़सल में हानि-लाभ के दृष्टिकोण से विचार करते हैं। अन्य अध्यापक लोग कहते हैं—कितनी उमस है! पिछले

साल बारिश हुई थी तो सात दिन तक धूप के दर्शन नहीं हुए थे। और 'रेनी-डे' की छुट्टियाँ कितनी हुई थीं! और इस साल···बारिश चाहे कितनी हो मगर कॉलेज के टाइम पर ज़रूर हल्की हो जायेगी। एक भी 'रेनी-डे' की छुट्टी नहीं हुई।

उस दिन टीचर्स-रूम में यही चर्चा थी। बाहर धूप चिलचिला रही थी और मोटी चमड़ी पर उभर आयी पसीने की अनगिन बूंदों को धोती के पल्लू से पोंछते हुए प्रवीणचन्द्र शास्त्री निदाघ-निन्दा कर रहे थे—"आनन्द आ जाये यदि संस्कृत काव्यों की नायिकाओं को ऐसी धूप में रहना पड़े तो!" वह कह रहे थे, "सारा 'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनम्' ···वाला सौन्दर्य पिघल जाये!"

उसी समय मास्टर जयप्रकाश और सत्यव्रत चिक उठाकर कमरे में दाखिल हुए। राजेश्वर चिहुंककर कुर्सी से खड़ा हो गया, "हद कर देते हो, यार! कल रात-भर इन्तज़ार करता रहा और आज सुबह से तलाश में हूँ। कहाँ जा छिपते हो?"

"मुझे सेक्रेटरी साहब के यहाँ जाना पड़ा था और फिर कोतवाली भी गया।" जयप्रकाश ने गम्भीर होकर कहा और माथे का पसीना पोंछते हुए एक कुर्सी पर बैठ गया।

"आज बहुत गर्मी है।" सत्यव्रत बोला।

"वैसे कुशल तो है?" शास्त्रीजी ने चौंकते हुए जयप्रकाश से पूछा, "कल रामलीला में भी आप नहीं आये। मैं सोचता था धनुषभंग के समय आप अवश्य आएँगे वहाँ!"

जयप्रकाश हँस दिया। एक मासूम मगर शैतानी से भरी हुई मुस्कराहट उसकी आँखों और होंठों पर छलक उठी। बोला, "धनुष मुझे भंग करना था क्या?"

"आज कितने दिनों बाद मुस्कराये हैं, हुज़ूर!" राजेश्वर ने पूछा और साँस खींचकर बोला, "लाख-लाख शुक्र है परवरदिगार का।"

"हम लोगों का मुस्कराना क्या? हम तो ऐसे हंसते हैं जैसे लोग कभी-कभी फ़ोटो खिंचवाने के लिए हँसी माँग लाते हैं।" जयप्रकाश मुस्कराकर बोला, "फिर भी ऐसे मौक़े कमबख़्त आ ही जाते हैं कि दर्द की

हज़ारों मील लम्बी घाटियों से निकलकर नौजवान पंछी की तरह हंसी बेसाख्ता फुर्र से होंठों की फुनगी पर आ बैठती है।"

"काव्यात्मक अभिव्यक्ति!" शास्त्रीजी चिल्लाये, "देखिए, सत्यव्रतजी! मुझे भवभूति और कालिदास का स्मरण आ रहा है। तनिक भाषा-पक्ष दुर्बल है।"

"आप लोगों की-सी प्रतिभा कहाँ से लाऊँ, शास्त्रीजी!" जयप्रकाश ने असमर्थता में कन्धे झटकाते हुए कहा, "आप तो कलाकार हैं। देवी सरस्वती आपको सिद्ध हैं। मगर मैं तो मामूली-सा आदमी हूँ, जनता की ज़बान बोलता हूँ। क्या करूँ..."

शास्त्रीजी के गालों पर सुर्ख़ी आने लगी। प्रशंसा उन्हें लाल कर देती है। केवल जयप्रकाश ही उनकी प्रतिभा को पहचान पाया है, ऐसा उन्हें लगता है। शास्त्रीजी ने कई बार सुना है कि उनके सामने एक-दो वाक्यों में ही उनकी प्रशंसा समाप्त कर देनेवाला जयप्रकाश उनकी अनुपस्थिति में उनकी तारीफ़ करता नहीं अघाता।

उस दिन टीचर्स-रूम से निकलकर वह बाहर खड़े हो गये थे और अपने कानों से उन्होंने जयप्रकाश को कहते सुना था, "इस स्कूल का सौभाग्य है, जो इसे शास्त्रीजी-जैसा महान व्यक्तित्व अनायास मिल गया... वरना..." और लोग जयप्रकाश पर ठठाकर हँस पड़े थे। बेचारा चुप हो गया। पाठक, रामाधीन, रस्तोगी, वर्मा सब थे। पवन भी था। तभी से तो शास्त्रीजी उत्तमचन्द के गुट से निकल आये हैं। जयप्रकाश आदमी को पहचानकर इज्ज़त करना जानता है।

अपनी प्रशंसा के प्रसंग को टालते हुए बोले, "जयप्रकाशजी, मैं आपके निर्देशानुसार कल सन्ध्या समय गया था वहाँ। और भगवती सरस्वती की कृपा से स्थिति अनुकूल ही जान पड़ती है।"

जब से पाठक के चाचा का, जो डिप्टी कलेक्टर थे, यहाँ से तबादला हुआ है, पाठक अपने प्रति प्रिंसिपल उत्तमचन्द का व्यवहार बदला-बदला-सा पाता है, और जब कभी वह जयप्रकाश वग़ैरह के साथ बैठता है, तो अदबदाकर प्रिंसिपल साहब का बुलावा आ जाता है। इस समय भी चपरासी पाठक का बुलावा लेकर आ गया और उसे जाना पड़ा।

जयप्रकाश हँस दिया, बोला, "इसे कहते हैं 'गिल्टी कान्शेन्स'। उत्तम-चन्द घबराता है कि हममें न मिल जाये।"

"पाप का घट पूर्ण हो गया है, जयप्रकाशजी।" शास्त्रीजी बोले, "आप देखते रहिए, यह राजनीति स्वयं उसी के लिए घातक बननेवाली है।"

"आपसे क्या कहा लालाजी ने?" राजेश्वर ने पूछा, "हमने सुना, आप प्रिंसिपल हो रहे हैं।"

शास्त्रीजी राजेश्वर पर विश्वास नहीं करते, इसलिए कहने की इच्छा रखते हुए भी बात को पी गये।

जयप्रकाश समझ गया। शास्त्रीजी को थोड़े विश्वास का 'डोज़' चाहिएं। बोला, "तुम बताओ ठाकुर, तुम्हारी क्या बातें हुई?"

"मेरी?" खुशी से आँखें चमचमाते हुए राजेश्वर ने कहा, 'मुख़्तसिर ये है कि कृषि-योजना नहीं चलेगी और···" फिर धीरे से एक आँख दबाकर बोला, "शास्त्रीजी के चान्सेज़ बहुत हैं।"

"गुड!" जयप्रकाश खुशी से उछलकर बोला, "शास्त्रीजी, अब आप बाबू हरकरण सहाय को पकड़ लीजिए, बस, आपका काम सफल!"

टन-टन-टन-टन चार घण्टे बज गये। शास्त्रीजी उठ खड़े हुए।

राजेश्वर भी उठ खड़ा हुआ था। लौटकर बोला, "कोतवाली क्यों गये थे?"

"अताउल्ला खाँ कोतवाल को सौगात देने।" जयप्रकाश ने धीरे से कहा, "तुम्हें मालूम नहीं, कल उसने हमारे सेक्रेटरी लाला गनेशीलाल की इज़्ज़त का धनुष तोड़ दिया और उसी के टुकड़े लौटाने के लिए पाँच सौ रुपये की रिश्वत ली और वह भी मेरी मार्फ़त।"

"तुम्हारी मार्फ़त? तो सोहन छूट गया?"

"छूट गया होगा।" जयप्रकाश उपेक्षा से बोला, "पाँच सौ रुपये पर सौदा हुआ था। पहले रुपये, बाद में सोहन की रिहाई। इसीलिए तो मुझे सेक्रेटरी साहब ने बुलाया था।"

"मगर रिश्वत लेने के लिए तुम्हें ही क्यों चुना गया?" राजेश्वर ने पूछा।

"विश्वास उसका।" जयप्रकाश ने कहा। फिर सत्यव्रत की ओर देखकर बोला, "क्यों मास्टर साहब, आपके साथ इण्टरव्यू के लिए कोई असरार नामक लड़का भी आया था क्या, जो नहीं लिया गया ?"

"हाँ, हाँ।" राजेश्वर और सत्यव्रत दोनों ने एक साथ ही याद करते हुए हामी भरी।

"बस, उसी की चुस निकाली है कोतवाल ने। वरना कोई मामला था साला ! इससे ज़्यादा सीरियस केस तो उम्मेदसिंहवाला था। उसमें कम-से-कम रिपोर्ट लिखानेवाला तो था कोई, यहाँ तो जाट लोग अपने कपड़े छुड़ाने की जल्दी मचाये थे। मगर खैर···खुशी की ही बात है," और राजेश्वर से हाथ मिलाकर उसने एक ज़ोरदार ठहाका लगाया।

पीरियड शुरू हो गया था। राजेश्वर फौरन चला गया। जयप्रकाश ने डायरी निकाली और भरनी शुरू कर दी। प्रिंसिपल उत्तमचन्द ने उस दिन कहा था, "इन्सपेक्शन-पैनल जल्दी ही आनेवाला है। हर टीचर अपनी डायरी ठीक रखे। मैं किसी की भी डायरी किसी भी वक्त मँगा सकता हूँ। साथ ही सबके रजिस्टर भी 'कम्पलीट' रहने चाहिए।"

सत्यव्रत भी रजिस्टर में सिर खपा रहा था। वह आठवीं कक्षा का क्लास-टीचर है। छठी से लेकर बारहवीं कक्षा तक के लड़कों को हिन्दी-संस्कृत आवश्यकतानुसार पढ़ाता है। आठवीं को गणित और सातवीं कक्षा को इतिहास भी पढ़ाता है। और इनके लिए उसे रोज़ाना दो-चार घण्टे पढ़ना भी पड़ता है।

उस दिन जब जयप्रकाश ने पूछा था, "आप इतना परिश्रम क्यों करते हैं ?" तो उसने कहा था, "मुझे अच्छा लगता है।" सोचने लगा था सत्यव्रत, कि सचमुच वह श्रम से नहीं घबराता किन्तु इस वातावरण से उसे ज़रूर कभी-कभी घबराहट होने लगती है।

देर तक उसके मुंह पर आत्म-चिन्तन की वेदनामयी रेखाएं उभरती रहीं और आत्मा में संघर्ष चलता रहा। उसने रजिस्टर में एक शब्द नहीं लिखा और उंगलियों में दबी खुली हुई क़लम मेज़ पर रखे 'डस्टर' को स्याही पिलाता रहा।

"मैं देख रहा हूँ आप कुछ परेशान-से हैं, मास्टर साहब ! पहले मैंने

सोचा था आप मुझसे नाराज़ हैं। उस दिन हॉस्टल खुलने के बारे में हुई बहस से लेकर आज तक मैं निरन्तर देखता आ रहा हूँ। लगता है आप कहीं दुख रहे हैं। मैंने या किसी और ने ज़रूर आपके मर्म को छुआ है। क्या आप मुझे नहीं बतायेंगे कि आपको क्या परेशानी है?" सहसा जयप्रकाश ने पूछा।

कितना स्नेह! कितनी निश्छल सरल आत्मीयता! कैसा अपनत्व! इसी के सम्मुख सत्यव्रत निरस्त्र हो जाता है। उस दिन की नाराज़ी भी चार-छः घण्टे से ज़्यादा कहाँ टिक पायी थी! जयप्रकाश से नाराज़ कैसे हुआ जा सकता है?

सत्यव्रत बोला, "सच पूछिए तो मैं इस वातावरण में अभी तक अपने-आपको स्थित नहीं कर पाया।"

"मगर क्यों?"

"इसलिए कि शिक्षा का जो पुनीत स्वप्न मेरे मन में था और है, उसे साकार और प्रतिस्थापित करने का यहाँ कोई अवसर नहीं। न वातावरण है, न संगी-साथी। आप हैं, किन्तु आप भी शिक्षा के उस वातावरण से अधिक महत्त्व···मुझे क्षमा करेंगे, जय भाई।" सत्यव्रत हिचका।

"नहीं, नहीं, कहते रहिए। मुझे अपनी दुर्बलताएँ सुनकर बड़ी स्वस्थ प्रेरणा मिलती है।" जयप्रकाश ने प्रोत्साहन दिया।

सत्यव्रत उल्लसित होकर आत्मीयता से बोला, "आप राजनीति, और कहूँ कि क्षुद्र राजनीति को अधिक महत्त्व देते हैं, जय भाई! आप बताइए, आपकी प्रतिभा का कितना प्रतिशत विद्यार्थियों को मिलता है? और यहाँ अध्यापकों में शिक्षा के प्रति कितनी विरक्ति और परनिन्दा में कितनी लिप्ति है···? मैं···मैं कहना नहीं चाहता, सम्भव है आप गर्वोक्ति समझें, किन्तु शिक्षादान की जो भी महती कल्पनाएँ मेरे मन में थीं, सब चकनाचूर हो रही है यहाँ आकर!"

सत्यव्रत कुछ उत्तेजित होकर सहम गया और जयप्रकाश की प्रतिक्रिया देखने लगा कि उसे बुरा तो नहीं लग रहा।

"कह चुके?" जयप्रकाश ने उसी शान्त-स्थिर भाव से कहा, "अब मेरी बात सुनो। जहाँ तक शिक्षा-दान की आपकी भावना का प्रश्न है, मैं

आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं उसकी सच्चे दिल से क़द्र करता हूं और इसीलिए आपको निकट अनुभव करता हूं। पर जहां तक वातावरण का प्रश्न है, मैं आपको बता दूं कि सब जगह और सारे स्कूलों में कमोबेश यही वातावरण आपको मिलेगा। हमारे देश में अध्यापक बेचारे को समाज का सबसे निरीह और दयनीय प्राणी समझा जाता है और सब जगह उसी पर सबसे ज़्यादा अत्याचार होते हैं। फिर भी दुर्भाग्य यह कि उसी अध्यापक पर सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारियां लाद दी गयी हैं।"

फिर, एक पल रुककर उसने धीरे से कहा, "मास्टर साहब! आप देखेंगे कि आपका शिक्षा का वह स्वप्न इस आज़ाद हिन्दुस्तान में कहीं भी मूर्त नहीं हो सकता।"

"जय भाई!" सत्यव्रत ने तर्क का एक सूत्र पकड़ते हुए कहा, "माना कि शिक्षा का वातावरण कहीं भी आदर्श नहीं है, पर क्या हमारा यह प्रयत्न नहीं होना चाहिए कि हम उसे आदर्श बनाने की दिशा में कार्य करें?"

"अवश्य होना चाहिए।" जयप्रकाश ने मुस्कराकर पलकें झपकाते हुए कहा, "मगर आप जिसे राजनीति कहते हैं, मास्टर साहब, वह वास्तव में इन्हीं प्रयत्नों का तो एक छोर है। जैसे किसी पुराने घर में घुसने से पूर्व जाले वगैरह साफ़ करने पड़ते हैं, वैसे ही कुछ मेरी यह कार्यप्रणाली है, जिसे आप राजनीति कहते हैं।"

"मैं जान सकता हूं ये जाले कैसे आये?"

'अपने कॉलेज की बात करें तो स्थिति ज़्यादा स्पष्ट होगी। हमारे यहां अधिकतर जालें स्वार्थ के हैं जिन्हें लाला हरीचन्द, गनेशीलाल और उत्तमचन्द ने फैलाया है। इसलिए मैं सोचता हूं कि जब तक ये जाले साफ़ नहीं होंगे, यह संस्था आदर्श शिक्षण-संस्था नहीं बन सकती।"

"जय भाई, बुरा मत मानिएगा, पर मैं सिर्फ़ अपनी जानकारी के लिए पूछना चाहता हूं कि क्या आपने अपनी इस धारणा को कभी स्थिति और परिस्थिति के सच्चे सन्दर्भों में तोलकर देखा है?" सत्यव्रत ने पूछा।

"बीसियों बार! और हर बार मुझे ये जाले दिखायी दिये हैं। हर बार मेरी धारणा दृढ़तर होती गयी है।" जयप्रकाश ने सहज पीड़ित

विश्वास से कहा।

"पर मुझे ये जाले क्यों दिखायी नहीं देते ? मेरे मन में संशय क्यों नहीं उपजता ? मुझे मैनेजमेण्ट के कार्यों में अनौचित्य क्यों नज़र नहीं आता ? मैं क्यों उनकी बातों के एक से अनेक आशय नहीं निकाल पाता ?" सत्यव्रत तेज़ बोलता-बोलता एकदम धीमा हो गया और थके-से स्वर में बोला, "जय भाई, हर बात का कोई दुराशय हो ही, यह आवश्यक नहीं है। मनुष्य पर से विश्वास उठ जाने के बाद ही ऐसी भावना मन में जन्म लेती है।"

"बिल्कुल ठीक।" जयप्रकाश ने कहा, "पर सवाल है कि मनुष्य पर से विश्वास कब हटता है ? जब वह विश्वासघात करे, तभी न ! तभी उसकी बातों में आशय और दुराशय ढूंढ़ने की ज़रूरत महसूस होती है; वरना मैं आपकी बातों का भी तो ग़लत आशय निकाल सकता था। आप पर अविश्वास भी कर सकता था !"

"फिर क्यों नहीं किया ?" सत्यव्रत ने पूछा।

"इसलिए कि आप मूलतः अच्छे आदमी हैं। आपकी अन्तरात्मा और दृष्टि साफ़ है। आप चीज़ों को उनके सही सन्दर्भों में देखते हैं।" जयप्रकाश ने कहा।

इतनी बड़ी प्रशंसा पर सत्यव्रत को चुप हो जाना चाहिए था। किन्तु वह निश्चय कर चुका था कि आज तर्क द्वारा जयप्रकाश को निरुत्तर करके हमेशा के लिए उसके मन से द्वेष निकालकर रहेगा। बोला, "जब मेरी दृष्टि साफ़ है तो मुझे ये जाले क्यों दिखायी नहीं देते ?"

जयप्रकाश बड़ी प्यारी-सी हँसी हँस दिया, बोला, "देखिए मास्टर साहब ! आप मेरे मुहावरे का ग़लत इस्तेमाल कर रहे हैं। फिर भी मैं कहूँगा कि ये स्वार्थ के जाले वस्तुतः शोषण के फन्दे हैं। और पूंजीवाद अपना जाल हमेशा ईमानदारी के रंग में रँगकर फैलाता है। वक़्त की धूप में जब ईमानदारी का मुलम्मा उतर जाता है तो चारों तरफ़ केवल फन्दे-ही-फन्दे रह जाते हैं। तब फंसनेवाले को मालूम होता है कि बुरे फँसे। और तब जाल फैलानेवालों को जी भरकर गालियां देने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं रहता। हां, शुरू-शुरू में ईमानदारी की ऊपरी चमक ही उसे आकृष्ट करती है और वह इतनी तेज़ होती है कि वह पूरे विश्वास

के साथ शोषण को ईमानदारी ही समझता है।" और फिर जयप्रकाश ने अपनी गर्दन टेढ़ी करके सत्यव्रत को आपादमस्तक देखते हुए मुस्कराकर कहा, "मास्टर साहब ! आप सरल हैं, नये हैं, ईमानदारी की चमक से आक्रान्त हैं। आप और थोड़े दिनों तक इस चमक से चकाचौंध रहेंगे और शोषण को सत्य का प्रतीक समझेंगे !"

"तो जय भाई, आप ऐसा क्यों नहीं मानते कि यह सत्य है ?" और आगे सत्यव्रत ने मन-ही-मन मुस्कराकर कहा, 'क्या आप सरल और ईमानदार नहीं ?'

"मैं नया नहीं हूँ।" जयप्रकाश ने तुरन्त उत्तर दिया, "शोषण के इस जाल की चमक मेरे लिए खत्म हो चुकी है। मैं क़दम-क़दम पर उन फन्दों को महसूस करता हूँ जो मुझे चारों ओर से घेरे हैं। मैं हर आनेवाले से चिल्लाकर कहता हूँ कि यह जाल है, इससे सावधान। मगर अधिकांश लोग तब तक मुझे नहीं सुनते जब तक दो-चार फन्दे उनके गले में नहीं पड़ जाते। और फिर, वे भी मेरे साथ गालियाँ देने और चिल्लाने लगते हैं। आप देखते जाइए, थोड़े दिनों बाद आप भी मेरे साथ होंगे।"

जयप्रकाश चाहे विद्यार्थियों से गाली देकर बात करे या साथियों से तकल्लुफ़ाना अन्दाज में—मगर वाक्यों के पीछे इतनी सच्ची भावना झलकती है कि असहमत होते हुए भी उसकी बातों पर अविश्वास प्रकट करने की इच्छा नहीं हुई सत्यव्रत की। धीरे से बोला, "भाईजी, मुझे अन्यथा न लेना। मैं कुछ सीखने और जानने के लिए ही आपसे उलझ जाता हूँ।"

जयप्रकाश फिर मुस्करा दिया। इस बार उसकी मुस्कराहट में मासूमियत नहीं, दर्द था। बोला, "आप मुझसे नहीं उलझे मास्टर साहब ! आप जहाँ उलझे हैं उस जगह को पहचानने की कोशिश ही नहीं कर रहे। खैर, वक़्त की धूप में जब जाल की चमक उतर जायेगी तो आपको भी फन्दे नज़र आने लगेंगे।"

संरक्षक

इतनी बेसब्री से लालाजी ने कभी किसी मास्टर का इन्तज़ार नहीं किया जितनी आज जयप्रकाश के इन्तज़ार में प्रकट हो रही है।

सेक्रेटरी गनेशीलाल ने लड़कों के लिए जो होटल सामने, ततैयोंवाले मकान के रथखाने में खुलवाया था उसमें कुछ दिनों से लड़कों ने खाना छोड़ दिया है और हॉस्टल में ही अपने खाने की व्यवस्था कर ली है। कल मीटिंग खत्म होने के बाद गनेशीलाल जाते-जाते कह गया था, "लालाजी, देख लो, अब आप पै ही है। अगर अभी से होटल बन्द हो गिया तो समझो मुझे बड़ा तखड़ा घाट्टा होवैगा। कम-से-कम मेरे बर्तनों की किम्मत निकल आवै, ऐसा मिजान तो कर दो।"

लालाजी ने कल ही हिसाब लगाकर देख लिया था। होटल पर कुल मिलाकर तीस-पैंतीस लड़के खाना खाते हैं और तीस रुपया महीना देते हैं। अनाज, सब्ज़ी-तरकारी और नौकरों का खर्चा निकालकर इस ज़माने में एक लड़के पर छः-सात रुपये से ज़्यादा की बचत नहीं हो सकती और अगर अभी से होटल बन्द हो गया तो गनेशीलाल ज़रूर घाटे में रहेगा।

"वेफिकर रौ भय्या, गनेसीलाल," उन्होंने गनेशीलाल को आश्वासन दिया था, "ईश्वर ने चाहा तो होटल बन्द नई होवैगा।"

मगर उन्हें कोई रास्ता भी ऐसा नज़र नहीं आता जिससे होटल चलने की कोई सूरत निकले। उनके दिमाग़ में रह-रहकर कल की मीटिंग में हुई बाबू हरकरण सहाय की बातें घूम जाती हैं जब उन्होंने सत्यव्रत से पूछा था, "कहिए, आपको क्या कहना है?"

"जी, मुझे तो कुछ नहीं कहना।" सत्यव्रत ने कहा था, "मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि छात्रों ने क्यों मोहन बाबू के होटल पर खाना खाने से मना कर दिया है। वस्तुतः मुझे तो एक दिन बाद यह सब ज्ञात हुआ कि लड़के अपना खाना हॉस्टल में ही बनवा रहे हैं।"

लोग कहते हैं कि लालाजी परेशानियों को मुस्कराहटों के नीचे पहनते हैं। बड़ी-से-बड़ी भूल के लिए भी उन्हें किसी ने कभी पछताते या दुःखी होते नहीं देखा। लेकिन बाबू हरकरण सहाय को कमेटी का मेम्बर

बनाकर अब वे पछताते हैं। बाबू साहब अगर न होते तो कल होटल का माभला तय हो गया होता।

दरअसल बाबू हरकरण सहाय में समझौते की वह स्प्रिट नहीं, जो चार आदमियों को मिलाकर काम करने के लिए प्रेरित करती है। लालाजी सोचते हैं कि जहाँ अपनी कोई हानि नहीं वहाँ दूसरे की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर उसे खुश कर देने में क्या बिगड़ता है! मगर बाबू साहब का अपना अलग ही ढंग है। वह हर समस्या पर अपना ग़लत या सही एक निश्चित मत रखते हैं और इसलिए वह हर चीज़ में दख़ल देते हैं। और अगर उनके मत के विपरीत किसी ने कुछ किया तो फ़ौरन कह उठते हैं, "नहीं, नहीं, तुम नहीं समझते हो। तुम गधे हो!"

लोग कहते हैं, "कृषि-विभाग में अफ़सरी करते-करते ऐसी ही आदत हो गयी है।" लालाजी भी जानते हैं कि दिमाग में अफ़सरी की बू है। अभी उस दिन रामलीला ही की बात उठी थी तो कहने लगे, "नहीं, नहीं, यह सब वाहियात है। इन्हें पैसा देना धन का दुरुपयोग करना है। ये लोग महान चरित्रों की छीछालेदर करते हैं। इन्हें चले जाने दो।"

दरअसल शहर के कुछ लोग रामलीला मण्डली को दशहरे तक रोकने के पक्ष में थे और उसी के लिए चन्दा उगाहने लालाजी और बाबू साहब के पास आये थे।

आखिर लालाजी को भी इतना कहना ही पड़ा, "भैया, हर चीज़ अपने मौसम में ही सुहावै है। भला बरसात में कहीं लीला होवै है?"

मगर कल तो हद कर दी बाबू साहब ने। भारी मीटिंग में उन्होंने सत्यव्रत से कह दिया, "अपने हॉस्टल के आप मालिक हैं। जैसा उचित समझें करें। कमेटी उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी।"

इससे मास्टरों के मिज़ाज नहीं बिगड़ेंगे तो क्या होगा? लालाजी को लगा कि गनेशीलाल भी अपने होटल के नुक़सान का उन्हें ही ज़िम्मेदार ठहरायेगा।

हालांकि लालाजी भलीभांति जानते हैं कि गनेशीलाल के होटल पर खाने की व्यवस्था ठीक नहीं थी, एक-दो बार जब वह उधर से गुज़रे थे तो उन्होंने लड़कों को खाना खाते हुए देखा था। थालियाँ काली थीं और

उनके चारों तरफ़ झुण्ड-के-झुण्ड मक्खियाँ मँडरा रही थीं। बेंचें गन्दी और खस्ताहाल थीं और उन पर बिखरी पड़ी सब्जियों और दाल के दाग़ों को देखकर उन्होंने एक दिन खुद नौकरों से कहा था, "भई, कभी-कभी इनकी सफ़ाई भी कर लिया करो।" मगर उन्हें यह मालूम थोड़े ही था कि लड़के इसी बात पर वहाँ खाना छोड़ देंगे।

लालाजी वास्तव में होटल बन्द होने के पक्ष में न थे, इसीलिए गनेशीलाल की इच्छा पर उन्होंने तुरन्त कमेटी की एक बैठक बुला ली थी। मगर ग़लती यह हुई कि उन्होंने इस समस्या को बहुत साधारण समझा। दरअसल उन्हें पहले से ही यह योजना बना लेनी चाहिए थी कि बात को कैसे रखना है!

उन्हें याद आया कि कल सत्यव्रत ने जब बड़ी सरलता से अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर दी तो भरी मीटिंग में सन्नाटा छा गया था, जैसे कोई साँप निकल आया हो और जैसे किसी को बोलने योग्य पाइण्ट ही न मिल रहा हो। आखिर हारकर गनेशीलाल खुद आगे खिसके, "मास्टरजी, खाने में कोई शिकायत की बात जँची हो तो मुझसे कहो। मैं मोहन कू समझा दूंगा। हमारा तो उद्देस होटल खोलने में येई था कि लौण्डों कू ढंग का खाना मिल जावै।"

फिर गनेशीलाल ने सहज आत्मीयता से सत्यव्रत से कहा, "आप लौण्डों को समझा दीजो जरा।"

सत्यव्रत चुप रह गया। वह अपनी स्वीकृति देकर झूठा नहीं बनना चाहता था। वह भलीभाँति समझता था कि लड़के जयप्रकाश और राजेश्वर के भड़काये हुए हैं और वे किसी भी तरह उसके समझाने से नहीं मान सकते। न जयप्रकाश ही इस बात पर राज़ी होगा क्योंकि खराब खाना मिलने के अलावा बात यह भी है कि जयप्रकाश कृषि-योजना के बाद स्वार्थ का दूसरा जाला इसी होटल को मानता है और इसे भी साफ़ किये बिना वह रहेगा नहीं।

तभी लाला हरीचन्द ने पूछा, "तो सत्तेबरतजी, ठीक है न! आप समझा देवेंगे।"

सत्यव्रत को कहना पड़ा, "मुझे विश्वास नहीं कि वे लोग अब मेरी

बात मानेंगे। वे तो गांव से रसोइया और आटा-दाल आदि सामान भी ले आये हैं और उनका खाना हॉस्टल में बन रहा है।"

लाला हरीचन्द ने सोचा कि यहीं से बात को समय और स्वास्थ्य की क़ीमत तथा हॉस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा के बिना छात्रों को ऐसा निर्णय लेने का अधिकार है या नहीं आदि मूलभूत प्रश्नों की ओर मोड़ देना चाहिए। परन्तु बाबू हरकरण सहाय बीच में ही बोल उठे, "मास्टर साहब, आप साफ़-साफ़ बताइए। इस सबसे लड़कों का क्या भला होगा? और इस बारे में आपकी क्या राय है?"

सत्यव्रत एक पल झिझका, फिर आश्वस्त होकर बोला, "हॉस्टल में सब व्यय मिलाकर एक वक़्त की ख़ुराक के पाँच आने पडते हैं, और खाना अपनी इच्छा का मिल जाता है—यह एक लाभ है। दूसरे सफ़ाई..."

"ठीक है।" बाबू साहब बोले, "आप हॉस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, वही कीजिए जो लड़कों के हित में हो। कमेटी इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगी।" और उन्होंने सत्यव्रत को जाने को कह दिया।

सबकुछ इतनी जल्दी हो गया कि कोई भी नहीं बोल पाया। ख़ुद सत्यव्रत को आश्चर्य हुआ क्योंकि थोड़ी ही देर पहले जयप्रकाश शर्त बद रहा था। कहता था, 'कमेटी होटल बन्द करने पर राज़ी हो ही नहीं सकती।'

...और अब लालाजी सोच रहे हैं कि कैसे इस समस्या को हल किया जाये। कल से ही उनका दिमाग़ चक्कर खा रहा था। सुबह उन्होंने उत्तमचन्द से पूछा, तो उसने सारा दोष जयप्रकाश के माथे मढ़ दिया था।

लालाजी ने देखा था, छदम्मीलाल और बालिस्टर ने बाबू हरकरण सहाय की ही बात का समर्थन किया था। गुलज़ारीमल शुरू से ही हॉस्टल और होटल के खिलाफ़ है। बाक़ी मेम्बर भी ढीले-ढाले-से ही हैं। इसलिए होटल चालू रखने के लिए लड़कों को ही राज़ी करना पड़ेगा। और कोई सूरत नहीं।

...अभी तक जयप्रकाश नहीं आया। अभी उन्हें भट्ठे पर भी जाना है। कोई अफ़सर मुआयने के लिए आनेवाला है। राशन पर तो था ही,

अब ईंटों पर भी कण्ट्रोल हो गया। सरकारी आदेश हैं कि अव्वल तीस के भाव और दोयम और सोयम ईंटें पच्चीस और बीस के भाव बेचो और स्टॉक का पूरा ब्यौरा सरकार को दो। मगर सब चलता है। एक-एक लाख ईंटें लगायी थीं उन्होंने भट्ठे में। ७५ हज़ार अव्वल निकलीं, बाकी दोयम और सोयम। मगर सरकारी ब्यौरे में २५ हज़ार की टूट-फूट और ७५ हज़ार में से सिर्फ़ ३५ हज़ार अव्वल दिखायी गयी हैं। हाँ, इन्स्पेक्टर खुश है।

सहसा जयप्रकाश को आते देखकर लालाजी भट्ठे की समस्या से फिर होटल की समस्या पर आ गये। अभिवादन का उत्तर देते हुए उन्होंने जयप्रकाश के कन्धे पर हाथ रख दिया। फिर एक क्षण बाद इधर-उधर देखकर धीरे से बड़ी ही आत्मीयता से पूछा, "मास्टरजी, भई यह हॉस्टल में खाने का क्या चक्कर है? बताओ तो, बच्चे अगर कच्चा-पक्का खाना खावेंगे और दिम्माग का काम करेंगे, तो कैसे चलेगा?"

"...जी?" जयप्रकाश ने 'ई' को उच्चारण में खींचकर स्थिति से अनभिज्ञ होने का अभिनय किया।

लालाजी को आश्चर्य हुआ। उत्तमचन्द तो कहता था, जयप्रकाश ने ही कराया है सबकुछ। अतः वस्तुस्थिति समझाते हुए स्नेह से बोले, 'तुम्हें कुछ मालूम नहीं?"

"जी नहीं।" जयप्रकाश ने गर्दन हिला दी।

लालाजी के माथे पर उदासी के बादल उतर आये। जैसे आखिरी उम्मीद पर भी पानी फिर गया हो। उनकी उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में जा फँसीं। और मुंह पर छायी रहनेवाली मुस्कान पल-भर को ग़ायब हो गयी।

सहसा पड़ोस से ज़ोर से औरतों के रोने की आवाज़ आयी। लालाजी का ध्यान उधर नहीं गया। बलदेव ब्राह्मण की रात में मृत्यु हो गयी थी। अब औरतें इकट्ठी होकर स्यापा मना रही हैं। लेकिन जब उनमें से किसी ने चीखकर दर्दभरी आवाज़ में कहा, "अरे, तेरा हुक्का धरा बिराज्जे रेऽऽ, हाय ऽऽ!" तो लालाजी को लगा कि रोनेवाली औरतें होटल का

मातम कर रही हैं, 'तेरा होटल धरा विराज्जे रे···हाय !' और अपनी इस कल्पना पर वह खुद ही मुस्करा दिये। बेशक होटल बन्द हो गया तो गनेशीलाल मातम मनायेगा।

जयप्रकाश भी उस रुदन में कमेटी के सेक्रेटरी और प्रेसीडेण्ट का रुदन सुन रहा था। सोच रहा था, सत्यव्रत ने कैसे कहा कि कमेटी ने एकमत होकर छूट दे दी है कि लड़के कहीं खायें।

सहसा हवेली में से ललाइन निकलीं और जयप्रकाश के हाथ जोड़ने से पहले ही प्यार से असीसती हुई चादर सँभालकर बोलीं, "खियाल रखियो जी मैं जरा कच्चे में बलदेव हर के हियाँ जा रई हूँ।"

"बलदेव बिचारा कहाँ रया अब !" लालाजी ने पहली बार उच्छ्वास छोड़ा। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि जयप्रकाश से क्या कहें? और हिरफिरकर उनको उत्तमचन्द पर क्रोध आ रहा था। वह हमेशा ही स्थिति का ग़लत चित्र पेश करता है। कृषि-योजना के बारे में भी कहता रहा कि लड़के तो चाहते हैं कि योजना चले, जयप्रकाश नहीं चाहता। और फिर एक भी गाँव का ऐसा लड़का नहीं ला सका जो कृषि-योजना के पक्ष में हो।

पड़ोस में रोनेवाली औरतों के स्वर में एक नया कण्ठ-स्वर जा मिला था। जयप्रकाश ने सोचा—ललाइन होंगी। पति-पत्नी दोनों हास्य-रुदन का नाटक करने में कितने एक्सपर्ट हैं ! और फिर स्वयं कुछ सोचने का अभिनय करते हुए बोला, "लालाजी ! मुझे तो लगता है, ये सब लड़कों की बदमाशी है। सत्यव्रतजी सीधे आदमी हैं सो उन्हें परेशान करते हैं। और जब से प्रिंसिपल साहब ने उम्मेदसिंह के खिलाफ़ बयान दिया है तब से तो वे प्रिंसिपल साहब की क्या, हमारी भी इज़्ज़त नहीं करते।"

"तुम्हारा प्रिंसिपल ?" लालाजी दांत किटकिटाकर गुस्सा करते-करते मुस्करा दिये। शायद वह कहनेवाले थे, "इसी काबिल है !" मगर उन्होंने बात को मोड़ दिया। झुंझलाते-हँसते-से बोले, "देखो भय्या, जमान्ने मैं जमान्ने की हवा देखकै चलना पडै। तुम्हारा प्रिंसिपल अगर ऐसा करता तो ऐसी नौबत ही काए कू आत्ती !"

कैसी नौबत ? इसका उन्होंने कोई संकेत नहीं दिया था। मगर

जयप्रकाश समझ गया। बोला, "आप क्यूं फिकर कर रहे हैं, लालाजी! ज़रा चौधरी साहब से कह दीजिएगा। एक दिन लड़कों को हॉस्टल जाकर डॉट देंगे, तो सब ठीक हो जायेंगे। नहीं तो बन्द कर दीजिए हास्टल, सुसरे इधर-उधर भटकते फिरेंगे, तब मालूम होगा।"

लालाजी हॉस्टल बन्द करने का प्रस्ताव सुनकर ही सिहर गये और तत्काल चेहरे पर मधुर मुस्कान लाकर बोले, "नई भय्या! कोई बच्चों से दुस्मनी थोड़ाई है। हम तो उनके संरच्छक हैं।"

जयप्रकाश कृत्रिम क्रोध से बोला, "तो फिर आप उन्हें डाँटिए।"

"अच्छी बात है।" लालाजी ने कहा। और उनका मन भविष्य की रूपरेखा में खो गया कि वह गनेशीलाल से क्या कहेंगे! लड़कों को कैसे समझायेंगे!

पड़ोस से रोने की सम्मिलित आवाज़ें तेज़ हो गयी थीं। शायद बलदेव की अर्थी उठ रही थी। हर औरत गला फाड़-फाड़कर पूरी ताक़त से चिल्ला रही थी। सारे मुहल्ले में कोहराम मचा हुआ था। पूरे वातावरण में मातम छाया था। शायद किसी अजीब दर्दनाक कल्पना से सिहरकर लाला हरीचन्द ने मूढ़े पर बैठे-बैठे आँखें बन्द कर लीं।

जयप्रकाश उठकर चला आया।

टूटी हुई छत

सत्यव्रत यद्यपि राजेश्वर से बहुत ज़्यादा घुलता-मिलता नहीं, फिर भी राजेश्वर के मन में उसके लिए अजीब-सा मोह है। पहले दिन देखा था तो राजेश्वर को उस पर हँसी आयी थी, फिर और नज़दीक से देखा तो दया और अब इतने निकट आ गया है तो प्यार आता है। वैसे अब भी जब उससे मुलाक़ात होती है तो राजेश्वर एक-दो फ़िक़रे कसे बिना नहीं रहता, पर सत्यव्रत की मुस्कराहट में न कालिख आती है और न राजेश्वर के प्यार में कमी।

जयप्रकाश के कमरे में अभी सत्यव्रत आया था। उसकी बहन की

शादी दिसम्बर में होनी निश्चित हुई है। बातों में ज़िक्र आया तो उसने कहा था, "आप दोनों को आना पड़ेगा" और राजेश्वर ने हँसकर उत्तर दिया था, "देखो भाई, तब तक यहाँ रहे तो आयेंगे। मगर हमारा क्या, सिर से कफ़न बाँधे घूमते हैं। इसलिए वादा नहीं कर सकते।" मगर मन-ही-मन उसने सोच लिया था कि जाना तो पड़ेगा ही।

सत्यव्रत के जाने के बाद राजेश्वर बोला, "ये बहनों की शादियाँ भी यार बड़ी ज़हमत होती हैं। सुना; सत्यव्रत कह रहा था दशहरे की छुट्टियों में बिजनौर जाऊँगा सामान खरीदने के लिए।" और गत वर्ष अपनी बहन की शादी की याद करके राजेश्वर सिहर उठा। काम करते-करते टाँगें तराजू हो गयी थीं उसकी।

"लगता है इसका नाम भी अब उसी लिस्ट में आनेवाला है जिसमें हमारा है!" लम्बी साँस खींचकर छोड़ते हुए जयप्रकाश ने कहा।

"क्यों?" राजेश्वर ने साश्चर्य पूछा।

"इसलिए कि रहते हैं जनाब राजपुर में और सामान खरीदेंगे बिजनौर से—यह क्या बात हुई! आखिर हमारे सेक्रेटरी साहब ने यहाँ दुकानें किसके फ़ायदे के लिए खोली हैं?" जयप्रकाश ने कृत्रिम आवेश में आकर व्यंग्यपूर्वक कहा।

राजेश्वर मुस्करा दिया, बोला, "कहीं भूलकर यह सब उस ब्रह्मचारी से मत कह बैठना। फ़ौरन तर्क करने लगेगा कि आप लोग मानवमात्र को सन्देह की दृष्टि से क्यों देखते हैं? अरे, मैंने एक दिन बाज़ार में उससे कह दिया था कि भई यह हवन की सामग्री वगैरह सेक्रेटरी साहब की दुकान से खरीदनी चाहिए नहीं तो बहुत बुरा मानेंगे। इस पर उसने मुझे दस मिनट तक भाषण दिया और···"

"तुम सुनते रहे?" जयप्रकाश मुस्कराया।

"यार, मुझसे उसके साथ झक-झक होती नहीं। वह नैतिकता, मानवता और मूल्यों-शूल्यों की बात करके मुझे चुप करा देता है। कहने लगा—अन्तिम साँस तक मानवता की श्रेष्ठता और उन मूल्यों में विश्वास करना चाहिए जो जीवन को सुखद और आस्थामय बनाते हैं। हमारा साहित्य, हमारी कला सबका उद्देश्य प्रकारान्तर से जीवन को जीने योग्य

और अधिक विश्वासपूर्ण बनाना ही तो है।"

जयप्रकाश हँस नहीं सका, यद्यपि राजेश्वर के सुनाने का ढंग ऐसा ही था। वह गम्भीरता से बोला, "आदमी अच्छा है पर अव्यावहारिक है। दुनिया को सिद्धान्तों और आदर्शों की दृष्टि से देखता है।" और फिर कुछ रुककर बोला, "अच्छा ठाकुर, एक बात बताओ। क्या तुम ऐसा नहीं सोचते कि गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति व्यावहारिक दृष्टि से आदमी को पोंगा बना देती है।"

राजेश्वर ने गर्दन हिला दी स्वीकृति में, और बोला, "वैसे भई, मैं तो कभी ऐसी बातों पर सोचता-विचारता नहीं। बाक़ी, यह ज़रूर है कि गुरुकुल के जितने लड़के मुझे मिले सब एक-से-एक नमूने!"

जयप्रकाश सोचने लगा कि यह शिक्षा आख़िर किसका दायित्व है—शिक्षक का, समाज का, परिवार का या शासन का? क्या देश में प्रचलित इतनी सारी शिक्षा-प्रणालियों को मिलाकर एक ऐसी सामान्य प्रणाली का आविष्कार नहीं किया जा सकता जो छात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र के सम्यक् विकास में सहायक हो?

तभी राजेश्वर ने चिन्तन में विघ्न डाला। बोला, "पिछवाड़े की गली में शायद कोई आवाज़ दे रहा है।"

जयप्रकाश ने भी सुना, कोई नारी-कण्ठ था, "ऐ मास्टर, ऐ भय्या मास्टर! ज़रा सुनिए रे!"

"देखना!" जयप्रकाश ने कहा। उठकर राजेश्वर ने पिछली खिड़की खोल दी। फ़रीदे की अम्मा और पंजे पनवाड़ी की बूढ़ी ख़ाला बुर्का उघाड़े खिड़की की छड़ें पकड़े खड़ी थीं। दोनों के चेहरों पर गहरी परेशानी के भाव झलक रहे थे।

राजेश्वर को देखते ही ख़ाला बड़ी आजिज़ी से बोली, "क्यों भय्या, तू तो अख़बार-वख़बार पढ़ता होवैगा। ज़रा यो तो बता कि पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में लड़ाई शुरू हो गयी क्या?"

राजेश्वर ख़ामोश रह गया। कितना अनपेक्षित प्रश्न है!

जयप्रकाश ने उत्तर दिया, "क्या करेगी ख़ाला? पाकिस्तान जावेगी क्या?"

"अरे भय्या ! मैं क्यों जाऊँ पाकिस्तान ! पाकिस्तान जावै मेरा गुट्ठा !" खाला ने तड़पकर कहा, "आग पड़े उत्तों पै, एक अगल का मुलक बनाकै बैठ गये और हिन्दू-मुसलमानों में चक्कू चलवा दिये। मेरा बस चलता तो जलगयों की मुंडी पकड़-पकड़के कतर लेत्ती।"

मुकद्दम चाचा के बाद पूरे शहर में खाला का ही नम्बर है। बक छूटी तो समझो कि आधा घण्टा गया।

राजेश्वर ने सोचा कि इसमें कुछ तथ्य जरूर होगा। तभी तो लाला हरीचन्द ने भी आज कॉलेज में अपने भाषण में इस ओर संकेत किया था।

जयप्रकाश ने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया, बोला, "लाला हरीचन्द के पास जो अखबार आता है खाला, उसमें ऐसी खबरें बहुत आती हैं। उनसे ही पूछिए।"

लाला हरीचन्द ने आज सारे अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने भाषण करते हुए कहा था, "आज देस को हुस्ट-पुस्ट नौजवानों की जरूरत है। कौन कह सकै किस बखत पाकिस्तान से लड़ाई छिड़ जावै। कोई मिनट जा रई है। ऐसी दसा में हमने जो कुसी-योजना चलायी थी सो कुछ सोच-समझ कै चलायी थी। आप लोगों की भलाई के लियो चलायी थी। मगर आप लोगों कू पसन्द नयी आयी तो हमने उसकू भी बन्द कर दिया। मगर अब आप लोग ये चाहूवें कि आप लोग हौस्टिल में कच्चा-पक्का खाना बनाके खावें, ब्रह्मचर्य का पालन ना करैं तो ये सब हम बर-दास्त नई करैंगे।"

जयप्रकाश के होंठों पर लालाजी का भाषण याद करके एक कुटिल-सी मुस्कराहट फैल गयी।

मास्टर ने उसकी बात को कोई महत्त्व नहीं दिया, इससे खाला हताश हो गयी थी। बोली, "तो भय्या, तुझे कुछ मालूम नइं?"

भादों की चिलचिलाती धूप में चलकर आयी हुई खाला पर जयप्रकाश को दया आ गयी। हँसकर बोला, "सब झूठ है, खाला ! कहीं लड़ाई नहीं हो रही ! तुझसे किसने कह दिया ?"

खाला को बड़ी राहत मिली। उनके सिर से जैसे एक बड़ा भारी बोझ उतर गया। एक लम्बी-सी साँस छोड़ती हुई बोली, "अब ले, मैं क्या

जानूं भय्या ! मुस्से तो इस फरीदे की अम्मा ने कया कि कोई अपसर इसके फरीदे का नाम फौज में लिखने के लियो आया था। सुनें हैं कहीं कश्मीर के बरफ़ में लड़ाई हो रई है। फौज्जियों के लियो रुई की बण्डी सिल्ली जावेंगी। इसलिए दर्जियों को भरती कर रई है सरकार।"

राजेश्वर और जयप्रकाश जोर से हँस पड़े। फौज़ियों के लिए रुई की बण्डी और दर्जियों की भरती !

बात यह थी कि फ़रीदे ने एक उषा मशीन खरीदकर छोटी-सी दुकान खोल ली थी। उधर खाला का इकलौता पोता भी पाकिस्तान चला गया है और वह भी वहाँ टेलर-मास्टर है।

जयप्रकाश और राजेश्वर की हँसी में तैरती हुई अविश्वास की लहरें फ़रीदे की अम्मा के विश्वास से जा टकरायीं। वह खाला से सटकर खिड़की के क़रीब आती हुई बोली, "ले री इन्हें अकीन ही नहीं आत्ता। मेरे तो घर आया था आज वो अपसर। जलगया पूछ रया था इस घर में कित्ते आदमी हैं ? और उनकी कित्ती उमर है ?"

"तो तूने क्या लिखवा दिया ?" राजेश्वर ने पूछा।

"मैंने तो कै दिया भय्या, इस घर में कोई जवान ना है, सब बुड्ढे ही हैं।" फ़रीदे की अम्मा ने आँखों में आँसू भर लाते हुए कहा, "देख रई हो, खाला ! ले-देके एक लोण्डा बचा है। उसे देखती आँख्खों कैसे झोंक दूं आग में ! न उसकी ऐसी तन्दुरस्ती है। तुझे तो मालूम ही है जब हमीदा था तो मैं खुद ही कहे करूँ थी कि इसे फौज में भेजूंगी।"

फ़रीदे की अम्मा की आंखों से झर-झर आँसू झरने लगे थे, और वह कहे जा रही थीं, "हाय ! कैसा कड़ियल जवान था मेरा बेट्टा ! रे भय्या, तुस्स क्या कहूँ ? खुद कहे करे था—अम्मा, मुझे फौज मे भेज दे। और उस दिन जो उनने आँखों में सुरमा लाड़ा, और सुरमा लाड़के जो चूड़ियों-दार पाजामा पैना और पाजामा पैनके जो चपकन पैनी, और चला बरात में कू, तो देखिए पड़ोस की लौंडिए छिप-छिपके देख्खें !...हाय ! जाने किस डायन की नज़र खा गयी मेरे छौन्ने को।"

हमीदे को पिछले साल एक बारात में हैजा हो गया था। तब फ़रीदा हिन्दू कॉलेज में पढ़ा करता था। जयप्रकाश को वह सारा किस्सा मालूम

है। हमीदे का स्वास्थ्य सचमुच बहुत अच्छा था। मगर फ़रीदे की फ़ौज में भरतीवाली बात उसे बिल्कुल निराधार लगी, अतः विषय पर आते हुए बोला, "फ़रीदे की अम्मा, यह बता जो लोग आज तेरे यहाँ आये थे, वे कैसे थे ? क्या उन्होंने फ़ौजी कपड़े पहन रखे थे ?"

फ़रीदे की अम्मा का कण्ठ अभी तक गीला था, "मुझे क्या मालूम जलगये क्या पैने थे ? मोटी-मोटी किताबें झोलों में भरे थ उत्ते। मैंन्ने तो दो रुपये देक्के जलगयों का मूँ काला कर दिया। अब अल्ला जाने क्या लिक्खा उत्तों ने, क्या नई लिक्खा !"

फ़रीदे की अम्मा और जाने कितनी गालियाँ देती कि राजेश्वर की समझ में बात आ गयी और उसने जयप्रकाश को बताया कि म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन के लिए वोटरों की लिस्ट तैयार हो रही है। उसी सिलसिले में लोग घूम रहे हैं।

...और बड़ी मुश्किल से फ़रीदे की अम्मा और खाला को समझा-बुझाकर जयप्रकाश ने यक़ीन दिलाया कि ऐसी कोई बात नहीं है। फ़ौज में ज़बरदस्ती भरती नहीं हुआ करती।

फ़रीदे की अम्मा को साथ लेकर खाला चली गयीं। जयप्रकाश और राजेश्वर फिर खाट पर आ पड़े।

आकाश पर बादल छा गये थे और हल्की-हल्की बूंदें पड़ने लगी थीं। जयप्रकाश के कमरे के पीछे किशनलाल की आढ़त की दुकान थी जिसका बड़ा-सा अहाता था। खिड़की के नीचे से रास्ता था जिससे होकर गुड़ और राब की गाड़ियाँ आढ़त पर जाती थीं।

बारिश तेज़ होते ही गुड़-चिपकी मिट्टी की अजीब-सी गन्ध जयप्रकाश के कमरे में घुस आयी। राजेश्वर ने कुछ सूँघकर पहचानने की कोशिश की तो जयप्रकाश बोला, "बेकार है। यह मिट्टी की सोंधी गन्ध नहीं है जिसे पहचानने की कोशिश कर रहे हो ! और न यह पसीने की महक है। यह तो माई शहर की बू है जिसे सूँघने पर सिर में दर्द होने लगता है।"

तभी राजेश्वर के ऊपर एक बूंद गिरी। पानी तेज़ हो गया था। उसकी नज़रें अनायास छत की ओर उठ गयीं। पानी की एक पतली-सी लकीर छत की दरार में से होती हुई एक गोल वृत्त बनाकर ठीक उसके

सिर के ऊपर बूंद-बूंद कर गिर रही थी।

"तुम्हारी छत से पानी रिसता है।" अपनी खाट एक तरफ़ को खिसकाते हुए राजेश्वर बोला।

"मेरी छत भी रिसती है और मेरी आत्मा भी। मगर मैं दोनों में से किसी की मरम्मत नहीं कर सकता। क्योंकि मैं दोनों चीज़ों में से किसी का भी मालिक खुद नहीं हूँ।" जयप्रकाश ने कहा और हाथ-पांव फैलाकर खाट पर लेट गया।

राजेश्वर ने देखा है कि जब कभी जयप्रकाश कोई ऐसी दर्दभरी बात कहता है, उसकी नसों में अजीब-सा तनाव और ऐंठन बढ़ जाती है। अतः प्रसंग बदलने की गरज़ से वह बोला, "अच्छा जयप्रकाश, यह बताओ, इस म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन में कौन-कौन खड़े होंगे?"

जयप्रकाश बैठा हो गया। यह उसकी रुचि का विषय है। बोला, "चेयरमैनशिप के लिए यों तो कई उम्मीदवार होंगे मगर लिख लो, मुक़ाबला सिर्फ़ दो में होगा।"

"किसमें?"

"लाला हरीचन्द और बाबू हरकरण सहाय में।"

"मगर हरकरण सहाय इलेक्शन लड़ेंगे?"

"नहीं।" जयप्रकाश ने धीरे से कहा, "उन्हें हम लड़वायेंगे।"

"मगर इधर तो लाला हरीचन्द तुम्हें बहुत मानने लगे हैं!" राजेश्वर ने जयप्रकाश को टटोलने के खयाल से पूछा।

'वह इसलिए···" जयप्रकाश कुछ सोचते हुए धीरे से बोला, "कि एक तो वह इलेक्शन लड़ेंगे, दूसरे गनेशीलाल का होटल किसी कीमत पर बन्द नहीं होने देना चाहते और तीसरे वह उत्तमचन्द से कुछ नाराज़ भी हैं।"

राजेश्वर ने और कुछ नहीं पूछा। आकाश में बादल गड़गड़ा रहे थे और वर्षा का वेग बढ़ता जा रहा था। वह बूंदों का संगीत सुनने की कोशिश करने लगा। तभी ज़ोर से बिजली कड़की और पूरे आसमान में गड़गड़ाहट का कर्ण-कटु निनाद इधर से उधर तक लुढ़कता चला गया।

तूफ़ान

सुबह स्टेशन जानेवाले यात्रियों और हिन्दू कॉलेज के अध्यापकों और छात्रों ने देखा कि इधर-उधर आम और नीम के कई पेड़ टूटे पड़े हैं। रास्ते में बेहद कीचड़ है और सड़क के दोनों ओर नालियाँ पानी से लबालब भरी हैं। सदासुहागन की झाड़ियाँ बिछ गयी हैं और छोटे तालाब के चारों ओर नृत्य-मुद्राओं में खड़ी कई खजूरें ज़मीन से उखड़ गयी हैं।

रात बहुत तेज़ तूफ़ान आया था।

कॉलेज का भी नक़्शा बदला हुआ-सा था। गूंगे हलवाई की कोठरी के सामनेवाला छप्पर उड़कर कॉलेज-गेट के सामने जा पड़ा था। और बराबर में खड़े तारों के खम्भे तिरछे हो गये थे। अन्दर कुछ कमरे बुरी तरह टपके थे, फलस्वरूप डेस्कों की स्याही बह-बहकर बेंचों तक पर आ गयी थी।

स्टेशन से कुछ फर्लांग के फ़ासले पर बिजली गिरी थी और एक पेड़ बुरी तरह झुलस गया था। सारी रात स्टेशन के खलासी घुटनों में मुँह दिये स्टेशन पर बैठे रहे। यहाँ तक कि पाइण्टमैन केबिन तक नहीं पहुँच सका और मालगाड़ी एक घण्टे तक सिगनल पर खड़ी रही।

इतना सब-कुछ एक रात में हो गया। सुबह धरती और आकाश के संघर्ष के कुछ चिह्न अवशेष थे और स्टेशन पर लोग उस तूफ़ानी रात की चर्चा कर रहे थे।

मगर कॉलेज में आज भी नये प्रिंसिपल की नियुक्ति पर ही ज्यादा बातचीत होती रही।

किसी को मालूम नहीं हुआ कि कब नये प्रिंसिपल साहब आये! कब उनका इण्टरव्यू हुआ! और कब उन्होंने चार्ज लिया! बस उस दिन प्रार्थना में वह चुपचाप अध्यापकों के बीच आ खड़े हुए और प्रार्थना खत्म होते ही उन्होंने छात्रों को सम्बोधित करके एक औपचारिक-सा भाषण दिया।

कई अध्यापकों को इतना तो मालूम था कि अब उत्तमचन्दजी शायद प्रिंसिपल नहीं रह सकेंगे। मगर इतनी शीघ्र और आकस्मिक ढंग से सब-

कुछ हो जायेगा, यह किसी ने भी न सोचा था। किन्तु अब जो हो गया उसे यथावत स्वीकार करने का प्रश्न था। इसलिए क्या छात्र और क्या अध्यापक, सभी आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टि से नये प्रिंसिपल को परखने लगे।

"मानना पड़ेगा कि पर्सनैलिटी उत्तमचन्दजी से अच्छी नहीं है।"

"अरे, पर्सनल्टी क्या? बोलना भी नहीं आता!" दूसरे लड़के ने कहा।

"बिल्कुल चुग़द है। ऐसे ही आदमी को लेना था, तो अपने शास्त्रीजी भी क्या बुरे रहते?" किसी तीसरे ने रिमार्क दिया। और घण्टों तक लड़के नये प्रिंसिपल के विषय में चर्चा करते रहे।

टीचर्स-रूम में बैठनेवाले अध्यापकों को भी नये प्रिंसिपल का व्यक्तित्व न तो आकर्षक लगा था और न प्रभावशाली ही। वे भी प्रिंसिपल के बारे में ज़रा शिष्ट ढंग से विद्यार्थियों जैसी ही बातें कर रहे थे।

प्रिंसिपल की नियुक्ति पर सबसे ज़्यादा स्तम्भित जयप्रकाश था और जिस वक्त टीचर्स-रूम की चिक उठाकर मास्टर उत्तमचन्द भीतर घुसना चाहते थे उस वक्त वह स्पष्ट और निर्भीक शब्दों मे घोषणा कर रहा था, "चाहे मेरे उत्तमचन्दजी से कितने ही मतभेद रहे हों, पर इतना मैं लाखों में कहूँगा कि उत्तमचन्दजी योग्य टीचर और योग्य एडमिनिस्ट्रेटर थे और उनका व्यक्तित्व खुद-बखुद रेस्पेक्ट (इज़्ज़त) कमॉण्ड करता था।"

उत्तमचन्द बाहर ही ठिठक गये और उस वक़्त अन्दर गये जब उनकी बजाय बातें नये प्रिंसिपल के सम्बन्ध में होने लगीं। चिक उठाकर टीचर्स-रूम में दाखिल होते हुए और अनजान बनते हुए उन्होंने कहा, "कहिए, किस टापिक (विषय) पर डिस्कशन (बहस) हो रहा है?"

आदत के अनुसार सारे अध्यापक उठकर खड़े हो गये। सिर्फ़ राजेश्वर कुर्सी से ज़रा उठकर पुनः बैठ गया। सत्यव्रत की कुर्सी दरवाज़े के बिल्कुल पास थी और उसकी पीठ दरवाज़े की तरफ़ थी। अन्य अध्यापकों को उठते देख उसने मुड़कर पीछे देखा और जल्दी से उठने लगा तो उत्तमचन्द ने उसे ही पकड़ लिया, "देखिए!" उन्होंने सत्यव्रत को कुर्सी में बिठाकर

खुद एक खाली कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "अब मुझसे आप लोग बराबर के लेविल (स्तर) पर मिला कीजिए। अगर इतनी दूरी बरतेंगे तो मैं आप लोगों के बीच कैसे बैठ पाऊँगा ? मैं भी तो आप ही की बिरादरी का हूँ, भाई !"

टीचर्स-रूम में एक क्षण को ऐसी खामोशी छा गयी जैसे कोई अनहोनी घटना घट गयी हो। बाहर के आँगन से आती हुई लड़कों की आवाज़ें भी थोड़ी देर जीकर उस वातावरण में दम तोड़ देती थीं। मगर ऐसा तनाव ज़्यादा देर नहीं टिका, क्योंकि पाँच मिनट के अन्दर ही उत्तमचन्द ने फ़ासलों की सारी दीवारें तोड़ दीं और अध्यापकों में ऐसे घुल-मिल गये जैसे एक पालतू पक्षी फिर अपने झुण्ड में आ मिलता है। उनके व्यवहार से लगने लगा जैसे कभी वह प्रिंसिपल रहे ही न हों। टीचर्स-रूम में फिर ठहाके गूंजने लगे और जयप्रकाश ने एक बीड़ी निकालकर सुलगा ली।

मास्टर उत्तमचन्द ने पुनः चर्चा पर आते हुए जयप्रकाश से पूछा, "कहिए ! कैसे लगे नये प्रिंसिपल साहब ?"

"अच्छे हैं !" राजेश्वर ने उत्तर दिया।

"इन्स्पेक्टर साहब के रिश्तेदार हैं इसलिए योग्य तो होंगे ही, साथ ही एडमिनिस्ट्रेटिव (प्रशासनिक) मामलों में भी कुशल होंगे। और स्कूल को ग्राण्ट (अनुदान) वग़ैरह दिलाने में भी सहायक होंगे।" जयप्रकाश ने सरलता से कहा।

उत्तमचन्द होंठों में ही मुस्करा दिये। उनसे अधिक जयप्रकाश को कोई नहीं समझता। वह उस दिन पवन बाबू से कह रहे थे, "अगर मैं खुदा-न-खास्ता मिनिस्टर हो जाऊँ तो इस जयप्रकाश को अपना पी० ए० बना लूं।"

उत्तमचन्द समझ गये कि इस विषय पर इससे ज़्यादा चर्चा सम्भव नहीं, इसलिए सत्यव्रत की ओर घूम गये, "और आपके हॉस्टल के क्या हाल हैं, मास्टर साहब ?"

"ठीक हैं जी !" सत्यव्रत ने विनयपूर्वक बिना सोचे-समझे कहा।

"जहां आपने छोड़ा था, वहीं है।" जयप्रकाश कुछ ठहरकर मुख-मुद्राओं से वाक्य का व्यंग्य उभारते हुए बोला, "लड़के कमबख्त अपनी

हेल्थ (स्वास्थ्य) के प्रति इतने लापरवाह हैं कि मोहन बाबू के होटल पर खाना खाने को तैयार ही नहीं होते। देखिए मास्टर साहब! कितनी बुरी बात है! है न?"

बात मास्टर उत्तमचन्द से कही गयी थी। उन्हें अपनी सफ़ाई और उत्तर देना पड़ा, बोले, 'मैं समझता हूँ अपनी बुराई-भलाई लड़के खुद भी समझ सकते हैं। हम उन्हें किसी बात के लिए फ़ोर्स (बाध्य) क्यों करें?"

"मगर लोग करते हैं।" अचानक राजेश्वर ने सिगरेट के धुएँ का छल्ला जयप्रकाश के मुँह की ओर छोड़ते हुए कहा, "और जो कहते हैं कि नहीं करना चाहिए, वे भी करते हैं।"

अपनी सिगरेट में मशगूल राजेश्वर ने बिना सोचे-विचारे इतनी सीधी चोट कर दी थी कि जयप्रकाश तक को बुरी लगी। किन्तु मास्टर उत्तमचन्द ने जैसे बुरा नहीं माना। पूर्ववत मुस्कराते हुए वह बोले, "आप मुझसे नाराज़ हैं, राजेश्वरजी, वरना मुझे इतना ग़लत न समझते। मेरी जगह अगर आप होते, तो 'रियलाइज़' (महसूस) करते कि कुछ काम आदमी अपनी इच्छा से करता है, कुछ अनिच्छा से। कुछ उससे उसकी कुर्सी कराती है और कुछ कोई और। और मैं कह भी क्या सकता हूँ?'

जयप्रकाश ने मास्टर उत्तमचन्द का ज़ोरदार समर्थन किया। और बात खत्म हो गयी क्योंकि तभी चपरासी ने आकर मास्टर उत्तमचन्द से बताया कि प्रिंसिपल साहब उनको याद कर रहे हैं। पहला इण्टरवल खत्म होने ही वाला था।

दूसरा इण्टरवल समाप्त हुआ तो नींबू की बगिया से उठकर लड़के अपनी-अपनी कक्षाओं की ओर भागने लगे थे। अध्यापक भी रजिस्टर सँभालते हुए अपनी-अपनी कक्षाओं की ओर निकल पड़े। किन्तु गूंगे की कोठरी में एक बेंच पर रामपूजन, उम्मेदसिंह, ज्ञानसिंह, ताहरसिंह और एक-दो और हॉस्टल के लड़के बैठे रहे।

थोड़ी देर पहले रामपूजन को प्रिंसिपल की ओर से दुराचरण के लिए लिखित चेतावनी मिली थी, जिसमें उसको अनुशासनहीन होने और

अध्यापकों के आदेशों की अवज्ञा करने के अपराध में कॉलेज से निकालने की धमकी दी गयी थी। शायद नया प्रिंसिपल आते ही लड़कों पर रौब जमाना चाहता है।

गूंगे की कोठरी में बैठे वे पांचों छात्र मास्टर जयप्रकाश के सुझाव पर बहस कर रहे थे। उम्मेदसिंह का कहना था कि इस मामले में परामर्श के लिये उत्तमचन्द के पास जाने का कोई मतलब नहीं होता। मगर रामपूजन की राय दूसरी थी। वह जयप्रकाश में गहरा विश्वास रखता है। यों सभी लड़के जयप्रकाश को आदर की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु रामपूजन की श्रद्धा अटूट है। जयप्रकाश की बुराई करने पर ही उसने उस दिन पवन बाबू के भतीजे की ठुकाई कर दी थी और पांच रुपये जुर्माने के भरे थे।

अभी जब रामपूजन को चेतावनी मिली तो वह सीधा जयप्रकाश के पास गया था। वह मानसिक तनाव की स्थिति में था और नये प्रिंसिपल के बारे में धीरे-धीरे कुछ बड़बड़ा रहा था। जयप्रकाश फ़ौरन क्लास छोड़कर बाहर आ गया था और उसकी मनःस्थिति को भांपते हुए उसके कन्धे थपथपाकर समझाते हुए कहा था, "देखो, इसमें प्रिंसिपल का कोई हाथ नहीं है। और न कोई ऐसी बात है जिसे लेकर इतना परेशान हुआ जाये। यह सारा चक्कर तो वही हॉस्टल में खाना बनवाने का है। तुम लोग होटल में खाना शुरू कर दो तो अभी सब ठीक हो जाये। बस, तुम्हें ज़रा डरा-धमका रहे हैं।"

"तो ?" रामपूजन ने पूछा।

"तो क्या ? तुम जवाब दो इसका।" जयप्रकाश ने उत्तर दिया। और एक क्षण के लिए कहते-कहते कुछ सोचने लगा।

रामपूजन आशा करता था कि जयप्रकाश शाम को आने के लिए कहेंगे। तभी जयप्रकाश ने उसका कन्धा दबाते हुए धीरे से कहा, "तुम एक काम करो। इस इण्टरवल के बाद उत्तमचन्दजी का पीरियड खाली है और वह पवन के कमरे में मिलेंगे, तुम वहीं चले जाना। और उन्हीं से पूछना कि इसका क्या जवाब लिखूं ? जो वह पूछें, उसका सच-सच जवाब देना और शाम को मुझसे मिलना।"

मगर इण्टरवल खत्म हो गया और अभी तक यह तय नहीं हुआ कि

रामपूजन उत्तमचन्द के पास जाये या न जाये।

आखिर रामपूजन बोला, "जब जयप्रकाशजी ने कहा है तो कुछ सोच-समझकर ही कहा होगा। मैं उत्तमचन्द के पास हो तो आऊँ!"

जयप्रकाशजी ने कहा है, सो किसी ने प्रतिवाद नहीं किया। हाँ, मन-ही-मन सबने महसूस किया कि उत्तमचन्द के पास जाना एकदम निरर्थक है।

जब गूंगे की दुकान के चबूतरे का सहारा लेकर रामपूजन अपने कीचड़ से सने जूते पहनकर जाने लगा, तो गूंगा अपनी चौड़ी-चकली छाती पर हाथ फेरकर जाते हुए रामपूजन की ओर उंगली उठाकर होंठों से 'चुच-चुच' करके चूमने लगा। ताहर्रसिह ने देखा और सबका ध्यान आकृष्ट किया।

गंगे ने दोनों हथेलियों को दो-तीन फुट के फ़ासले से ऊपर-नीचे करके क़द की लघुता का इशारा किया और आँखों में चमक भरकर मुस्करा दिया। आशय था कि अपने बचपन में रामपूजन नमकीन रहा होगा। सारे लड़के हँस पड़े। उम्मेदसिंह गूंगे के पास आकर हथेली में उँगली रगड़ते हुए एक गन्दा-सा इशारा करके बोला, "साले, लेने-के देने पड़ जायेंगे! कहाँ का शौक़ चर्राया है?"

और इस पर चारों लड़के भी वहीं उठ आये। ज्ञान ने मज़ाक़ में गूंगे के गालों पर हाथ फेर दिया तो एक सिलसिला ही शुरू हो गया। गूंगा अपने नौकर के साथ शीरे में हाथ साने था। इस बदतमीजी से चिढ़कर वह ज़ोरों से प्रतिवाद करने लगा और लड़कों को वहाँ से खिसकना पड़ा।

कॉलेज के अहाते में अजीब शान्ति थी। नये प्रिंसिपल राउण्ड पर थे और सब कक्षाओं के सामने से घूमते हुए ऊपर की तरफ़ जा रहे थे। पवन बाबू प्रिंसिपल के कमरे में रजिस्टर लिये बैठे कुछ हिसाब-किताब कर रहे थे। कमरों से अध्यापकों के पढ़ाने की आवाज़ें आ रही थीं।

उत्तमचन्द को यदि अचानक अपने प्रिंसिपल होने की सूचना मिलती तो भी इतना आश्चर्य न होता जितना रामपूजन के चेतावनी-पत्र दिखाने और फिर यह पूछने पर हुआ कि इसका क्या जवाब दूं! वह सोचने लगे

कि इसके इतने बड़े विश्वास का आधार क्या है ? चेतावनी को देखते हुए उन्होंने बहुत याद करने की कोशिश की कि कोई एक ऐसा अवसर याद आ जाये जब उन्होंने इस विद्यार्थी का हित सोचा हो। अथवा कोई ऐसी घटना जब इस विद्यार्थी ने ही उनमें विश्वास प्रकट किया हो

गाँव और शहर को लेकर पिछले दिनों जो विवाद चला था उसमें रामपूजन ने शहरी लड़कों के साथ उत्तमचन्द की भी बुरी तरह आलोचना की थी। जयप्रकाश के साथ झगड़े में भी हमेशा इसने जयप्रकाश का ही साथ दिया था। और कृषि-योजना को समाप्त करने में भी यही सब छात्रों का लीडर था। फिर ··इतना बड़ा विश्वास यह मुझे कैसे सौंपे दे रहा है ?

रामपूजन ने फिर पूछा, "इसका क्या जवाब दूँ, मास्टर साहब ?"

"इसका जवाब ?" उत्तमचन्द ने कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे कहा, "जयप्रकाशजी से पूछा था ?"

"उन्होंने ही तो मुझे आपके पास भेजा है !" रामपूजन ने सहज उत्तर दिया।

"जयप्रकाश ने ?" उत्तमचन्द की भौंहें विस्मय से ऊपर उठीं और सिकुड़ गयीं।

रामपूजन ने स्वीकारात्मक गर्दन हिलायी। उत्तमचन्द सोच-विचार में पड़ गये। रामपूजन सामने मेज़ पर हाथ रखे खड़ा था। अभी थोड़ी देर पहले जयप्रकाश यहाँ रजिस्टर रखने आया था तो वह भी इसी मुद्रा में खड़ा हो गया था और बात चली थी तो आँखों में ऐसा ही विश्वास लिये हुए उसने कहा था, "आपने मुझ पर कभी भरोसा नहीं किया, मास्टर साहब ! दरअसल आपकी और मेरी दिशा एक ही है। हम दोनों एक ही जाल से निकलना चाह रहे हैं, परन्तु हमारे प्रयत्नों में और एप्रोच में अन्तर है ! आप अकेले निकलना चाहते हैं और मैं अपने सारे साथियों के साथ··· उनके विश्वास की रक्षा करते हुए।"

"कौन-सा जाल ?" हँसकर उत्तमचन्द ने पूछा था।

"वही, जिसे पहचानते और सार्वजनिक रूप से स्वीकारते हुए आप

कतराते हैं। वरना आपमें और मुझमें विरोध कहाँ है ? और कहाँ फ़ासला है ? जिस दिन जाल को स्वीकार कर उसके फन्दों को काटने में आप मेरा हाथ बँटाने लगेंगे उस दिन हम फिर एक-के-एक हो जायेंगे। बस, बात ज़रा-से विश्वास की है।"

रामपूजन को प्रश्नसूचक दृष्टि से सामने खड़े देखकर उत्तमचन्द को महसूस हुआ कि आज किसी पर ज़रा-सा विश्वास करना भी कितना कठिन है। और फिर उसके दिमाग़ में निश्छल आत्मीयता से कहे हुए जयप्रकाश के शब्द गूंज उठे, "मगर सन्देह और संशय के इस वातावरण में आज किसी पर ज़रा-सा विश्वास करना मुझे भी 'रिस्की' लगता है। पर क्या करें ? ज़िन्दगी ही खुद एक 'रिस्क' है और बिना 'रिस्क' लिये आदमी ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

"ठीक है !" रामपूजन को सम्बोधित करते हुए बहुत देर बाद कुछ निर्णयात्मक स्वर में उत्तमचन्द ने कहा, "मैं सोचकर बताऊँगा। अभी कोई जल्दी नहीं है। शाम को जयप्रकाशजी के कमरे में मिलना।"

"जयप्रकाशजी के कमरे में ?" रामपूजन ने विस्मित होकर दुहराया और कमरे से बाहर निकल गया।

मोड़

शाम की डाक से सत्यव्रत के दो लिफ़ाफ़े आये। वह दोनों के पते देखकर हस्तलिपि पहचानने की कोशिश करने लगा। इस लिफ़ाफ़े पर लड़की की लिखावट है, सत्यव्रत ने सोचा—यह तो ज़रूर विमला का ही है। मगर दूसरी हस्तलिपि को वह कोशिश करने पर भी नहीं पहचान पाया। टेढ़े-मेढ़े काँपते हाथों से लिखे हुए अक्षर और उन पर भी पाई नहीं।

सत्यव्रत ने पहले वही लिफ़ाफ़ा खोला। विमला के लिफ़ाफ़े में क्या होगा, वह जानता था। परसों भी उसने जो कापी जाँचने को दी थी उसमें एक पत्र लिखा हुआ था, "मेरी कल्पनाओं के क्षितिज ! तुम भी कितने अजीब हो ! इतना आगे बढ़ आने पर मुझसे कहते हो कि पीछे लौट

जाऊँ। तुम्हें अपने घर न बुलाऊँ, तुमसे बात न करूँ? सच, कितने क्रूर हो तुम!···जानती हूँ जिस राह पर हूँ वह सरल नहीं है, और न मंज़िल तक पहुँचानेवाली। पर ऐसा भी नहीं कि इसमें दुख ही हों, सुख भी तो है।"

सत्यव्रत ने कापी लौटा दी थी। वह आपाद-मस्तक सिहर उठा था। यह लड़की प्रणय की कितनी गहन अनुभूति से अनुप्राणित है! एक क्षण के लिए उसे खुशी भी हुई थी यह सोचकर कि उसके व्यक्तित्व में ज़रूर कुछ ऐसा है जिसे कोई इतनी तन्मयता से प्यार करता है। किन्तु दूसरे ही क्षण वह भाव तिरोहित हो गया और नैतिकता एवं कर्तव्य के बड़े-बड़े प्रश्न उसके सामने आ खड़े हुए थे। सत्यव्रत ने उत्सुकता से दूसरे पत्र की तह खोली। बड़ी अस्पष्ट और अपठनीय-सी देवनागरी लिपि में दस-बारह पंक्तियाँ लिखी थीं—

"ब्रह्मचारी सत्यव्रत को स्वामीजी के शतशः आशीर्वाद!

हमने तुम्हारे पत्र को सुना और अनुभव किया कि तुम्हारी आत्मा में प्रबल अन्तर्संघर्ष है। संघर्ष स्वतः ज्ञान और प्रकाश की ओर प्रेरित करता है। हमारा तो यही आशीर्वाद है कि अपनी अन्तरात्मा की पुकार पहचानो। हृदय जिसे सत्य कहे, उसे स्वीकार करो। अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहो। अन्ततः सत्य ही विजयी होता है।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'।

स्वामीजी का कथन है कि जिस प्रकार निर्झर पाषाणों के हृदय से फूटकर उत्तप्त धरती की तृषा शान्त करता है उसी प्रकार तुम भी अपने ज्ञान के आलोक को सर्वत्र फैल जाने दो। स्वामीजी अभी अस्वस्थ हैं। तुम्हारी सफलता हेतु अनेक मंगल-कामनाएँ। —ब्रह्मचारी···"

बहुत प्रयत्न करने पर भी सत्यव्रत, ब्रह्मचारी का नाम नहीं पढ़ पाया। पर पत्र पढ़कर फिर भी उसे सन्तोष हुआ। अस्वस्थ होने के बावजूद स्वामीजी ने उसे पत्र लिखवाया—यही उनके स्नेह का कितना बड़ा प्रमाण है। वह तो उत्तर की आशा ही छोड़ चुका था।

और यह विमला का पत्र!

सत्यव्रत चटाई पर लेट गया। पत्र बहुत लम्बा था। कापी के आठ पृष्ठ दोनों ओर लिखे हुए थे।

"प्रिय प्राण !

अब तो लगता है सारा सोचना-विचारना केवल एक ही व्यक्ति तक केन्द्रित हो गया है। चलते-फिरते, उठते-बैठते और यहाँ तक कि सपनों में भी वही एक व्यक्ति रहता है! जानते हो वह कौन है? वह हो तुम..."

सत्यव्रत को यह 'तुम' बहुत अखरता है। कुछ भी हो विमला उसकी शिष्या है। और किसी शिष्य की ऐसी धृष्टता कि वह अपने गुरु को 'तुम' कहकर सम्बोधित करे, सत्यव्रत को असह्य है। वैसे सामने वह हमेशा उसे आप कहती है लेकिन जब लिखती है तो तुम पर आ जाती है और सत्यव्रत डाँटने या समझाने तक से मजबूर हो जाता है। उसने निश्चय किया कि कुछ हो आज शाम को वह ज़रूर उससे कहेगा...मगर तभी सत्यव्रत को ध्यान आया कि शाम होने में देर ही कहाँ है! चार-साढ़े-चार तो बज ही रहे होंगे। और विमला अभी से कपड़े बदलकर बाहर के कमरे में आ बैठी होगी।

विमला के सन्दर्भ में अक्सर सत्यव्रत को अपनी बहन की याद आ जाती है। वह भी इतनी ही बड़ी है मगर कितनी मासूम और कितनी भोली! पिछले रविवार को सत्यव्रत गाँव गया था और उसने मज़ाक-ही-मज़ाक में उसकी शादी का जिक्र कर दिया था तो वह रोने लगी थी। और घण्टों रोती रही। तब उसने और माँ ने दोनों—समझाया था और बड़ी मुश्किल से जाकर वह चुप हुई थी।

और विमला ने लिखा है, "जी जाने कैसा-कैसा होता है। मन करता है कहीं भाग जाऊँ? पर कहाँ? कुछ भी समझ में नहीं आता। इस स्थिति से छुटकारे का कुछ उपाय तुम्हीं बता दो ना!"

फिर 'तुम'! सत्यव्रत ने सोचा, 'बिना माँ की लड़कियाँ कितनी जल्दी जवान और कितनी अधिक स्वच्छन्द हो जाती हैं। इनकी तो सोलहवें वर्ष में पाँव रखते ही शादी कर देनी चाहिए।'

चौधरी नत्थूसिंह के मकान के बाहरी हिस्से में हुई बातें अक्सर उसकी कोठरी में सुनायी पड़ती हैं। और जब वह कोठरी का बाहरी दरवाज़ा खोल देता है तब तो बिल्कुल साफ़ सुनायी पड़ती हैं। मगर उसने कभी उन लोगों को विमला के विवाह के बारे में बातें करते नहीं सुना।

जव चौधरी नत्थूसिंह के वड़े लड़के ने अपनी दुकान, पास के चौराहे पर पोस्ट-ऑफिसवाले मकान में खोलने की इच्छा प्रकट की थी तो चौधरी नत्थूसिंह और उसकी माँ ने उस डॉक्टर लड़के का कड़ा विरोध किया था। चौधरी साहब का इरादा उस मकान को फिर से किराये पर उठा देने का था। पर लड़का अपनी पत्नी को लेकर उसमें चला जाना चाहता था। उसका कहना था कि पोस्ट-ऑफिस बदल जाने के बाद अब कौन उसे इतने अच्छे किराये पर लेगा? मगर चौधरी साहब का खयाल था कि चीज़ खाली होती है तो काम भी आ ही जाती है, आखिर लाला हरीचन्द के घेर में हॉस्टल बन ही गया। परन्तु लड़का नहीं मान रहा था। उसका विचार था—यह जगह ज़रा एक तरफ़ पड़ती है। और मरीज़ यहाँ आने की बजाय नसरुल्ला हकीम के यहाँ चले जाते हैं जो शहर के बीचोबीच पड़ता है। फिर हॉस्टल के लड़कों का तो कोई फ़ायदा हुआ नहीं। कमबख्त बीमार ही नहीं पड़ते। इस बात पर चौधरी नत्थूसिंह भी कुछ दुखी प्रतीत हुए कि हॉस्टल खुलने से उनके लड़के की प्रैक्टिस पर जो अनुकूल प्रभाव पड़ना चाहिए था वह नहीं पड़ा। अगर उन्हें पहले से यह बात मालूम होती तो वह भला अपने-आप अपने घर के बराबर में हॉस्टल खोलने की बात सुझाते? जिसके घर में जवान लड़की हो वह भला ऐसा पड़ोस बसायेगा!

सत्यव्रत ने ये सारी बातें अनायास सुन ली थीं और उसे एक झटका-सा लगा था।

उस दिन सत्यव्रत को पहली बार चौधरी साहब के हॉस्टल-सम्बन्धी विचार मालूम हुए। कितना हीन स्वार्थ है इनका—उसने सोचा। और उस दिन पहली बार उसने चौधरी साहब के मुँह से विमला के जवान होने की बात सुनी, वरना वह तो उसे दूधपीती बच्ची ही समझते थे।

उस रात देर तक चौधरी साहब के घर बहस होती रही थी। विमला को छोड़कर सबने डॉक्टर लड़के के घर बदलने का विरोध किया था, पर कोई नतीजा नहीं निकला। वह अगले दिन ही अपनी पत्नी को लेकर उस मकान में चला गया और यहाँ रह गये चौधरी साहब, उनकी बूढ़ी माँ और विमला। उस दिन से विमला और उन्मुक्त हो गयी है। घण्टा-घण्टा

भर पिछले ज़ीने पर खड़ी होकर सत्यव्रत की कोठरी की ओर देखती रहती है। कपड़े फैलाने, कपड़े उतारने और धूप सेंकने के जाने कितने बहाने बनाकर वह दिन में दस-दस बार कोठे पर जाती है और सत्यव्रत की ओर देखकर, मुस्कराकर, सिर पर हाथ फेरकर नमस्कार करती है।

सत्यव्रत की कमज़ोरी है कि वह अपनी कोठरी का उधर का दरवाज़ा बन्द नहीं कर पाता। उसने कई बार स्वयं अपना विश्लेषण करने की कोशिश की है कि वह ऐसा क्यों नहीं कर पाता और हर बार उसे यही महसूस हुआ कि दूसरे की आत्मा को दुख न देने का भाव ही इसके मूल में है। वरना स्वयं सत्यव्रत ने आज तक न तो कभी उसकी नमस्ते का जवाब दिया और न टकटकी बाँधकर उसकी ओर देखा।

अपने पत्र में इस बात की भी उसने बहुत शिकायत की है: "मैं ही पागल हूँ, जो घण्टे-घण्टेभर छत पर खड़ी एक झलक देखने को तरसती हूँ। सच, पुरुष-जाति ऐसी निर्मोही और निष्ठुर होती ही है। देख लेना, किसी दिन इसी छत से कूदकर प्राण दे दूंगी।"

सत्यव्रत समझ नहीं पाता कि अपने-आप ही यह मामला इतना गम्भीर कैसे होता जा रहा है! अपनी आत्मा में वह निष्कलुष और निष्पाप है। उसने कभी विमला को छूते या उसका संस्पर्श प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। हां, इतना ज़रूर हुआ कि विमला ने स्पर्श के जो प्रयत्न किये उनके लिए वह उसे खुलकर मना नहीं कर पाया। शुरू में तो उसने दबे शब्दों में मना किया भी परन्तु अब···अब तो वह बिल्कुल प्रतिवाद नहीं करता। वह तो विमला के आचरण को···और सम्पूर्ण विमला को अपनी ब्रह्मचर्य भावना के लिए एक चुनौती मानकर चलता है। यह सच है कि विमला का सामीप्य उसे भला लगता है—उसका मन डाँवाडोल हो उठता है क्षणों के लिए। किन्तु उसका बाह्य व्यक्तित्व पर्वत की तरह अविचलित, शान्त और स्थिर रहता है। हवा के सुगन्धित और तेज़ झोंके, असफल-से मंडराते और टकराते हैं। वह खुद को जाने कितनी बार समझा चुका है कि अगर हिला तो वह पर्वत क्या, धूल भी नहीं रह जायेगा। उसके संस्कार, संयम, शिक्षादीक्षा सबका अस्तित्व अकारथ हो जायेगा।

एक क्षण के लिए सत्यव्रत ने सोचा कि अगर अपनी असफलता से

क्षुब्ध होकर विमला सचमुच कोठे से कूद पड़े तो इसका दायित्व किस पर होगा ? मगर दूसरे ही क्षण उसे यह विचार असम्भावित-सा लगा। फिर भी उसने अपने हॉस्टल के आँगन से विमला की छत की ऊँचाई का अनुमान लगाने के लिए कोठरी का अन्दर का दरवाज़ा खोल दिया। चालीस-पचास गज़ लम्बे-चौड़े सहन के दूसरे कोने में कुछ विद्यार्थी खाट बिछाये बैठे गप्पें कर रहे थे और रामपूजन, उम्मेद और ताहरसिंह वग़ैरह कहीं से मुदगर ले आये थे—उसे घुमाकर देख रहे थे। धूप के साये आँगन से उड़कर छत की मुंडेर पर जा बैठे थे और उन्हीं के बीच खड़ी विमला एकटक सत्यव्रत की कोठरी की ओर देख रही थी। ज्योंही दरवाज़ा खुला, विमला ने सत्यव्रत की ओर मुस्कराकर सिर पर हाथ फेरा और आगे झुक आयी। घबराकर सत्यव्रत ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। तभी नीचे से विमला की दादी की कराहती हुई-सी अत्यन्त धीमी आवाज़ आई, "विमला ऽऽ, ओऽ विऽमला ऽऽ !" और फिर यही आवाज़ कराह से क्रमशः कड़क में बदलती हुई, तीखी और तेज होती गयी, "अरी ओ विमला, ओ विमला की बच्ची ! अरी, कहाँ मर गयी री ! कहाँ मुँह काला करने चली गयी ?"

और दाँत भींचकर किचकिचाती हुई बुढ़िया की आवाज सुनते ही मुदगर घुमाते हुए उम्मेद और ज्ञानसिंह लपककर बीच आँगन की ओर भागे ताकि वे विमला का दीदार कर सकें। वे जान गये हैं कि जब दादी इस तरह किचकिचाती है तो ज़रूर विमला छत पर होती है।

सत्यव्रत की हिम्मत फिर अन्दर का दरवाज़ा खोलने की नहीं हुई। न और दिनों की तरह वह लड़कों को उधर देखने से मना ही कर सका। वह किस बूते पर मना करे ! लड़कों का कोई भरोसा है, जाने क्या कह दें ? उसने फुर्ती से कपड़े बदले, खत मोड़कर जेब में रखा; कमरे में ताला डाला और विमला को पढ़ाने चला गया।

विमला ने शलवार-कमीज़ पहन रखी थी। सत्यव्रत को आते देखकर फ़ौरन मूढ़े पर से उठी और नमस्ते करके अपनी कुछ पुस्तकें लेने के

लिए अन्दर चली गयी। जाते-जाते उसने ओढ़नी के छोर को पूरा पीछे की ओर खिसकाकर फिर कुछ इस तरह आगे खींचा कि सत्यव्रत की दृष्टि बरबस उसकी नयी वेश-भूषा की ओर आकृष्ट हो गयी।

इस परिधान में विमला सत्यव्रत को आकर्षक लगी। पंजाबियों की यही विशेषता सत्यव्रत को पसन्द आयी है। कपड़ों की उन्हें तमीज़ है। जब वह हरिद्वार में था तब अक्सर पंजाबी लड़कियों को इस परिधान में देखा करता था और सोचता था कि पहनावा आदमी के व्यक्तित्व को कितना उभार देता है। और यही बात उसने विमला को देखकर सोची।

"क्या सोच रहे हैं मास्टर साहब ?" विमला ने किताब-कापियों को मेज़ के कोने पर लगाते हुए पूछा।

सत्यव्रत चौंक उठा। उससे झूठ नहीं बोला गया, "तुम्हारे वस्त्रों के विषय में सोच रहा था।"

"आपको तो यह पहनावा पसन्द नहीं होगा ?" विमला ने गहरी उत्सुकता से पूछा।

"नहीं तो।" सत्यव्रत ने उत्तर दिया, "मेरे और साथियों को इस परिधान के सम्बन्ध में अवश्य आपत्ति रही है, किन्तु मैं तो वस्त्रों को व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग मानता हूँ। जो वस्त्र व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाये उसे ही अच्छा समझता हूँ।"

"अच्छा, मैं आपको कैसी लगती हूँ इन कपड़ों में !" विमला ने लजाते हुए भी पूछ ही लिया।

सत्यव्रत बगलें झाँकने लगा। झूठ बोलने का उसे अभ्यास नहीं, सत्य कहकर वह विमला को और निकट नहीं खींचना चाहता। इतना सामीप्य ही उसके सयम को भारी पड़ रहा है। बोला, "किताबें निकालो।"

विमला उदास हो गयी। नारी अपने सौन्दर्य के विषय में पुरुष की उदासीनता बरदाश्त नहीं कर पाती। बुझी-सी आवाज़ में बोली, "मैं जानती हूँ मैं आपको अच्छी नहीं लगती। लेकिन मैंने तो कपड़ों के बारे में पूछा था।"

सत्यव्रत ने विमला की आँखों में छलछलाता हुआ जल और उसकी वाणी में सिसकती हुई व्यथा, दोनों को एक साथ अनुभव किया। और दया और प्रेम की भावना से अभिभूत होकर वह बोला, "तुम मुझे सदैव उलटा समझती हो विमला! मैंने तो पहले ही कहा कि ये कपड़े मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। इनसे व्यक्तित्व में चापल्य और उभार आ जाता है।"

विमला की आँखों का जल कपोलों पर आ गया, बोली, "कपड़े ही अच्छे लगते हैं न! मैं तो बुरी..."

"नहीं विमला!" सत्यव्रत ने अनायास उसकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "तुम...तुम्हें कैसे बताऊं कि तुम मुझे कितनी अच्छी लगती हो! और अगर अच्छी न लगतीं तो...!" सत्यव्रत जाने क्या कहना चाहता था और क्या कह गया! उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह इस पगली लड़की को कैसे सान्त्वना दे।

विमला ने झट उसका बढ़ा हुआ हाथ अपने हाथ में ले लिया और झर-झर अश्रु बहाते हुए उसी प्रकार बोली, "सच कह रहे हो तुम? बोलो...मेरे सिर पर हाथ रखकर कसम खाओ। क्या मैं तुम्हें सचमुच अच्छी लगती हूँ?"

अपने ही जाल में सत्यव्रत खुद फँस गया। हॉस्टल में लड़के समूह-गान में रत थे और फ़िलम 'जुगनू' का गाना गा रहे थे, 'वो अपनी याद दिलाने को, रूमाल पुराना छोड़ गये।'

सत्यव्रत विमला से 'तुम' वाली बात न कर पाया और न पत्र की बात। यहाँ तक कि वह विमला से अपना हाथ भी न छुड़ा सका और न कुछ बोल ही पाया। उसकी दृष्टि बराबर बाहर के दरवाज़े की ओर लगी थी और वह सोच रहा था कि ऐसे में कोई आ जाये तो क्या सोचेगा!

तभी विमला की आँख से एक गर्म आँसू सत्यव्रत की कलाई पर गिरा और उसने विमला के अनुत्तरित प्रश्न का उत्तर देने के लिए बड़ी कठिनाई से कुछ शब्द बटोरकर कहा, "हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम मुझे अच्छी लगती हो। तुम्हारे लिए एक विचित्र-सी दुर्बलता मेरे मन में उत्पन्न हो गयी है।" और आगे कहते-कहते वह फिर अटक गया।

अबकी बार विमला ही बोली, 'तो मुझसे दूर क्यों रहते हो मेरे देवता !" अपने आँसुओं को रोककर वह पूरी तरह सँभल चुकी थी, "मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा···!"

सत्यव्रत भावावेश में आ गया था। विमला की बात भी उसने पूरे ध्यान से नहीं सुनी। बोला, "लेकिन मैं कर्त्तव्य को इन क्षणिक भावावेगों से अधिक महत्त्व देता हूँ। मैं संयम को दुर्बलता के सामने पराजित होते हुए नहीं देख सकता। इसलिए मैं आजीवन-तुम्हारे सौन्दर्य का तटस्थ द्रष्टा-भर रह सकता हूँ, भोक्ता नहीं हो सकता।"

और सत्यव्रत ने झटके से अपना हाथ खींच लिया।

विमला बुरी तरह लड़खड़ा गयी। उसे लगा कि अगर यह हाथ उसके हाथों में न आया तो वह सारी उम्र न सँभल पायेगी, यूँही लड़खड़ाती रहेगी। और उसकी आँखों में फिर आँसू छलछला आये।

हॉस्टल में आश्चर्यजनक रूप से शान्ति थी। खेतों की तरफ़ से लौटते हुए चौधरी साहब शोर सुनकर हॉस्टल के अन्दर चले गये थे और सारे लड़के उनकी एक डाँट पर तत्काल अपने-अपने कमरों में घुस गये थे।

जब चौधरी साहब ने अपने चबूतरे पर क़दम रखा तो सत्यव्रत मूढ़ा छोड़कर उठ खड़ा हुआ था, मगर विमला की आँखों में पानी सूखा नहीं था। चौधरी साहब को देखकर सत्यव्रत स्तब्ध रह गया। औपचारिकता निभाने तक का भी उसे होश नहीं रहा। एक क्षण तक चौधरी साहब ने स्थिति को समझने की कोशिश की और फिर विमला से बोले, "क्यों बेटी ! क्या बात है ?"

विमला का रुका बाँध जैसे टूट गया ! उसके होंठ और नथुने दोनों फड़कने लगे और सत्यव्रत को लगा कि कोई बड़ी अनिष्टकारी घटना घटनेवाली है।

"इतना काम दे जाते हैं बापूजी, कि मैं सारे दिन सिर खपाती रहती हूँ।" विमला ने सिसकते हुए कहा, "मुझसे नहीं होगा इतना काम ! आप कह दीजिए इनसे।"

चौधरी साहब ठठाकर हंस पड़े। अपनी पगली बिटिया की रोनी आदत को वे खूब जानते हैं। ज़रा-सी बात पर सुबकने लगती है। बोले.

"अच्छा बेटे, हम कह देंगे। तुम चुप हो जाओ।"

विमला ने आँखें उठाकर सत्यव्रत की ओर देखा। सत्यव्रत के सिर से जैसे बहुत बड़ा बोझ उतर गया था और वह खुलकर साँस ले पा रहा था। चौधरी साहब ने सत्यव्रत की ओर मुस्कराकर देखा और बोले, "भई मास्टर साहब, ज़रा थोड़ा काम दिया करो हमारी बिटिया को। हाँ ऽ ऽ!"

और सत्यव्रत 'अच्छा जी' कहकर चला आया।

अधिकार

जब से म्युनिसिपल्टी के इलेक्शन की चर्चा उठी है तब से जयप्रकाश अक्सर शाम को कमरे पर नहीं मिलता और न स्टेशन की ओर ही जाता है। आज भी सत्यव्रत उसे सब जगह ढूँढने के बाद उसके कमरे पर चला आया और उसे वहाँ न पाकर बरामदे में पड़ी खाट पर लेटकर उसका इन्तज़ार करने लगा। दशहरे की छुट्टियाँ परसों से शुरू होनेवाली हैं और अभी तक पिछले दो महीनों का वेतन नहीं मिला। सत्यव्रत इस बारे में बहुत चिन्तित है। दशहरे पर उसे पैसों की सख्त ज़रूरत पड़ेगी, बहुत-सा सामान खरीदना है। वेतन नहीं मिला तो यह सब कैसे होगा? पता नहीं ये लोग इतनी देर क्यों लगाते हैं? जब वेतन देना ही ठहरा तो दे-दिलाकर अलग करें।

बरामदे में तीन खाटें पड़ी थीं। कोने में रखी लालटेन की बत्ती बहुत धीमी थी और उसकी रोशनी उसकी अपनी शिनाख्त-भर को काफ़ी नहीं थी। शायद सफ़िया जलाकर रख गया हो। वह जयप्रकाश का बिना पैसे का नौकर है।

सत्यव्रत सोचता रहा। रोशनी आदमी को कितना बल देती है कि उस एकान्त में भी सत्यव्रत को ज़रा अकेलापन महसूस नहीं हुआ···शायद इसलिए भी वह उस वक्त अपने वेतन और अपनी आवश्यकताओं के बारे में सोच रहा था। वह जयप्रकाश से बातें करके यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहता था कि छुट्टियों से पहले वेतन मिलेगा अथवा नहीं। और नहीं, तो फिर कब मिलेगा?

सत्यव्रत एकदम चित, एक पाँव के घुटने पर दूसरे पाँव का पंजा रखे उस मुद्रा में लेटा था जिसमें कृष्ण भगवान् को बाण लगा था और वे परलोक सिधार गये थे। वह सोच रहा था कि वेतन न मिलने की सूचना पर उसने उस दिन ध्यान क्यों नहीं दिया था···

उस दिन···जब वह विमला को पढ़ाकर या रुलाकर आया था तो बार-बार वही सुबकता हुआ लाल सुर्ख चेहरा, फड़फड़ाते हुए अधर और नासिका-पुट और आँसुओं के पानी में झलमल करती हुई दो मछली-सी आँखें उसके सामने आ जाती थीं। और उन्हें भूल जाने और उनसे बचने के लिए वह कहाँ-कहाँ नहीं गया था ! ···रेलवे प्लेटफ़ार्म की बेंच पर पास के दरख्तों से बगुलों की ऐसी कोलाहल-भरी दर्दनाक आवाज़ें आयीं कि वह एक मौन हाहाकार-सा अपने ही भीतर अनुभव करने लगा था···और खण्डहरोंवाली गढ़ी की तरफ़ तो आसमान का रंग ऐसा सुर्ख था जैसे किसी ने किसी का खून कर दिया हो। ऐसी गज़ब की उदासी कि न कोई पत्ता हिलता था न पंछी चहकता था। और वह भूल नहीं पाता था कि वह विमला को रुलाकर लौटा है। एक प्रश्न-सूचक दृष्टि, एक करुण प्रसंग और भावात्मक उत्तेजना उस पर अन्त तक छायी रही। यहाँ तक कि राजपुरा के 'ब्यूटी-स्पॉट', छोटे तालाब के किनारे पहुंचकर भी वह रम नहीं सका। कुछ दिन पहले की आँधी में जो खजूरें उखड़ गयी थीं, उनकी जड़ें अभी भी ज़मीन में थीं। तालाब एकदम सूना था और पीले-से पानी से लबालब भरा था। एक उखड़ी हुई-सी खजूर के तने पर बैठकर सत्यव्रत अपने और विमला के अनपेक्षित सामीप्य की विडम्बना पर विचार करने लगा कि तालाब के जाने कौन-से किनारे से चिहुंककर एक छोटा-सा पक्षी उड़ा और कातर कराह की 'चाँय-चाँय' ध्वनि में एक करुण-सी गोल रेखा खींचता हुआ उसके शीश पर मँडराने लगा। और सोये हुए जल में जैसे कोई बड़ा-सा पत्थर उठाकर फेंक दे वैसे ही अन्तर में समूचा सिहर गया था सत्यव्रत। और यह मानकर कि इस क़स्बे में सकून और शान्ति पा सकने लायक़ कोई जगह नहीं, वह जयप्रकाश के कमरे पर चला आया था।

उस दिन भी यही वक्त था। आज की तरह बरामदे में तीन खाटें पड़ी थीं। एक पर जयप्रकाश बैठा था और दूसरी पर उत्तमचन्द। तीसरी

पर सत्यव्रत बैठ गया था। हाँ, लालटेन का यह कोने में बिखरता हुआ मरियल-सा प्रकाश उस दिन कुछ ज़्यादा मुखर था और जयप्रकाश के बराबरवाले स्टूल पर से आ रहा था।

उत्तमचन्द को वहाँ देखकर सत्यव्रत को आश्चर्य से भी अधिक प्रसन्नता हुई थी। उसने सोचा था कि चलो जितनी विरक्ति से अलग हुए थे, उतने ही प्यार से फिर मिले हैं। उत्तमचन्द और जयप्रकाश अक्सर बातें करते-करते देर तक चुप हो जाते थे, जैसे कहीं खो जाते हों। सत्यव्रत खुद भी खोया हुआ था। अभिवादन की औपचारिकता के बाद उसने इन लोगों की बातों में 'हाँ-हूँ' तक की रुचि न ली। चुपचाप खाट पर लेटा रहा और विमला के ही मनस्ताप के विषय में सोचता रहा। सिर्फ़ बीच में उसका ध्यान तब टूटा जब जयप्रकाश ने आवेश में कहा, "हक़ के लिए लड़ना पड़ता है मास्टर साहब! अगर माँगने से हक़ मिलते तो संसार में इतना रक्तपात और आये-दिन के झगड़े क्यों होते?" सत्यव्रत की आँखें तुरन्त खुल गयीं। उसने देखा, जयप्रकाश के हवा में उठे हुए दायें हाथ की पाँचों उँगलियों की परछाइयाँ सामने बैठे हुए उत्तमचन्द के सिर के पीछे थमले पर खड़ी हो गयी हैं। जयप्रकाश ने ही आगे कहा था, "प्रिंसिपलशिप तो बड़ी चीज है, आप देखिएगा कि हॉस्टल के लड़कों को अपना बनाया हुआ अच्छा और सस्ता खाना खाने के लिए भी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। और हमें उनका साथ देना होगा।"

"मगर मैं किसका सिर फोड़ दूं!" मास्टर उत्तमचन्द ने बेबसी से मुस्कराकर कहा, "जब तक यह पता न चले कि किससे लड़ना है, कैसे लड़ना है, तो क्या किया जा सकता है?"

बाहर अँधेरा काफ़ी फैल गया था। और पड़ोस के घर से औरतों की ऊँची आवाज़ें काँसे के बर्तनों की तरह खनखनाती हुई आ रही थीं। उत्तमचन्द अँधेरे में खोये थे और जयप्रकाश उन आवाज़ों में—"सीधी लड़ाई अब कहाँ रह गयी है मास्टर साहब? अब तो छिप-छिपकर चोटें की जाती हैं।"

अपनी खाट उत्तमचन्द की खाट के पास खिसकाकर जयप्रकाश धीरे से बोला, "आप सिर्फ़ एक काम करेंगे?"

"बोलिए।"

"नहीं, पहले वचन दीजिए।" जयप्रकाश ने आग्रहपूर्वक दृढ़ स्वर में कहा।

उत्तमचन्द एक क्षण के लिए ठिटक गये थे। अब तक छोटे-छोटे मन-मुटावों ने कितनी गांठें डाल दी हैं मन में! कौन जाने वैर का कौन-सा बिरवा कब विश्वास की छांव में सिर उठाकर खड़ा हो जाये!

असमंजस को भांपकर जयप्रकाश बोला, "देखिए मास्टर साहब! ज़रा-सा विश्वास आपने बिना मांगे दिया और पूरा विश्वास मैं खुद मांग रहा हूं।"

"मैंने मना कब किया!" उत्तमचन्द ने अविश्वास के आवरण को सहसा एक तरफ़ हटा दिया।

"तो मास्टर साहब, पहले आपको वे छोटे-छोटे दायरे तोड़ने होंगे जो आपके और मेरे विरोध में आप-से-आप बन गये थे।"

"दायरे!" उत्तमचन्द इस बात पर थोड़ा खुलकर हंसे थे, "बस, ये ही वचन मांग रहे थे? इतनी-सी बात!"

"यह इतनी-सी बात नहीं है मास्टर साहब! मैं इसे बहुत अहमियत देता हूं। और मेरे कार्य करने की जो पद्धति है उसमें बिना परस्पर पर्ण विश्वास के एक क़दम भी नहीं चला जा सकता। अगर हम चाहते हैं कि हमारी तनख्वाहें वक्त से मिलें, हमारे कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप न हो और शिक्षा के नाम पर हम अपने और छात्रों के शोषण से बचे रहें तो यह ज़रूरी है कि आप प्रिंसिपल हों और सारे अध्यापक और विद्यार्थी आपके पीछे हों। और ये छोटे-छोटे दायरे टूटकर हम सबका एक बड़ा दायरा बन जाये।"

बात उत्तमचन्द को शायद सही लगी थी। प्रजातन्त्र के युग में जिसके साथ बहुमत हो, उसी के पास शक्ति होती है। अगर सारे अध्यापक और छात्र उनके साथ होते तो क्या कमेटी आज उनको प्रिंसिपल होने से रोक सकती थी?

जयप्रकाश ने कहा, "छात्रों में शहर और गांव की जो भावना पैदा हो गयी है—चाहे उसका कारण मैं हूं या आप—वह अहितकर है और

उसका दूर होना ज़रूरी है। तभी वे पास आ सकेंगे।"

सत्यव्रत ने सोचा कि यही बात वह कब से कहता आ रहा है! चलो आज जयप्रकाश ने भी अनुभव तो की।

"ठीक है।" उत्तमचन्द ने कहा, "छात्रों की प्रॉब्लम तो हल हो जायेगी, लेकिन टीचर्स का क्या होगा? उनमें कितने ही टीचर्स तो ऐसे हैं जो सुबह-शाम कमेटी के मेम्बर्स के घर जाते हैं और कॉलिज की हर गतिविधि की रिपोर्ट उन्हें देते हैं।"

जयप्रकाश इस प्रश्न और समस्या के लिए जैसे पहले से ही तैयार था। बोला, "आप इसे मुझ पर छोड़ दीजिए। दायरे टूटे तो टीचर्स का कमेटी के मेम्बरों के यहाँ आना-जाना खुद-ब-खुद बन्द हो जायेगा; देखिए, मेम्बरों के यहाँ आधे लोग तो इसलिए जाते हैं कि कोई दूसरा अध्यापक वहाँ जाकर उनकी बुराई न करता हो और आधे इसलिए कि वे उनकी कृपा प्राप्त कर अपने हक़ को बरक़रार रखना चाहते हैं। अगर हमारे दायरे टूट जायें और हम लोगों में परस्पर स्नेह और विश्वास की भावना अंकुरित हो उठे, तो हमें अपने हक़ को क़ायम रखने के लिए किसी की कृपा का सहारा नहीं लेना पड़ेगा और न किसी की बुराई करने के लिए मेम्बरों के यहाँ हाज़िरी ही देनी पड़ेगी।"

तभी शायद उत्तमचन्द को लगा कि जयप्रकाश की इन बातों का उनकी प्रिंसिपलशिप से कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए विषय को पुनः मुख्य चर्चा पर लाते हुए उत्तमचन्द ने कहा, "जयप्रकाशजी! क्या आपको पूरा विश्वास है कि अध्यापक एकमत से मेरा साथ देंगे?"

"अवश्य!" जयप्रकाश ने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा था, "बल्कि मैं तो सोचता हूँ कि अपनी 'टीचर्स एसोसिएशन' को जीवित करके उसमें सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया जाये कि आपको प्रिंसिपल होना चाहिए।"

तभी जैसे उत्तमचन्द के पूरे शरीर में आनन्द की एक लहर-सी दौड़ गयी हो, उसी प्रकार मेघाच्छन्न अँधेरे आकाश में विद्युत् कौंध गयी थी। मगर दूसरे ही क्षण मेघों की गड़गड़ाहट के साथ अनेक आशंकाएँ और प्रश्न उनके सामने आ खड़े हुए थे। और उन्हीं का समाधान करने के लिए

उन्होंने पूछा था, "क्या इस बात के लिए एसोसिएशन की मीटिंग बुलायी जा सकती है और इस प्रस्ताव को 'एजंडे' पर रखा जा सकता है ?"

"नहीं, यह तो एक प्रासंगिक प्रश्न होगा।" जयप्रकाश ने कहा, "और समस्याएं क्या कम हैं ? पिछले डेढ़ महीने से हमारी तनख्वाह नहीं मिली।"

उत्तमचन्द को फ़ौरन कुछ याद-सा आ गया। टोकते-से बोले, "अरे हाँ, यह बात तो मैं बताना ही भूल गया। अबकी टीचर्स की तनख्वाहें तीन महीने से पहले नहीं मिलेंगी।"

"क्यों ?" आवेश में ऊँचा बोलते हुए जयप्रकाश का स्वर सहसा नीचा हो गया था, जैसे घर-परिवार के कई छोटे-मोटे आर्थिक प्रश्न उसके चिन्तन में ब्रेक की तरह आ लगे हों।

"पवन बता रहा था।" उत्तमचन्द ने कहा, "इस बार ग्रांण्ट नहीं आयी है अभी तक। मैनेजमेण्ट ने फ़ैसला किया है कि टीचर्स की तनख्वाहें दशहरा की छुट्टियों के बाद दी जायें। तो, पन्द्रह दिन तो अभी छुट्टियों के हैं, और फिर आठ-दस दिन की दशहरे की छुट्टियाँ और फिर दीवाली की। यानी डेढ़ महीना यह, और डेढ़ महीना और।"

सत्यव्रत ने जयप्रकाश को बताया था कि दशहरे पर अपने भतीजों और भतीजियों के लिए नये कपड़े बनवाने का उसका बहुत पुराना नियम है। भाई के मरने के बाद से अब तक वह इस नियम का पालन करता आया है। और जयप्रकाश सोचने लगा कि वेतन न मिला तो सत्यव्रत का नियम क्या टूट जायेगा !

"क्या सोचने लगे ?" उत्तमचन्द ने पूछा था।

"सोच रहा था।" कुछ सोचते और चिन्तित होते हुए जयप्रकाश ने कहा था, "भाई सत्यव्रत की बहन की शादी है दिसम्बर में। दशहरे पर उन्हें सगाई वग़ैरा भेजनी पड़ेगी। यह तो बड़े खुश थे कि चलो दो महीने की इकट्ठी तनख्वाह लेकर घर चलेंगे।"

"सत्यव्रतजी को एक नोटिस और मिलनेवाला है दो-चार दिन में," उत्तमचन्द ने कहा, "कि वे अपने हॉस्टल के छात्रों में डिसिप्लिन (अनुशासन) के प्रति सतर्क रहें और उनके स्वास्थ्य के हित में उन्हें हॉस्टल में

'कच्चा-पक्का' खाना बनाने की अनुमति न दें।"

चुपचाप पड़े हुए सत्यव्रत ने वार्तालाप को अपने ऊपर केन्द्रित होते हुए और दोनों मान्य साथियों को अपने ऊपर दया करते हुए पाया तो उसका पुरुषत्व सजग हो उठा। उसे लगा था कि कहीं कमेटी के मेम्बरों के प्रति उसके मन में विद्वेष उत्पन्न करने के उद्देश्य से तो ये बातें नहीं कही जा रहीं! वरना भला खाने के सम्बन्ध में लिखित चेतावनी का क्या मतलब होता है? लेकिन सिर्फ़ एक क्षण के लिए उसके मन में अविश्वास का धुआँ ठहरा और फिर उड़ गया था। हाँ, ऐसा उसे अवश्य लगा कि बहन के विवाह का प्रसंग उस पर दया प्रकट करने के लिए ही लाया गया है, वरना पैसों की ज़रूरत क्या जयप्रकाश को नहीं है? फिर वह अपनी ज़रूरतों की आड़ में दूसरों को क्यों रखता है?

आज कई दिन हो गये इन बातों को, किन्तु सत्यव्रत भूल नहीं पाया। उसने जब-जब जयप्रकाश पर अविश्वास किया, तब-तब उसे अपने ही सम्मुख लज्जित होना पड़ा और पश्चात्ताप करना पड़ा। मैनेजमेण्ट के सम्बन्ध में भी जयप्रकाश की बातें अक्सर सही उतरी हैं। आज वह जयप्रकाश से स्पष्ट शब्दों में क्षमा माँगेगा। जयप्रकाश हमेशा उसके हित की बात सोचता है और वह उसकी भावना को समझ नहीं पाता तो उसका अर्थ यह हुआ कि उसका अपना ही हृदय कहीं संकुचित है।

लेकिन जयप्रकाश अभी तक क्यों नहीं आया? क्यों उसे इलेक्शन जैसी फ़ालतू बातों में इतनी रुचि है कि सारा दिन छदम्मीलाल, बालिस्टर साहब और बाबू हरकरण सहाय के यहाँ ही पड़ा रहता है? नहीं तो फिर उत्तमचन्दजी के साथ। दो सप्ताह भी नहीं हुए कि दोनों में कितनी गहरी मित्रता हो गयी। सारा स्टाफ़ चकित है! एक देह दो प्राण और तीसरा प्राण राजेश्वर और चौथा आजकल इलेक्शन...।

...लालाजी के मुक़ाबले पर बाबू साहब खड़े हुए हैं। खड़े क्या हुए हैं, खड़े किये गये हैं। आज सुबह लालाजी ने सत्यव्रत को बुलाया था तो कहा था, "आपकू पता नईं होवेगा कि आपके सलेक्सन में मैंन्नें क्या किया था।" पहली बार सत्यव्रत से वे 'आप' के साथ बोले थे, "और आज जब

मुस्से यो कहा जावै कि मैं आपकू 'वार्निग' दूं तो दूसरे सब्दों में अपने लगाये वृच्छ को खुद काटनेवाली बात हुई। इसलियो मैंन्नें तो सबसे कै दिया कि मैं खुद उन्हें बुलाकै समझा दूंगा।"

लालाजी की बातों का सूत्र अगर उस दिन पहले ही उतमचन्द की बातों से न मिल गया होता तो सत्यव्रत उनकी बातें समझ भी न पाता। लालाजी ने आगे कहा था, "देख्खो मास्टर साब, लड़कों पै आपका अनुसासन ठीक होना चाहिए।"

सत्यव्रत को लगा कि उसके सारे किये-किराये का यदि यही श्रेय है तो कितना दुखद है। और उसे प्रतिवाद करना पड़ा, "जहाँ तक अनुशासन की बात है, मैं स्वीकार करता हूँ कि कुछ लड़के अब भी इस दिशा में थोड़े उदासीन हैं, किन्तु अधिकांश छात्र प्रातःकाल नियम से उठने में तथा पूजन-हवन और स्वाध्याय में रुचि लेते हैं। उनके आचरण और व्यवहार में भारी परिवर्तन हुआ है।"

"ठीक है।" लालाजी ने कहा था, "अब जैसे उनके खाने की बात है। तो ये कोई अच्छी बात थोड़ेई है कि वे होस्टल में कच्चा-पक्का खाना खावें और अपनी तन्दुरस्तियों का नास कर लेवें!"

इधर कुछ दिनों से सत्यव्रत खुद हॉस्टल में ही खाना खाता है, क्योंकि होटल का पिछले महीने का ही बिल वह नहीं चुका पाया। वैसे हॉस्टल का खाना उसे होटल के खाने से ज़्यादा पवित्र और स्वादिष्ट भी लगता है। इसलिए लालाजी को वास्तविकता समझाने के उद्देश्य से उसने कहा, "जी, मैं आपसे निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि हॉस्टल का खाना स्वास्थ्य के लिए किसी भी दृष्टि से अहितकर नहीं है। मैं आजकल स्वयं वहीं खा रहा हूँ।"

लालाजी के ललाट पर चिन्तन की रेखाएँ उभर आयी थीं। और गर्दन हिलाते हुए कुछ सोचकर उन्होंने कहा था, "खैर, ये बातें तो बाद में भी हो सकैं कि लड़कों कू कहाँ खाना चहिए, मगर वो, सुना है, लड़के बाबू साहब के लियो भाग-दौड़ कर रये हैं।"

सत्यव्रत आसमान से ज़मीन पर आ गिरा। लड़कों की इलेक्शन में लेशमात्र भी रुचि न थी, फिर यह बात लालाजी के पास कैसे पहुँची?

उसने सोचा कि इसीलिए तो लालाजी ने उसे शिथिल अनुशासन का दोषी नहीं ठहराया।

"जी नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है।" सत्यव्रत ने दृढ़ता से कहा, "बाबू साहब एक बार भी हॉस्टल में नहीं आये। और यदि आयें भी तो मैं नहीं समझता कि लड़के उनकी विशेष सहायता करेंगे।"

"बस!" चेहरे पर परम सन्तोष का भाव व्यक्त करते हुए लालाजी ने कहा, "यही मैं चाहूँ हूँ। आप मेरे आदमी हैं; आपकी सारी सक्ती और सारे विद्यार्थी इस इलेक्शन में मेरा साथ देवेंगे, इसका मुझे पूरा भरोस्सा है। आप ही लोगों के कहने-सुनने पै मैं खड़ा हो गिया वरना आप जान्नों इत्ती भाग-दौड़ किससे हो सकै!"

सत्यव्रत ने अनिच्छापूर्वक मौन स्वीकृति दी।

लालाजी ने उत्साहपूर्वक आत्मीयता मे कहा, "देखो मास्टर साब! इस इलेक्शन के भी बड़े दाँव-पेंच होवें हैं। आपको फुसलाने के लियो बहुत-से लोग आवेंगे। लौण्डों कू भी फुसलावेंगे। मगर तारीफ तब है जब कोई टस से मस ना हो।"

और स्वप्न-भंग सरीखे दुखद और तिक्त मन से सत्यव्रत ने उनकी सारी बातें सुनी थीं। लालाजी के व्यक्तित्व की जो ऊँचाई उसने मन-ही-मन निर्धारित की थी, वह जैसे अनायास नीची हो गयी थी। उसे लगा था कि मैनेजमेण्ट के बारे में जयप्रकाश जो कहता है वह भी सचाई से बहुत दूर नहीं है।

और चलते-चलते जयप्रकाश के बारे में लालाजी ने ज़िस ढंग से पूछा था वह···वह कितना विचित्र था! सत्यव्रत इस बात पर चकित हो उठा कि आदमी के व्यक्तित्व के कितने पक्ष और कितनी परतें होती हैं और इन्हें एक साथ जानना कितना कठिन है!

सहसा गली में खिड़की के पास एक कुत्ता बड़ी मार्मिक आवाज़ में रो पड़ा। सत्यव्रत का सोचना रुक गया। आकाश पर तारे नहीं थे, और सड़क पर लोगों का आवागमन भी लगभग समाप्त हो गया था। एकाएक उसने महसूस किया कि काफ़ी रात बीत गयी है। लेकिन वक़्त का कोई

ठीक अनुमान वह न लगा पाया।

उसने करवट बदली और सोचा—इतनी रात तक जयप्रकाश कहाँ रहता है ? ज़रूर बाबू साहब के लिए पूरी कोशिश कर रहा है, तभी तो लालाजी ने कहा था, "हो सकता है कि मास्टर जयप्रकाश आपकू और गांव के लौण्डों कू बरगलावे"…और सत्यव्रत को कहना पड़ा था, "नहीं लालाजी, जयप्रकाशजी की ओर से आप ऐसा न सोचें। वे आपके विरुद्ध नहीं जा सकते।"

सत्यव्रत को आश्चर्य हुआ कि अनायास उसके मुंह से इतना बड़ा झूठ कैसे निकल गया। उसे जयप्रकाश के विचार मालूम हैं और यह भी मालूम है कि उसी ने बाबू साहब को खड़ा किया है। यही बात लालाजी ने कही, "मेरी खबर तो येई है कि वह बाबू साहब को जिताने की पूरी चेस्टा करैगा…मगर आप जान्नो, मैं तो उसै भी गैर नइं मानता। वैसे मुस्से भी वह वाद्दा तो कर गया है कि उसके लियो दोन्नों बरोब्बर हैं और किसी का पक्स नहीं लेगा।"

सत्यव्रत को यह सारा प्रसंग कड़ुवा लगता है। अध्यापकों और विशेषतः छात्रों को इलेक्शन जैसे निकृष्ट कार्य में फँसाना मानो आम की कच्ची फ़सल पर ढेले फेंकना है। लालाजी की बातों का दो टूक उत्तर न देकर सत्यव्रत ने परिस्थिति से जो अनजान समझौता किया, अब उसे वह भी विचारों का दमन प्रतीत हो रहा है। आत्माभिव्यक्ति पर अंकुश—ऐसा अंकुश जो आत्मा को कायर बनाता है। इसीलिए वह जयप्रकाश से सब-कुछ कहकर हल्का हो जाना चाहता था।

आधी से भी अधिक रात बीत गयी थी। दूर ढोलक पर गाये जाने वाले आल्हा के अन्तिम बोल उभरकर वातावरण की खामोशी में तैरते हुए डूब गये थे। विवश होकर सत्यव्रत को लौटना पड़ा।

धीरज का बाँध

अपने सामनेवाले कमरे में बड़ी-सी मेज़ पर खसरा-खतौनी बिछाये चौधरी नत्थूसिंह बैठे थे और पटवारी के ग़लत मिलान किये हुए नम्बरों

को अलग से नोट करते जा रहे थे। सामने पड़े चार-पाँच मूढ़ों में से एक कोनवाले मूढ़े पर लाला गनेशीलाल बैठे थे और उत्सुकता से बाहर की ओर देख रहे थे।

इस कमरे में पहले चौधरी साहब के लड़के की डिस्पेन्सरी थी। अब दीवारों और छत के प्लास्टर पर बरसाती पानी के चकत्ते उभर आये हैं, जैसे बड़ी माता निकल आयी हो किसी की देह में। सुबह थोड़ी-सी बूंदें पड़ी थीं और अब तक कमरा बीमार है।

धूप की गरमी कम होती जा रही थी। अचानक बीच सड़क से उठकर बिजार अपनी गोल-मटोल देह पर पूंछ फेरता हुआ बाज़ार की तरफ़ चल दिया। कॉलिज में छठा घण्टा खत्म करके आनेवाले विद्यार्थी सामने से गुज़रने लगे। गनेशीलाल ने हाथ की घड़ी देखकर हिसाब लगाया कि लालाजी के भट्टे पर दोपहर की रोटी खाकर मज़दूर कभी के ईंटों पर जा लगे होंगे। साढ़े तीन से ऊपर वक़्त हो रहा है।

"देख्खा चौधरी साहब!" गनेशीलाल ने झुंझलाकर कहा, "लालाजी टामा दे गये। अपना काम होत्ता तो अब लो सिर के बल आ खड़े होत्ते।"

चौधरी साहब ने 'हूँ' की और फिर अपने काम में उलझ गये। गनेशीलाल ने घड़ी की ओर फिर देखा और उन्हें ध्यान आया कि कल लालाजी ने खुद दो और ढाई के बीच मिलने को कहा था।

...कल गनेशीलाल के धीरज का बाँध टूट गया तो वे सीधे लालाजी के पास पहुंचे थे। आखिर इन्तज़ार की भी कोई हद होती है। एक महीने से होटल ठप्प पड़ा है।

यों तो कल भी गनेशीलाल ने वही पुरानी बात कही थी, पर उसकी अभिव्यक्ति का ढंग अधिक प्रभावशाली था। गनेशीलाल की वाणी में कम्पन, मुंह पर उत्तेजना और शब्दों में दर्द था। उन्होंने कहा था, "आज मुझे पक्का जवाब देद्दो लालाजी, कि मैं होटल बन्द कर दूं या नईं करूं। दो दिन बाद पायते की छुट्टियाँ हो जावेंगी। क्या फायदा मैं ठाल्ली-मूल्ली नोकरों की तनख्वाह और दुकान का क़िराया भरता रहूँ! अब ज्याद्दा नुकसान बरदास्त करने की सकत मेरी नईं है।"

लालाजी ने भी वही घिसा-पिटा जवाब पकड़ा दिया, "बस, थोड़े

दिनों और ठहर जाओ भैया गनेशीलाल। जहाँ इत्ता घाट्टा भरा है वहाँ मेरी मान्नो तो छुट्टियों भर और लस्टम-पस्टम करके खींच लो गाड़ी कू।" और वे मन-ही-मन सोचने लगे, गनेशीलाल को क्या मालूम कि होस्टल के लड़कों के खाने की समस्या को इलेक्शन खत्म हो जाने तक छेड़ना ठीक नहीं। वरना बात उनके दिमाग़ में है। चौधरी साहब ने जैसे लड़के के अलग होने पर होस्टल के मोह को त्याग दिया, वैसे ही अगर गनेशीलाल ने भी होटल बन्द कर दिया तो लालाजी अकेले स्वार्थी कहलायेंगे और स्वारथ और परमारथ के काज तो चार पंचों में मिलकर ही किये जाते हैं।

गनेशीलाल ने व्यंग्य किया, "मगर इससे फायदा क्या होवैगा कि होटल चलात्ते रहवें चाहे गाहक एक भी न होवै। आपका यो खयाल है क्या कि होटल चलता रहवैगा तो लौण्डे आवेंगे ही!'

"और जावेंगे कहाँ?" लालाजी ने अपने विचारों से निकलकर गनेशी-लाल के क्रोध के कवच में आत्मीयता का बरछा घुसेड़ते हुए धीरे से कहा, "मास्टरों की औकात कित्ती होवै भैया गनेसीलाल! गली-गली में मास्टर फिरें। बुलाके डाट देवेंगे तो खुद ही लौण्डों को लेवकै होटल जानै लगेंगे।"

"अगर इत्ती-सी बात है।" गनेशीलाल ने लालाजी की आत्मीयता के अस्त्र से बिना प्रभावित हुए कहा, "तो आपने अब लों कहा क्यूँ नईं।" और फिर अपने निर्णायक अस्त्र, असहयोग को मुख-मुद्रा के धनुष पर चढ़ाकर उजागर करते हुए उन्होने कहा, 'देख्खो लालाजी! मैं आपसे यो नईं कहत्ता कि मैंन्नें आपके लियो क्या करा है और क्या नईं! हर मीटिंग से लेवकै होस्टल तक का किराया तक तै करने में, मैंन्नें कित्ती मदद करी और कित्ती नईं करी। पर आज मैं आपसे यो ज़रूर पूच्छूँ हूँ कि आप लौण्डों को होटल में खाने का 'आडर' निकलवा रये हैं या नईं?"

लालाजी अजब असमंजस में फँसे। गनेशीलाल सरीखे उनके खासुल-खास आदमी भी उनसे नाराज़ होते जा रहे हैं और उन्हें ग़लत समझते हैं। गुलज़ारीमल तो खुल्लमखुल्ला बाबू हरकरण सहाय की तरफ़ हैं ही, गनेशीलाल भी चले गये तो? और इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए लालाजी ने कुछ सोचते हुए कहा, "तुम समझते नईं हो गनेसीलाल! आडर निकल-वाना क्या इत्ता आसान है! पहले मीटिंग में प्रिस्ताव पास कराना पड़ै

है, तब होवै है। वो तो तुम जान्नो दूरअन्देसी करके, मैंन्नें स्कूल के नियमों में एक ऐसा पेंच डाल दिया था कि हम चारों मिलके जरूरत में कोई भी ऐसा प्रिस्ताव पास कर सकें जो संस्था और विद्यार्थियों के हित की दृष्टी से आवस्यक हो। मगर तुम जान्नो गुलजारीमल आजकल बाबू साहब की रैंटी में है। वो इस प्रिस्ताव पै······"

तभी गनेशीलाल को याद आया कि उन्होंने अभी थोड़ी देर पहले गुलज़ारीमल को स्टेशन की तरफ़ जाते देखा था। अतः बोले, "कल शायद उसके मुकदमे की तारीख है और वो बिजनौर में होवैगा।"

लालाजी के चेहरे पर मजबूरी का सन्तोष झलक उठा, "तो फिर ठीक है। कल एक आवस्यक मीटिंग कर लो और प्रिस्ताव पास करकै उसे अनुपस्थित लिख दो। और हाँ मीटिंग चौधरी साहब के यहाँ रखियो, कोई दो-ढाई बजे। भट्ठे से लौट कै मैं सीधा वहीं जाऊँगा। तुम ज़रा उनसे बात भी कर लीजो।"

···और अब चार बजने को आये, मगर लालाजी का कहीं पता नहीं। वैसे आज प्रिस्ताव पास हो भी जाता तो भी आज तो 'आडर' निकल नहीं सकता था, और निकल भी जाता तो कौन लड़के छुट्टियों में होटल पर खाना खाने आते! मगर इस बहाने एक फिक्र से तो छुट्टी मिलती। एक काम ही निबट जाता। गनेशीलाल के मन में पश्चात्ताप हो रहा है कि उन्होंने क्यों लालाजी का अब तक साथ निभाया और उनकी बातों पर भरोसा किया।

चौधरी साहब कागज़ों में ही उलझे रहे, मगर गनेशीलाल को प्रतीक्षा चुभती रही। उन्होंने इधर-उधर ध्यान बंटाने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हुए। कॉलिज से लौटनेवाले विद्यार्थियों के छोटे-छोटे कई दल निकल चुके थे। गनेशीलाल ऊबकर अपने-आप पर झुंझला उठे। तभी सामने सड़क से राजेश्वर और जयप्रकाश गुज़रे और चौधरी साहब की बैठक में दरवाज़े के पास ही गनेशीलाल को देखकर अनायास उन्होंने हाथ जोड़ दिये, "सेक्रेटरी साहब नमस्ते!"

गनेशीलाल झल्लाये हुए तो थे ही, सिर हिलाकर उन्हें ऊपर आने का इशारा किया। जयप्रकाश के हाथ में कुछ किताबें और कापियाँ थीं और

राजेश्वर के हाथ में छोटा-सा जापानी छाता। उसने कुरते पर बढ़ी हुई कश्मीरी जाकेट पहन रखी थी और मुंह में पान दबाये था।

आज कॉलेज में अफ़वाह थी कि चौधरी साहब के यहां एक आवश्यक मीटिंग हो रही है जिसमें अध्यापकों को वेतन देने के प्रश्न पर विचार हो रहा है। हो सकता है, छुट्टियों से पहले ही वेतन मिल जाये। दरवाज़े में प्रविष्ट होते ही जयप्रकाश इस सम्बन्ध में कोई खुशखबरी पूछनेवाला था कि सेक्रेटरी गनेशीलाल ने चेहरे की झुंझलाहट को विस्तीर्ण करते हुए कहा, "कित्ते सरम की बात है मास्टरजी, कि आप लोग विद्यार्थियों के चरित्र पर ध्यान नईं देत्ते। भला जब आप लोग ऐसे चटकील्ले-भड़कील्ले कपड़े पहन्नेंगे तों उन पै क्या पिरभाव पड़ैगा—यह भी सोच्चा! आपकू तो उनके सामने अपना आदर्स रखना चहिए।"

स्पष्ट ही बात राजश्वर को लक्ष्य करके कही गयी थी, क्योंकि जयप्रकाश के खादी के मोटे साफ़ वस्त्रों से भड़कीलेपन का प्रश्न नहीं उठता था। इसलिए उत्तर भी राजेश्वर ने ही दिया, बोला, "चरित्र की अपनी-अपनी कसौटी होती है लाला साहब! मैं कपड़ों को चरित्र की कसौटी नहीं मानता। रही प्रभाव की बात, तो साहब, कपड़ों का प्रभाव उन पर पड़ता है जो ज़ाहिल और बेपढ़े-लिखे लोग होते हैं। पढ़े-लिखे लोगों पर तो दूसरे के ज्ञान, आचरण और अच्छे व्यवहार का ही प्रभाव पड़ता है। और उसी का आदर्श छात्रों के सामने रखने की मैं कोशिश करता हूं। वैसे आप जैसा हुकुम दें, मैं वैसे ही कपड़े स्कूल पहन जाया करूं। पर जब इसमें बीस रुपये खर्च किये हैं तो इसे बिना पहने तो फाड़कर फेंका नहीं जा सकता।"

गनेशीलाल तिलमिलाकर रह गये। चौधरी साहब ने खसरा-खतौनी बन्द कर दी और आंखों से चश्मा उतारकर राजेश्वर की ओर आश्चर्य से देखा। अचानक राजेश्वर ने महसूस किया कि दोनों उसे बड़ी अजनबी निगाहों से देख रहे हैं। अगर वह फ़ौरन वहां से न हटा तो घबरा जायेगा। और जयप्रकाश को लगा कि वह किसी संग्रहालय में घूम रहा था कि कोई धड़हीन मूर्ति अचानक ज़ोर से चीख उठी है।

समूचे वातावरण पर जैसे मौन की एक अदृश्य भारी शिला गिर पड़ी

थी और चारों उससे निकलने के लिए शब्दों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"अरे भय्या जयप्रकास, तुम यहाँ हो!" सहसा लालाजी के शब्द कमरे की निस्तब्धता में तीर की तरह गड़ गये, "मैं तो तुम्हें सारे स्कूल में ढूंढ़ फिरा। चलो जल्दी से। आओ भई राजेस्वर, तुम भी आओ। बाहर ताँगा खड़ा है।"

और फिर सहसा पीछे लौटते हुए उन्होंने कहा, "भय्या गनेसीलाल, मुझे अभी माफ करियो। मैं एक बड़े चक्कर में फंस गिया हूँ। साम को दुकान पै आऊँगा।"

और जिस तेज़ी से आये थे उसी तेजी से राजेश्वर और जयप्रकाश को साथ लिये हुए लालाजी बाहर निकल गये। सब-कुछ इतनी जल्दी हो गया कि गनेशीलाल कुछ भी न बोल पाये। चौधरी साहब ज़रूर कुछ बड़बड़ा रहे थे। शायद उन्हें मास्टर राजेश्वर के उद्धत व्यवहार पर अब भी आश्चर्य हो रहा था। मगर गनेशीलाल तो एकदम हतप्रभ हो गये थे। जैसे मकान की कोई छत बैठ रही हो और सब-कुछ उसके नीचे दबता चला जा रहा हो।

"अच्छा, तो मैं चलूं चौधरी साहब! शाम को जैसा मौक्का होगा खब्र भेज्जूंगा।" कुछ क्षण बाद गनेशीलाल ने मूढ़े से उठते हुए कहा और चौधरी साहब के उत्तर की अपेक्षा किये बिना सड़क पर आ गये।

लाला हरीचन्द के भट्ठे से छोटे तालाब पर होती हुई कॉलेज के अहाते की तरफ़ जो पगडण्डी गयी है, उस पर बड़ी रौनक़ थी। गंजी और घुटनों तक फटी-पुरानी ऊँची-सी धोती लगाये बुझे हुए कोयलों जैसे मज़दूर, और कमीज़-पाजामा पहने, खिले हुए कमलों जैसे ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षाओं के नवयुवक विद्यार्थी—एक साथ भट्ठे से ईंटें ढो-ढोकर कॉलेज के टपरों की तरफ़ ले जा रहे थे। मज़दूरों और लड़कों को मिलाकर कुल संख्या पचास-साठ के लगभग थी। पन्द्रह लड़के भट्ठे पर चट्टों से ईंटें निकालकर लड़कों के सिरों पर जमवा रहे थे और पचास लड़के मजदूरों के साथ उन्हें ढोने में रत उस छोटी-सी पगडण्डी को गुलज़ार किये इधर-से-उधर आ-जा रहे थे।

दिन की उतरती धूप में भी विद्यार्थियों के चेहरे पसीने से भीगकर ताम्रवर्णी हो गये थे। एक अनजानी थकावट उनके माथों पर लिख गयी थी, मगर उत्साह किसी का फीका नहीं पड़ा था। रामपूजन, उम्मेद, रामसरन, ताहर और ज्ञानसिंह में तो जैसे होड़ लगी थी। पन्द्रह-पन्द्रह ईंटों का चट्टा अपने हाथों से जमाकर अपने सिर पर लगाते और भट्ठ से कॉलेज तक तीन फर्लांग का रास्ता गुनगुनाते हुए पार कर जाते थे। एक बार में तीन-चार सौ ईंटें जा रही थीं।

मास्टर उत्तमचन्द और राजेश्वर बिजनौर से भट्ठे की तरफ़ आनेवाली कच्ची सड़क पर खड़े थे। अगर कोई अफ़सर आया तो इधर से ही आयेगा। लालाजी उधर भट्ठे पर ईंटें छँटवा रहे थे। उन्हें चिन्ता थी कि सिर्फ़ अव्वल ईंटें ही जानी चाहिए, क्योंकि उन्हीं के हिसाब-किताब में ज्यादा गड़बड़ी है। आठ-दस फेरे हो चुके हैं, बस दो-तीन और हो जायें तो समझो भट्ठे पर उतनी ही ईंटें रह जायेंगी जितनी का उन्होंने 'स्टेटमेण्ट' दिया था।

भय और आशंका की प्रतीक दो काली दैत्याकार-सी ऊँची चिमनियाँ भट्ठे के दायीं ओर खड़ी थीं। कुछ झाँवा और कुछ टूटी-फूटी ईंटें, राख का ढेर और अव्वल, दोयम, सोयम ईंटों के अलग-अलग ऊँचे-ऊँचे चट्टे रखे थे, जिनमें से इस वक़्त ढुलाई हो रही थी।

जयप्रकाश विद्यार्थियों की निगरानी पर था। रामपूजन को फिर ज़्यादा ईंटें उठाकर भागते देखा तो उसने डांट दिया, "हाथ-पाँव तोड़ना चाहते हो ? चलो, उतारो ईंटें। किसी लड़के के सिर पर सात ईंटों से ज्यादा न हों।"

रामपूजन ईंटें उतारने लगा।

लालाजी पास आ गये। घबराते हुए बोले, "हाँ भय्या, ऐसा काम मत नाँ करो कि कल कू आँच आवै हम पै, बदनाम्मी होवै। बस ये आखिरी फेरा है!"

और फिर चट्टों से ईंटें उठाने के निशान मिटाने को कहकर लालाजी जयप्रकाश के पास आ गये। जेब से घड़ी निकालकर उन्होंने टाइम देखा और लम्बी सांस छोड़ते हुए बोले, "मेरे विचार से वो लोग अब चाहे गाड़ी से

ही आवेंगे। पर अपना क्या ! आवें चाहे न आवें। अपनी आतमा सुद्ध हो तो कोई भय नहीं व्यापता।"

जयप्रकाश जलकर राख हो गया। अगर ऐसी ही आत्मा शुद्ध थी तो क्या ज़रूरत थी लड़कों को इतना परेशान करने की ! और क्या ज़रूरत थी उसे और राजेश्वर को चौधरी साहब के यहां से पकड़कर लाने की ! रास्ते-भर मक्खन लगाते रहे, कहते रहे—'तुम्हें कभी गैर नइं समझा··· भय्या जयप्रकास, समझा तो खास अपनी औलाद की जगह समझा है। और इसीलिए डांटा-फटकारा भी तो अपना समझकर। और राजेस्वर तो खैर जान्नै है कि ठाकुर साहब की मुझसे कैसी दांतकाट्टी रोट्टी है।' थोड़ी देर तक तो वह और राजेश्वर दोनों हैरान हो रहे थे कि आखिर इतनी खुशामद का मतलब क्या है ! और अपने साथ ये हमें कहां लिये जा रहे हैं ? वह तो कॉलेज पहुंचकर भेद खुला। लालाजी ने ही बताया था कि उन्हें अरजेण्ट खबर मिली है कि अभी कोई बड़ा अफ़सर उनके भट्ठे पर स्टॉक चेक करने के लिए आनेवाला है और चूंकि एक-आध हज़ार ईंटें स्टाक में ज्यादा पड़ी हैं, इसलिए मामला काफ़ी खतरनाक हो सकता है। सरकार को धोखा देना—कोई साधारण अपराध थोड़ा ही है !

और तब जाकर असल बात मालूम हुई थी। लालाजी ने प्रिंसिपल से कहकर इण्टर कक्षाओं के बड़े-बड़े लड़कों को इसलिए रुकवा लिया था कि वे मज़दूरों के साथ ईंटें ढुलवाने में कुछ मदद करेंगे। लेकिन हॉस्टल के लड़कों ने प्रिंसिपल को दो-टूक जवाब दे दिया था, 'यह हमारा काम नहीं है'। तो लालाजी, को जयप्रकाश की याद आयी। और तब आत्मा पर कितना ज़ोर पड़ा था लड़कों से कहते हुए ! राजेश्वर अगर साथ न देता तो वह लड़कों से इस काम के लिए कह भी न पाता। मगर एक तो चौधरी साहब के यहां राजेश्वर और गनेशीलाल की बातचीत और दूसरे, तांगे में आते हुए लालाजी की दयनीय दशा—इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए वह उनसे मना नहीं कर सका था। लालाजी बाहर से कितने ही शान्त लग रहे हों, किन्तु उनके भीतर की उद्विग्नता को जयप्रकाश खूब समझ सकता है। उसे विवश होकर लड़कों से कहना पड़ा था···

…और लालाजी अब कृतघ्न हो रहे हैं। कहते हैं कि आत्मा शुद्ध है उनकी। जयप्रकाश सोचता है कि लालाजी भलीभाँति जानते हैं कि कम-से-कम छः हज़ार इंटें स्टॉक में ज्यादा थीं (और दसियों हज़ार वे बेच चुके होंगे), फिर भी वे आत्मा की शुद्धता की बात करते हैं।

चार बजे से यह वक्त हो गया लड़कों को ईंटें ढोते-ढोते। बिजनौर से आनेवाली गाड़ी का सिगनल डाउन हो गया और स्टेशन पर घण्टी बज उठी है, मगर…

तभी लालाजी ने फेरे से लौटकर आये हुए विद्यार्थियों को शाबाशी देते हुए उनकी छुट्टी कर दी और मास्टर उत्तमचन्द तथा राजेश्वर को बुलाते हुए कहा, "ओफ्फोह! कित्ता बड़ा बोझ उतर गया! बताओ तो भय्या जयप्रकाश! सुसरा ईंटों पर कहीं कण्ट्रोल हुआ है अब लौं! मगर हमारी सरकार सुराज में भी कण्ट्रोल कर रई है।"

जयप्रकाश एक फीकी-सी हँसी हँस दिया और फिर उत्तमचन्द की ओर देखकर बोला, "मास्टर सत्यव्रतजी किधर रह गये?"

"मैंन्नें उनकी और प्रिंसिपल साअब की डियूटी स्टेशन पै लगाई है। वो लोग गाड़ी देखकै आवेंगे। चलो, इत्ते हम लोग कुछ खा-पी लेवें।" लालाजी ने स्नेह-विह्वल होकर एक हाथ जयप्रकाश और दूसरा उत्तमचन्द के कन्धे पर रख दिया और तीनों कॉलिज की तरफ़ निकल आये।

लालाजी के माथे से चिन्ता की लकीरें मिट चुकी थीं, फिर भी ऐसा लगता था कि उनके भीतर कुछ अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। साँझ घिर आयी थी। सूरज का लाल गोला बुझ रहा था। गूंगे की दुकान पर हल्की-सी भीड़ थी। शाम की गाड़ी से जानेवाले लड़के गूंगे का पिछला हिसाब चुकता कर रहे थे और जिनके पास पैसे नहीं थे वे अपना हिसाब पूछ रहे थे ताकि छुट्टियों से लौटते हुए ज़रूरत के हिसाब से पैसे झटक लायें।

चौकीदार ने कॉलिज के मुख्य फाटक के पास छः-सात कुर्सियाँ डाल दी थीं। उन्हीं में से एक कुर्सी पर बैठते हुए लालाजी ने पूछा, "ये विद्यार्थी यहाँ क्या कर रये हैं?"

"जी, आज आज से छुट्टियाँ हो गयी हैं न! ये लोग घर जा रहे हैं।"

उत्तमचन्द ने विनयपूर्वक कहा।

"अच्छा, हांऽऽ।" लालाजी ने मुस्कराकर गर्दन हिलायी जो देर तक हिलती रही। तब मास्टर उत्तमचन्द ने जयप्रकाश की ओर साभार देखा और लाला हरीचन्द की ओर से कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोले, "आज मास्टर साहब, आपके पर्सनल (व्यक्तिगत) लिहाज़ के कारण स्टूडेण्ट्स मान गये, वरना मुझे और प्रिंसिपल साहब दोनों को तो साफ़ ही इन्कार कर दिया था। वो तो मैंने लालाजी से कहा कि आप मास्टर जयप्रकाशजी को बुलवा लीजिए।"

"जी!" जयप्रकाश ने आँखें झपकाकर मन्द-मधुर मुस्कराते हुए कहा, "आज वे लड़के दरअसल घर जाना चाहते थे। आप तो जानते ही हैं, इस उम्र में छुट्टियों और घर जाने की कितनी खुशी होती है!"

लालाजी ने चौकीदार को आवाज़ दी, "भय्या! जरा कुछ खाने-पीने के लियो लेत्ता अइये!" लालाजी का अन्तिम शब्द बिजनौरा शटल गाड़ी की सीटी की आवाज़ में डूब गया। लालाजी ने सोचा, अब गाड़ी स्टेशन पर आने ही वाली है। बल्कि अब तक तो प्लेटफार्म पर आ लगी होगी। बस, अब रुकेगी और मुसाफिरों का तांता लग जायेगा कुछ देर तक। और सप्लाई आफ़िसर या कौन-सा अफ़सर है वो उतरेगा! हाँ, ज़रूर उतरेगा। खुद इन्स्पेक्टर ने अपना खास आदमी भेजकर इस 'चेकिंग' की खबर पहले से कर दी। नहीं तो गनेशीलाल के भाई सोहन की तरह मिट्टी पलीद हो जाती। सच है, आदमी से बिगाड़नी नहीं चाहिए, कभी-न-कभी काम आ ही जाता है। आज जयप्रकाश ही अगर साथ न देता तो ६७०० ईंटें एक घण्टे के अन्दर-ही-अन्दर इधर-से-उधर करना आठ-दस मज़दूरों के बस का काम नहीं था।

चौकीदार ने चार प्लेटें ला रखीं। एक-एक रसगुल्ला, गोले की लौज की एक-एक बरफ़ी और समोसा सबके सामने आ गया।

"हाँ भय्या' सुरू करो! लालाजी ने प्यार से कहा और चौकीदार से बोले, "देख, दो प्लेट और लेत्ता आ और दूध कू कह दे।"

उधर से सत्यव्रत और प्रिंसिपल साहब आ रहे थे। दूसरी गाड़ी का इंजन खराब हो गया था शायद, क्योंकि वह अभी तक नहीं आयी थी।

ऐसा अक्सर होता है, अगर दूसरी गाड़ी लेट होती है तो पहली यहाँ उसकी प्रतीक्षा में ज़्यादा देर नहीं रुकती। वह अगले स्टेशन पर वक्त से पहुंचने के लिए मन्द-मन्थर गति से ठण्डी साँसें भरती हुई आगे बढ़ने लगती है।

"क्यों, आये नहीं ?" लालाजी ने पूछा।

"जी नहीं।" प्रिंसिपल ने जवाब दिया।

"अच्छी तरयो दे था ?"

"जी हाँ, स्टेशन पर अब कोई यात्री नहीं है।" सत्यव्रत ने कहा।

लालाजी दूध का गिलास खत्म करते हुए फ़ौरन उठकर खड़े हो गये, "अच्छा तो आप लोग बैठो, मैं अब चला।"

मास्टर उत्तमचन्द ने सबसे पहले खड़े होकर उनका बेंत उन्हें पकड़ाया और जयप्रकाश ने साथ की कुर्सी हटाकर उनके लिए रास्ता बनाते हुए उन्हें फाटक तक छोड़ दिया। लालाजी बेंत हिलाते हुए तेज़ी से शहर की ओर चल पड़े।

वातावरण में एक मिनट तक निस्तब्धता छायी रही। लेकिन जब जाते हुए इंजन की सीटी की दूर से आवाज़ आयी तो राजेश्वर ने गम्भीरतापूर्वक प्रिंसिपल से कहा, "प्रिंसिपल साहब ! लालाजी की और इस बिजनौरा शटल की चाल में कोई खास फ़रक नहीं है। अगर दोनों को एक साथ किरतपुरवाली लाइन पर छोड़ दिया जाये तो मेरा विश्वास है, शायद लालाजी ही पहले पहुंचें।"

एक बुजुर्ग के बारे में ऐसा मज़ाक सत्यव्रत को बड़ा भद्दा लगा। शायद औरों को भी अच्छा न लगा हो, उसने सोचा, राजेश्वर कभी-कभी बिना सोचे-समझे कुछ भी कह जाते हैं। विषय-परिवर्तन के लिए उसने जयप्रकाश से कहा, "आप क्या सोच रहे हैं भाईजी ?"

"मैं ?" जयप्रकाश ने पूछा।

"यह सोच रहे हैं कि शायद अब भी जाते-जाते तनख्वाहें मिल जायें।" राजेश्वर ने मस्ती में व्यंग्य किया।

"अरे हाँ," उत्तमचन्द ने प्रिंसिपल साहब की ओर मुड़कर पूछा, "प्रिंसिपल साहब ! वो आज स्पेशल मीटिंग में हम लोगों की तनख्वाहों

का मामला तय होनेवाला था न ! क्या हुआ ?"

"मुझे मालूम नहीं।" प्रिंसिपल साहब बोले, "शायद कुछ हो नहीं सका।"

गूंगे का नौकर प्लेट और खाली गिलास उठाकर ले गया था। नींबू की बगिया से फैलता हुआ अँधेरा उन सब पर छाता जा रहा था। चौकीदार ने लालटेन साफ़ करके जलायी तो प्रिंसिपल साहब उठकर चल दिये, बोले, "अच्छा साहब, थैंक्यू !"

प्रिंसिपल के जाने के तुरन्त बाद खड़े होते हुए उत्तमचन्द ने कहा, "मैं यह सोच रहा था कि अगर एक-एक प्लेट मिठाई और थोड़ा-सा दूध उन लड़कों को भी मिल जाता जिन्होंने मेहनत की थी, तो क्या बिगड़ जाता ?"

"मगर जिन्हें रिश्वत देने की आदत होती है, वे पारिश्रमिक नहीं दिया करते। हम लोगों का मुँह लालाजी ने मीठा कर दिया और हम खुश हो गये। जब कभी लालाजी को ज़रूरत पड़ेगी, हम फिर लड़कों को मज़दूरों के साथ जोत देंगे। लालाजी ने हमारी खातिर करके न सिर्फ़ हमें कृतज्ञता के बोझ से दबा दिया बल्कि उन पचास मज़दूरों की मज़दूरी बचा ली, जिन्हें इस वक्त कम-से-कम तीस रुपये तो देने ही पड़ते। तो सत्यव्रतजी," जयप्रकाश ने अपने दायें-बायें देखकर कहा, "कहाँ गये सत्यव्रतजी ?"

"मैं यहीं हूँ।" जयप्रकाश के पीछे से आवाज़ आयी।

जयप्रकाश चलते-चलते ठिठक गया। बोला, "आपने एक दिन पूछा था कि मैं इन्हें पूंजीवादी क्यों कहता हूँ ? मैंने कहा था, इसलिए कि इनकी मनोवृत्ति पूंजीवादी है। और आपने पूछा था कि पूंजीवादी मनोवृत्ति कैसी होती है। वह ऐसी होती है···देखा आपने ! ये जानते हैं कि न्याय और हक़ के लिए आवाज़ उठानेवाले सब लोग नहीं होते—थोड़े-से होते हैं। और उन्हें, ये कुछ-न-कुछ खिला-पिलाकर वश में कर लेते हैं। इसी लिए तो बड़े-बड़े प्रेस, अखबार, सम्पादक और कवि-लेखक वग़ैरा पूंजीपतियों या सरकारों के हाथ बड़ी-बड़ी कीमतों पर बिके हुए हैं। हम लोग मामूली आदमी हैं, इसलिए हमारा मुँह मिठाई खिलाकर ही बन्द

कर दिया जाता है।"

राजेश्वर को कभी-कभी जयप्रकाश की यह टर्र-टर्र बहुत बुरी लगती है, विशेषकर उस वक्त जब वह कुछ सोचना चाहता हो। जयप्रकाश की बातों पर झुंझलाकर बोला, "तो यार, तू न बिका होता, तू ही खोल देता ज़बान ! हम भी देखते कि तुम कौन-सी क्रान्ति करते !"

"मैं कौन-सा अफ़लातून हूँ !" जयप्रकाश ने कहा, "मैं तो तुमसे भी पहले बिक चुका हूँ। मेरे अन्दर तो तुम लोगों से भी छोटी चिनगारी है। पर हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूँ कि बुझने से पहले उसे कहीं बो जाऊँ, जो मसाल बनकर जलती रहे।"

राजेश्वर ने वंचनामय व्यंग्य किया, "ये क्या खरीदेंगे आदमी को ? इन्हें पूंजीवादी कहना, पूंजी शब्द के साथ ज्यादती करना है।"

सत्यव्रत एकदम प्रसन्नता से राजेश्वर का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला "बिल्कुल ठीक। यही मेरा विचार है।"

राजेश्वर बोला, "ये तो साले गिरहकट हैं। पूंजीपति तो···"

जयप्रकाश ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी। बोला, "मैं मानता हूँ कि धन की दृष्टि से ये लोग किसी पूंजीपति के पांव की धूल भी नहीं, लेकिन ऐब और हथकण्डे इन्होंने सारे उन्हीं जैसे सीख लिये हैं। मेरा तो खयाल है कि भारत में जैसे ६० फ़ी सदी सरकारी कर्मचारीवर्ग अपने-आपको अफ़सर समझकर व्यवहार करता है, वैसे ही यहाँ का मध्यवर्गीय वणिक भी अपने-आपको शत-प्रतिशत पूंजीपति से कम नहीं समझता। वह भी श्रम की अपेक्षा करके शोषण द्वारा धन उपार्जित करना चाहता है। चाहे वह शोषण किसी व्यक्ति का हो या समूह का, समाज का हो या संस्था का, ज्ञान का हो या चरित्र का। अब यही देखो कि कल से ही इन्होंने पूरे कॉलेज में यह अफ़वाह उड़वा दी है कि हमारे वेतन देने के सम्बन्ध में आज स्पेशल मीटिंग होगी। पर कहाँ गयी वो मीटिंग ?"

"इससे क्या लाभ हुआ ?" सत्यव्रत ने पूछा, "आज नहीं, छुट्टियों के बाद, वेतन तो इन्हें देना ही पड़ेगा !"

जयप्रकाश हल्की खुनखुनी हँस दिया, बोला, "इन्हें खतरा था कि कोई भूखा भूख-भूख चिल्लाकर सारे भूखों को एक जगह इकट्ठा न कर ले !"

"और मास्टर साहब !" उत्तमचन्दजी ने बात का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, "आप इस खुशफ़हमी में न रहिए कि वेतन तो इन्हें देना ही पड़ेगा। हो सकता है कि छुट्टियों की 'पे' भी गोल हो जाये। अभी आपको तजरबा नहीं है यहाँ का !"

"कौन ! हम एक पाई भी नहीं छोड़ेंगे।" राजेश्वर ने तड़फकर कहा, "मेहनताना माँगते हैं, कोई भीख थोड़े ही माँगते हैं !" और राजेश्वर की आँखों में विद्रोह की चिनगारियाँ-सी जल उठीं।

आकाश में तारे छिटकने लगे थे और बातें करते-करते ये लोग अभी मुश्किल से सदा-सुहागिनवाली बाढ़ के पास पहुंचे होंगे।

"बस !" जयप्रकाश मुग्ध होकर बोला, "बस, यही अहसास मैं हर अध्यापक को कराना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि यही वाक्य मैं सबके मुंह से सुनूं ! और इसलिए छुट्टियों के बाद इस मामले को हम अपनी टीचर्स-एसोसियेशन में रखेंगे ! क्यों ?"

सबने सहमति प्रकट की।

सामने दाग़दाग़ उजाला लिये शहर दिखायी दे रहा था। जयप्रकाश ने विषय-परिवर्तन करना चाहा। किन्तु सत्यव्रत उसी विषय पर सोच रहा था, बोला, "यदि ऐसी सच्ची कठिनाई के लिए एसोसिएशन कुछ करना चाहती है तो मैं उसमें पूरा योग देने को तैयार हूँ। जब भी और जहाँ भी सत्य की रक्षा के लिए आप मुझे पुकारेंगे, मैं कण्ठ और देह की पूरी शक्ति से आपको उत्तर दूंगा। जहाँ सत्य का दमन होता है, मैं वहाँ चुप नहीं बैठ पाता।"

वातावरण अचानक गम्भीर हो उठा, हालांकि आकाश में कुछ और तारे चटख आये थे। और हवा इस वाक्य को ले उड़ी थी—जहाँ सत्य का दमन होता है, मैं वहाँ चुप नहीं बैठ पाता। जयप्रकाश को लगा कि काश, यह सारा शहर एक गूंजनेवाला हॉल होता और उसकी प्रत्येक दीवार से यही ध्वनि निकल रही होती ! जयप्रकाश को याद आया कि पहले भी सत्यव्रत ने कहा था—जहाँ सत्य का दमन होता है वहाँ मुझे बड़ी घुटन-सी होती है। लेकिन आज का वाक्य उससे कितना भिन्न और कितना स्पष्ट है—'जहाँ सत्य का दमन होता है, मैं वहाँ चुप नहीं बैठ पाता।'

"तब आप यहाँ चुप नहीं बैठ पायेंगे। यहाँ सत्य का दमन नहीं हनन भी होता है।" सत्यव्रत की बात पर उत्तमचन्द ने एक गम्भीर मज़ाक किया। किन्तु मज़ाक देर के कारण पिछड़ गया और एक-दूसरे से विदा होते वक़्त भी वे लोग पूर्ववत् गम्भीर बने रहे।

तालाब का पक्षी

"भई मास्टर साहब! अब तो आप लम्बी छुट्टियों पर जा रहे हो!" चौधरी नत्थूसिंह ने सत्यव्रत की अँधेरी कोठरी में उसकी उपस्थिति को लक्षित करके दरवाज़े पर ही खड़े-खड़े कहा, "वह विमला कह रही थी, उसे कुछ काम-धाम देते जाते तो उसमें लगी रहती। खाली पड़ी हुई भी क्या करेगी!"

सत्यव्रत, जयप्रकाश वग़ैरा के साथ, भट्ठे से लौटकर अभी आया था। हॉस्टल के नौकर से लालटेन जलाने को कहकर और खाने की बात पूछकर वह थकान उतारने के लिए तख़्त पर लेट गया था। उसने जैसे ही चौधरी साहब की बात सुनी वह फ़ौरन बाहर निकल आया, बोला, "जी, भोजन के बाद कोई आठ-साढ़े-आठ के लगभग आऊंगा।"

चौधरी साहब चले गये तो अपने उत्तर पर स्वयं सत्यव्रत को ग्लानि-सी हुई। कितनी तत्परता से उसने 'हाँ' कर दी जैसे उनके यहाँ जाने के लिए घण्टों से उधार खाये बैठा हो!

फिर वह स्वयं अपना विश्लेषण करने लगा। उसके मन में आज सुबह विमला को पढ़ाकर लौटने के बाद से अनेक बार यह भाव आया था कि वह हमेशा की तरह शाम को ही पढ़ाने जाता तो अच्छा रहता। फिर उसी के मन ने जैसे उसे ललकारकर कहा कि क्या आज सुबह-ही-सुबह तुम इसलिए नहीं गये थे कि वह शाम को भी बुलवाये?

सत्यव्रत ने फिर यों ही नौकर को पुकारकर खाने की बात पूछी और उसके उत्तर से आश्वस्त होकर फिर उसी विचारधारा के सूत्र पकड़ लिये।

चौधरी साहब द्वारा विमला के निमन्त्रण को पाकर उसे लगा कि वह एक शिल्पकार है, जिसने किसी मूर्ति को बनाने के बाद अपने सारे औज़ारों को उठाकर रख दिया है और एकचित्त होकर अपनी ही निर्मिति को देख रहा है। और फिर उसी के सौन्दर्य में डूबकर सारी थकान भूल गया है।

सत्यव्रत ने सोचा, उसकी अपनी धारणा कितनी सही उतरी! सुबह चलते-चलते यों ही उसने कहा था, "देखो विमला, मैं तो कल सुबह की गाड़ी से चला जाऊँगा। तुम अपने अध्ययन के प्रति सतर्क रहना। और जो मैंने बताये हैं वे निबन्ध अवश्य लिख रखना।"

"कल सुबह ही···?" विमला ने कापियां एक तरफ को खिसकाते हुए पूछा था और आश्चर्य से उसका मुंह खुला रह गया था।

"हां, आधे से अधिक लड़के तो आज ही चले गये। कल महाराज और नौकर भी चले जायेंगे।"

"तो आप यहाँ खाना खा लीजिएगा।"

"वैसा सम्भव नहीं। जाना ही होगा।" सत्यव्रत बोला था। और विमला ने उससे रुकने का आग्रह नहीं किया था। उसकी छोटी-छोटी आंखों में एक धुन्ध-सी उभरती गयी और वह अपनी सारी किताबों को अनायास कापियों के ऊपर जमाती गयी थी। और उसे लगा कि वह एक बहुत ऊँचे पहाड़ पर आ बैठी है जहां से नीचे कूद पड़ने का प्रस्ताव किसी ने अभी-अभी उसके सामने रख दिया है।

सत्यव्रत ने कुछ उत्तर न पाकर विमला की ओर देखा तो घबरा उठा। उसके होंठ उसी दिन की तरह फड़फड़ाने लगे थे और नथुने फैल रहे थे। विमला ने आकुल पलकें उठाकर उसकी ओर निहारा तो उसे एक क्षण के लिए उसकी आँखें छोटे तालाब की तरह लगीं जहां से बरुनियों के वृक्षों में क्रीड़ा करता हुआ आंसू अभी किसी पंछी की तरह उड़ेगा और चांय-चांय करता हुआ उसके शीश पर मँडराने लगेगा। एक कातर और करुण कराह···फिर विमला की लम्बी-लम्बी सिसकियां···और तब रोने की आवाज़ सुनकर उसी दिन की तरह चौधरी साहब आ गये तो···? घबराकर परिस्थिति सँभालने के लिए उसने किताबों पर रखा हुआ

विमला का हाथ अपने हाथ में ले लिया और मेज़ पर आगे को झुकता हुआ बोला, "मुझे समझने का प्रयत्न करो, विमला ! देखो, अगर तुम रोयीं तो मैं तुमसे कभी नहीं बोलूंगा। कभी नहीं।"

सत्यव्रत कुछ-कुछ विमला को समझने लगा है, तभी तो उसका विवश उपाय सफल हुआ। रोने-रोने को होती हुई विमला मुस्करा दी—बल्कि खिलखिलाकर हँस पड़ी। ऐसी हँसी कि कमरे में देर से व्याप्त सन्नाटा सहसा बिखर गया। जैसे किसी ने घुंघरुओं से लदे पेड़ की डाली पकड़कर हिला दी हो।

"अरी निगोड़ी, दांत चीर रई है कि पढ़ रई है !" अन्दर से बुढ़िया दादी ने आवाज़ लगायी। बुढ़िया को दिखायी कितना ही कम दे, सुनायी ज़रूरत से ज्यादा देता है। शायद उसके कान भी इधर ही लगे रहते हैं।

सत्यव्रत घबराकर उठ लिया। विमला को भी अहसास हुआ कि वह ज़रा ज्यादा ज़ोर से हँसी थी।

नौकर ने खाना लाकर रखा तो एक पल को सत्यव्रत का ध्यान उचट गया, मगर वह फिर सोचने लगा कि चलते वक्त दुबारा मिलने अथवा आने और जाने की कुछ भी बात तो विमला उससे नहीं पूछ पायी थी। इसीलिए उसने आज शाम को बुलवाया है। पर उसने उस बुलावे का यह जवाब तो नहीं सोचा था कि खाना खाने के बाद आऊँगा। यह बात और है कि जाने की अनिच्छा उसकी बिल्कुल न थी।

खाना खाकर उसने हाथ धोये और कोठरी की साँकल चढ़ाकर ताला बन्द करने ही वाला था कि रामपूजन और उम्मेदसिंह आ खड़े हुए, "आप कहीं जा रहे हैं, मास्टर साहब ?"

"हां, चौधरी साहब के पास होता हुआ मास्टर जयप्रकाशजी की तरफ़ जाऊँगा ! क्यों ?" प्रश्न और सफ़ाई एक साथ सामने रखते हुए सत्यव्रत ने कहा। और उसे ग्लानि हुई कि वह अनावश्यक ही झूठ बोल रहा है।

"आप साहब, हमें ये बता दो कि छुट्टियों के बाद हम महाराज को

लायें या न लायें ?" रामपूजन ने पूछा।

सत्यव्रत एक पल के लिए रुका और पहले अपना झूठ सुधारकर मन हल्का करते हुए बोला, "मैं चौधरी साहब के यहां जा रहा हूं। लौटकर बातें करूँगा।" और फिर उसके प्रश्न का उत्तर दिया, "क्यों, रसोइये को क्या हुआ ?"

"तो उसे लायें ?" उम्मेद ने सवाल किया।

"अवश्य लाओ।" सत्यव्रत ने उत्तर दिया और ताला बन्द करने लगा। सोचा, सत्य आदमी में कितनी स्फूर्ति और बल भर देता है !

रामपूजन और उम्मेद अन्दर चले गये। और कुछ ही देर बाद भीतर सहन में से ऐसी आवाज़ें आने लगीं जैसे दसियों भूखे एक-दूसरे पर टूटे पड़ रहे हों।

आठ-दस लड़के हॉस्टल के आंगन में एक कोने में बनी रसोई की सीमा-रेखा के बाहर बैठे हुए खाना खा रहे थे और रोटियों के लिए आपस में लड़ते हुए महाराज से भी झगड़ रहे थे, "इस बार मेरा नम्बर था, नहीं, मेरा नम्बर था।"

रामपूजन और उम्मेदसिंह के आते ही सब-के-सब थालियां छोड़कर उसके पास जा पहुंचे, "क्या कहा ?"

'कह दिया है कि महाराज को लाना।" रामपूजन ने उत्तर दिया और लड़कों ने खुशी में 'महाराज की जय' का नारा बुलन्द किया।

सत्यव्रत लड़कों की इस निरर्थक प्रसन्नता पर खीजता हुआ-सा चौधरी साहब के चबूतरे की तरफ़ बढ़ गया। थालियों की खनखनाहट और रोटियों के नम्बर पर गरमागरमी फिर शुरू हो गयी थी। चौधरी साहब की बैठक तक सत्यव्रत लड़कों की उन अनियन्त्रित और बेसुरी आवाज़ों को सुनता रहा। मगर वहां पहुंचकर उसका ध्यान इस ओर से फिर गया।

सोचता था कि विमला उसकी प्रतीक्षा में बैठी होगी। परन्तु विमला का कमरे में पता भी न था। सिर्फ़ उसकी कुछ किताबें और कापियां मेज़ पर रखी थीं। सत्यव्रत ने एक आवाज़ विमला को दी और फिर उन्हीं किताबों और कापियों को उलटने-पुलटने लगा। सभी कापियां हिन्दी की

थीं। किसी पर लिखा था काव्य, किसी पर गद्य और किसी पर निबन्ध। पर एक कापी पर विषय के सामने 'व्यक्तिगत' लिखा हुआ था। किताबों पर सरसरी-सी नज़र डालकर सत्यव्रत ने उसी को उठा लिया। कापी बिल्कुल नयी थी। इस पर साप्ताहिक 'नवयुग' से निकालकर एक बड़ी ही कलात्मक तस्वीर की जिल्द चढ़ायी गयी थी। पहले पृष्ठ पर नाम अंकित था और दूसरे पर उसी दिन की तारीख डालकर कुछ लिखा गया था। सत्यव्रत ने आगे के पृष्ठ उलटकर देखे तो वे कोरे थे। विमला को एक और आवाज़ देकर सत्यव्रत फिर उसी पृष्ठ को पढ़ने लगा।

—दिनांक ५ अक्तूबर। आज मेरे आराध्य ने मुझे मर्मान्तक पीड़ा पहुँचायी। अश्रुओं के उस वेग को मैं मीरा के समान विष की भाँति पी गयी, किन्तु मेरा हृदय किसी छिद्रित यान की भाँति अपार जल-राशि में··· निस्सहाय डगमग-डगमग होता रहा। ऐसी निष्ठुरता पुरुष जाति में ही होती है कि इतने दिवसों का विछोह करें और उसके लिए सूचना तक भी न दें। आह! यदि वह बिना बताये चले जाते तो मैं कैसे जीवित रहती! और उस पल जब उन्होंने अपने गमन की सूचना दी तो कैसा प्रतीत हुआ! मानो कोई अन्तस्थल-रूपी निर्मल जलभरे कलश में हाथ डालकर तीव्रता से खँगाल रहा हो। अथवा कोई प्राणों से उनका स्पन्दन छीने ले रहा हो। कैसे निर्मोही, कैसे निर्मम···

"हाय!" सहसा सामने से आती हुई विमला लजाकर अचानक लचक के साथ गर्दन टेढ़ी करती हुई सत्यव्रत की तरफ़ कापी छीनने के लिए झपटी, पर इससे पूर्व ही सत्यव्रत ने सहज भाव से कापी उसके हाथ में दे दी।

"ये तुम···पढ़ती हो?" सत्यव्रत ने मन के भावावेगों को आवेश में लपेटते हुए कहा, "मैं बताये देता हूँ कि तुम इस वर्ष भी परीक्षा में पास नहीं हो सकतीं।"

"आप शिक्षक ही ऐसे हैं।" विमला ने मुँह बिचकाकर प्यार से कहा। उसने दरवाज़े में खड़-खड़े सत्यव्रत को अपनी 'व्यक्तिगत कापी' पढ़ते देख लिया था।

"शिक्षक क्या करेगा?" सत्यव्रत ने उसकी किताबों से शरतचन्द्र के

'चरित्रहीन' की एक प्रति निकालकर उसके सामने फेंकते हुए कहा, "पाठ्य-पुस्तकें तुम पढ़ती नहीं और उपन्यासों को पढ़ने का तुम्हें समय मिल जाता है !"

"हाय ! शरतचन्द्र की तो मैं भक्त हूँ, मास्टर साहब ! आपको शरतचन्द्र के उपन्यास अच्छे नहीं लगते ?"

"मैंने नहीं पढ़े।"

"अच्छा, कुशवाहा कान्त के ?"

"मैंने उसे भी नहीं पढ़ा।"

मुस्कराकर विमला ने पूछा, "अच्छा, आपने कोई उपन्यास पढ़ा है ?"

"हाँ, दस-पांच ! किन्तु मैं उपन्यास नहीं पढ़ता।"

"कहानियाँ पढ़ते हैं ?"

"कभी-कभी !"

"अच्छा, आपको इधर कौन-सी कहानी अच्छी लगी ?"

एक पल के लिए सत्यव्रत सोचता रह गया। फिर बोला, 'किसी पत्रिका में राजेन्द्र यादव की कहानी देखी थी 'नरभक्षियों के बीच', वह मुझे अच्छी लगी। उसमें एक सन्देश था। उसे पढ़कर मांसाहार के प्रति स्वाभाविक अरुचि होती है। वरना आजकल कहानियाँ कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं करतीं।"

"तब आप कुशवाहा कान्त और शरत के उपन्यास जरूर पढ़िए, मास्टर साहब !" विमला ने भावुकता में डूबकर कहा, "उनमें आपको जीवन का वास्तविक आदर्श प्रतीत होगा।"

"देखता हूँ, साहित्य के प्रति अनुराग बहुत बढ़ गया है !" सत्यव्रत ने बच्चों-जैसा प्रोत्साहन देते हुए उससे पूछा, "अच्छा बताओ, उनमें किस आदर्श का चित्रण हुआ है ?"

"मानव-जीवन के आधार का ! नारी-पुरुष के सनातन सम्बन्धों का, अर्थात् प्रेम का।" विमला ने अन्तिम वाक्य एकदम धीरे से कहा और आगे झुकती हुई आजिज़ी से बोली, "आप ज़रूर पढ़िए, मास्टर साहब, मैं आपको कुशवाहा कान्त का 'पपीहरा' ला देती हूँ।"

"प्रेम का आदर्श !" सुनकर सत्यव्रत की इच्छा उसे डांट देने की हुई

थी। यह भी कोई बात है कि वह उसके सौजन्य का लाभ उठाकर अवांछित निकटता प्राप्त करती जा रही है! अपने-आप यह मान बैठी है कि वह उसकी प्रेमिका है और उसके इतने निकट है! मगर उसकी विनयशीलता और कोमलता पर ऐसी प्रतिक्रिया प्रकट करना भी सौजन्य के विरुद्ध लगा सत्यव्रत को। बोला, "अच्छा देना, पढ़ूंगा।"

विमला भागकर किताब लाने चली गयी।

"अरे!" सत्यव्रत कहने को हुआ, "ऐसी भी क्या जल्दी है!" पर तब तक विमला चौखट लांघ चुकी थी।

सत्यव्रत उपन्यासों में कतई रुचि नहीं रखता। सच्चाई के साथ सप्रमाण प्रस्तुत किये हुए असत्यों का विवरण ही तो है उपन्यास! और फिर आधुनिक उपन्यास तो यथार्थवाद के नाम पर अश्लीलता और नग्न चित्रण का ही साकार रूप है।

थोड़ी देर बाद भीतर से बुढ़िया दादी की कर्कश आवाज़ों ने सोचने में विघ्न डाला। दादी विमला पर बिगड़ रही थी, "जलगयी कब से तो गीत्तों में जाने की रट लगाये थी और अब बुलावे में जाने सै कतरावे हैगी। न्यारी आज ही पढ़कै मास्टरनी हो जावैगी। मेटगयी, क्या तेरी जगह मैं जाकै गाऊँगी?"

पड़ोस में पाण्डे मुख्तार के यहाँ ढोलक खड़कने लगी थी। एक ही ताल, एक ही टेक, जिस पर औरतें फिल्मी गानों से लेकर शास्त्रीय संगीत तक के सारे सुर इस पार से उस पार उतार देती हैं। चाहे किसी बच्चे का जसुट्टन हो या किसी की शादी का खोड़िया (नृत्य-कार्यक्रम); कहीं भजन-कीर्तन हो या शौकिया गीतों का कार्यक्रम, ढोलक का ताल नहीं बदलता। सत्यव्रत ने सोचा, उसे सुनकर यह निर्णय करना बहुत मुश्किल है कि यह ढोलक किस सिलसिले में बज रही है! शायद ढोलक बजाकर निमन्त्रण दिया जा रहा है।

विमला मुँह लटकाये, किताब लिये हुए लौट आयी। उसके क्वांरे चेहरे पर गहरी विवशता थी। सत्यव्रत ने किताब ले ली। उसे विमला की मुखमुद्रा देखकर यह समझते देर न लगी कि विमला गीतों के बुलावे में न जाना चाहे, तो भी उसे जाना पड़ेगा। और इसलिए वह खुद खड़ा होत

हुए मुस्कराकर बोला, "मैं चलूंगा। तुम्हें भी सम्भवतः कहीं जाना है ?"

"हां।" विवशता की प्रतिमूर्ति-सी विमला ने गर्दन हिला दी।

'बस, अपने अध्ययन के प्रति सजग रहना।" सत्यव्रत ने फ़ौरन उठते हुए कहा। मगर जिस त्वरा से वह कुर्सी से उठा था उस तेज़ी से उसके पांव नहीं उठ सके।

विमला भी उठ खड़ी हुई, और एक बार कमरे के पिछले सहन में खुलनेवाले दरवाज़े की ओर देखकर आगे बढ़ती-बढ़ती ठिठक गयी। चौधरी साहब लालटेन लिये हुए परली कोठरी से निकलकर बाहर बैठक की तरफ़ आ रहे थे। एक हाथ मेज़ पर रखे दूसरे हाथ से विमला ने किताबों-कापियों को कसकर सीने से लगा लिया, जैसे दिल की धड़कनों को वश में करने का प्रयत्न कर रही हो। फिर सत्यव्रत के कमरे की चौखट पार करते ही फुसफुसाकर बोली, "सुनो, रात को गीतों से लौटते में आऊँगी। दरवाज़ा खुला रखना।"

और तीर की तरह तेज़ी से वह अन्दर हवेली में चली गयी। बाहर के दरवाज़े पर चौखट को पकड़े सत्यव्रत खड़े-का-खड़ा रह गया। पल-भर में पूरा कमरा सैकड़ों बार उसके सामने घूम गया और वह उसे कहीं से भी न छू सका। विवश पराजित सैनिक की तरह, खाली हाथ, भावशून्य-सा वह अस्थिर कदमों से अपनी कोठरी की तरफ़ चल दिया।

दो सेक्रेटरी

दुकान पर बैठे हुए गनेशीलाल सबको देखते हैं, सबकी बातें सुनते हैं। सारे शहर में चर्चा है कि सबसे मज़ेदार इलेक्शन दक्षिणी वार्ड में होगा, जहाँ से लाला हरीचन्द और बाबू हरकरण सहाय खड़े हैं। लालाजी को कांग्रेस का समर्थन प्राप्त है और बाबू साहब आज़ाद खड़े हैं। अब तक लालाजी की जीत अधिकतर अध्यापकों के प्रयत्नों के कारण ही होती आयी है। पर इस बार इलेक्शन में अध्यापक भी आधे-आधे बंट जायेंगे और विद्यार्थी भी। कमेटी के आधे से अधिक मेम्बर तो अभी से बाबू साहब के साथ हैं।

जहाँ सत्ता वहाँ मत्था !

"लेकिन निस्चू करके कोई कुछ नईं कै सकता।" मुकद्दम चाचा मण्डी के चबूतरे पर बैठे निर्णय दे रहे हैं, "हाँ, इतना ज़रूर है कि हरीचन्द के पाप का घट अब भर गिया। है भला सुसरी कोई इंसाप की बात है—उस जरा सी घुड़साल के ढाई सौ रुपये महीन्ना ! मैं तो कहूँ भई, इससे तो लोण्डों को नंगा करकै उनके कपड़े उतार लो, या मास्टरों कू संग लेक्के डकैती-उकैती डालनै लगो।"

मण्डी में बहुत भीड़ है। गाँवों से लोग-वाग दशहरे का सामान खरीदने आये हैं। नमक-मिर्च, किशमिश, बादाम, मेवे और कपड़ा-लत्ता। एक परिचित पल्लेदार ने लखूवाले और सतूपुरे के आदमियों को देखकर आवाज़ लगायी, 'उधर भैया चौधरी ! सामने, वो कपड़े की दुकान है और वो मुतफ़रके की। बड़ी सस्ती चीज़ें मिलैं हैं और ऊपर से खातिर बहोत तकड़ी होवै है।"

गाँव के चौधरी लोग हँस पड़ते हैं। समझते हैं कि किशना जाट और सोहन के झगड़े की ओर संकेत है। दूर से आवाज़ लगाते हैं, "हम ना हुवे लाला, लोण्डा अकेल्ला था। फिर भी पूछ लीजो कित्ते दिनों हल्दी पी थी दूध में।" और सोहन की दुकान के सामने से निकले चले जाते हैं।

गनेशीलाल ने अनुभव किया कि उस घटना के बाद से उनकी दोनों दुकानों पर गाँववालों का आना कम हो गया है। बिक्री पर भी असर पड़ा है। और बदनामी क्या कम हुई है ? इसीलिए तो वे सतर्क हो गये हैं। पहले तो गाँववालों को लट्ठे की बजाय मोटी मारकीन भी भिड़ा देते थे, किन्तु अब उन्होंने नौकरी को सख्त हिदायत दे रखी है कि ऐसा बिल्कुल नहीं होना चाहिए। साख उखड़ गयी तो कहीं के नहीं रहेंगे।

उस दिन उन्होंने यों ही बाज़ार से गुज़रते हुए खाला से पूछ लिया था, "क्या चाहिए, खाल्ला ?" और खाला भड़क उठी थी, "अरे जो चाहिएगा खुद खरीद लूँगी। तेरी दुकान पे आके मुझे लुटना ना···देक्खो तो सही, राह चलते लोगों को पकड़ कै लूट्टै है जलगया। इत्ता पैस्सा कमाया मगर हबिस नहीं भरी। जभी तो मास्टर तक जल गये के नाम पै थू-थू करें।"

खाला बड़बड़ाती हुई कहती ही गयी तो गनेशीलाल को बोलना पड़ा, "खाल्ला, जवान सँभाल। मैंन्नें तुस्सै येई तो पूच्छा था..."

खाला बोली, "अरे, क्या जबान सँभाल्लूं? मुस्से कहवे, पूच्छा था। अरे, क्यूं पूच्छा था! मैं क्या कोई अन्धी हूँ जो तेरे यहाँ छूटने कू आऊँगी! तेरे मास्टर तो तेरी कफ्फन-खसोट्टी दत के मारो बिया-शादियों तक का कपड़ा खरीदने बिजनौर जावैं हैं और मुझसे पूच्छे क्या चहिए?"

गनेशीलाल जव तक सँभलकर मास्टर का नाम पूछते तव तक उधर से मुकद्दम चाचा ने बाजी सँभाल ली, "अरी पंजे की खाला, क्या लूट लिया तेरा?" मुकद्दम चाचा बस खाला से ही मज़ाक करते हैं। लोगों का कहना है कि पुरानी राह-रस्म है!

"अरे, मेरा क्या लूट्टेगा जलगया!"

"वही तो।" मुकद्दम चाचा तेज़ी से बात काटकर बोले, "तैंन्ने जान्ने कित्तों का क्या-क्या लूट्टा! वही तो मैं सोच्चूं तुझे कौन लूट सकै!"

खाला शरमाती-बड़बड़ाती और चाचा को कोसती आगे बढ़ गयी और एक सहज आपत्ति अनायास टल गयी। किन्तु गनेशीलाल यह ज़रूर सोचते रह गये थे कि बदनामी बहुत हो चुकी है। फिर उन्होंने यह भी सोचा कि वह कौन-सा मास्टर है जिसने बिजनौर से कपड़ा खरीदा है!

अभी मुकद्दम चाचा की बातें सुनकर उन्हें लगा कि लालाजी के बारे में ये सारी बातें ज़रूर गुलज़ारीमल की उड़ायी हुई होंगी वरना मुकद्दम चाचा को हॉस्टल के किराये की बात कैसे मालूम होती! चाहे इलेक्शन-स्टंट ही हो मगर है तो बदनामी की ही बात। और हाँ, कपड़ा खरीदने-वाली मास्टरों की बात खाला ने ज़रूर जयप्रकाश के कमरे पर सुनी होगी। वहीं तो खाला का भी घर है। और शादी का कपड़ा...हाँ, याद आया, सत्यव्रत की बहन की शादी है। वह आया भी था तनख्वाह लेने के लिए। कहता था कि बहन की सगाई भेजनी है। पर तनख्वाह ही नहीं मिली तो क्या कपड़ा खरीदेगा?

गनेशीलाल को हँसी आ गयी कि अनायास ही, तनख्वाह न दिलवा-कर, उन्होंने एक ग्राहक को लुटने से रोक लिया। अब तो वह उसे गाँठ ही लेंगे। किन्तु उन्हें गुस्सा आया कि देखो, हमारे ही टुकड़ों पर पलनेवाले ये

मास्टर कितने नमकहराम होते जा रहे हैं।

गनेशीलाल गद्दी पर अधलेटे-से माथे पर हथेलियाँ रखे सोच रहे थे। उनका पाँव हिल रहा था और आँखें बन्द थीं। सहसा प्रवीणचन्द्र शास्त्री के नमस्कार से चौंककर वह उठ बैठे और फिर मुस्कराकर शास्त्री जी को अपने पास बिठाते हुए बोले, "आओ भई सास्त्रीजी, तुम्हारे तो कहीं पतेई नईं चलते ? सुनाओ, तुम्हारे स्कूल के क्या हाल हैं ?"

शास्त्रीजी इस अत्यधिक आदर और विनयशीलता से लजाकर अपने भारी-भरकम शरीर को समेटने की कोशिश करने लगे और फिर दायें हाथ की बड़ी उँगली पर धोती का छोर लपेटते हुए बोले, "आपको तो सब ज्ञात ही है।"

दरअसल पिछले तीन-चार वर्षों से सस्कृत के लेक्चरर के पद पर कार्य करने के बावजूद उन्हें प्रशिक्षित अध्यापकों का ही वेतन-मान मिल रहा था और वह भाषा-अध्यापक के पद पर ही स्थायीवत घोषित किये गये थे। इस समय एकान्त देखकर वह अपने लिए लैक्चरर-पद की बात करने के लिए ही सेक्रेटरी गनेशीलाल के पास चले आये थे।

गनेशीलाल और पास खिसक आये। शास्त्रीजी के कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से बोले, "भई, ये सत्तेवरत की बात तो बताओ, हमने सुना है कि कुछ···" और वाक्य को उन्होंने उपेक्षापूर्वक मुंह बिचकाकर अधूरा छोड़ दिया।

शास्त्रीजी का सिमटता हुआ शरीर फिर फैलने लगा और उनकी काजल-लगी गोल आँखों में विस्मय का रंग उभर आया। बोले, "आप छात्रों से पूछिए, मेरे तो वे सहकर्मी हैं, सहयोगी। माँ सरस्वती के शिष्य के नाते मैं तो किसी की निन्दा करना गोमांस-भक्षण तुल्य समझता हूँ। किन्तु उनकी विद्वत्ता और नीति-नियम सम्बन्धी आचरण सब बाह्य हैं। मैं चाहूँ तो उनसे भी अधिक प्रदर्शन कर सकता हूँ। मैं कलाकार हूँ। किन्तु मैं जो हूँ वही रहना चाहता हूँ ! माँ सरस्वती के चरणों की सौगन्ध खाकर कह सकता हूँ कि संस्कृत भाषा मेरे लिए मातृभाषा के तुल्य है, किन्तु मैं अपनी विद्वत्ता का प्रचार नहीं करता। इसलिए आप उन्हें संस्कृत का विद्वान समझते हैं—और मुझे इस बार भी प्राचार्य का पद नहीं दिया

गया।"

गनेशीलाल को यह चर्चा बिल्कुल नहीं रुची। वह विषय को दूसरी ओर मोड़ते हुए बोले, "देख्खो सास्त्रीजी, कोई थोड़ी देर कू खराब मास्टर भी होवै तो भी कोई बात नइँ, मगर खराब आदमी मुझकू बिल्कुल नइँ अच्छा लगता। मास्टर सत्तेबरत के बारे में मैंने जो सुना उससे मुझे बड़ा कलेश हुआ···"

दुकान पर गाँव के तीन-चार ग्राहक आ गये थे। हाथों में लम्बी-लम्बी लाठियाँ और झोले। शरीर पर बण्डी और घुटनों-घुटनों तक धोती। नौकर को हिदायत देकर लालाजी फिर शास्त्रीजी की ओर मुखातिब हुए।

शास्त्रीजी सत्यव्रत की विद्वत्ता से ही अपनी प्रतिद्वन्द्विता समझते थे। सोचा, सत्यव्रत का प्रभाव उखड़ा तो उनका अपना प्रभाव जमेगा। इसलिए धीरे से बोले, "आप समझते हैं अपने सहकर्मी के सम्बन्ध में ऐसी बातें सुनकर हमारी आत्मा को ग्लानि नहीं होती? अभी उस दिन छात्रों में चर्चा थी कि मोहसिन सदैव सत्यव्रतजी के पीछे लगा रहता है और वह सदैव उसी के कन्धे पर हाथ रखे घूमते रहते हैं तो मेरा मस्तक लज्जा से नत हो गया। किन्तु करता क्या? फिर भी अपना कर्त्तव्य था समझा देना। सो वह कहने लगे मुस्लिम छात्र है, संस्कृत के प्रति अनुराग रखता है···इसीलिए! हम क्या कहते! चुप हो रहे।"

"हूँ," गनेशीलाल ने गर्दन हिलायी।

"ऐसे व्यक्ति को व्यवस्था-समिति द्वारा अल्प-वय एवं किशोर छात्रों के छात्रालय का अधीक्षक नियुक्त किया गया है!" शास्त्रीजी ने उच्छवास छोड़ा।

"अरे भैया, इनने तो हमारे होटल का भी कबाड़ा कर दिया!" लाला गनेशीलाल ने भी एक ठण्डी साँस भरी, "भला बताओ जिन लौण्डों के भले के लिए हमने होटल खोल्ला, सैकड़ों रुपये के बर्तन-भाँड़े और नौकर-चाकर रक्खे, आप सब लोगों के कहने-सुनने से इत्ती मुसीबत उठायी, वोई लौण्डे अब गाँव से पण्डत कूँ बुला लावें—ऐसा कहीं हो सकै? बिना मास्टर के पूच्छे-गच्छे लौण्डे ऐसा कर सकें?"

इस विषय में शास्त्रीजी की रुचि नहीं थी। कॉलेज में भी जब ऐसी

बातें उठती हैं तो शास्त्रीजी को आश्चर्य होता है कि ये जयप्रकाश ठाकुर या श्रीवास्तव इन बातों में इतनी रुचि कैसे ले पाते हैं ? इसमें ग्राखिर घरा क्या है ? राजेश्वर ठाकुर ने उस दिन कहा था, "ये राजनीति की सूक्ष्म बातें हैं, आपकी समझ में नहीं आयेंगी !" और उसी में जोड़ते हुए जयप्रकाश बोला था, 'हाँ, हाँ, कलाकार तो कला के लोक में रहते हैं। शास्त्रीजी का इन बातों से क्या सम्बन्ध !"

शास्त्रीजी बातों को साफ़ अभिघात्मक ढंग से रखना चाहते हैं, चाहे वे प्रशंसात्मक हों या निन्दात्मक। किन्तु होटल के प्रसंग में जब उन्हें अपनी बात सामने रखने का कोई अवसर मिलना दिखायी न दिया तो उन्हें एकाएक घर के बहुत-से कामों की याद आ गयी।

"चल दिये ?" लाला गनेशीलाल ने शास्त्रीजी को खड़े होते देखकर पूछा।

"जी हाँ, कुछ आवश्यक कार्य हैं।" शास्त्रीजी ने हाथ जोड़ते हुए विनयपूर्वक कहा, "कृपया मेरी बातों को किसी की निन्दा न समझें। मैंने केवल..."

"छी-छी ! क्या बात करते हो, सास्त्रीजी ! तुम्हारे मू से मैन्नें कभी आज लो किसी की बुराई सुनी ही नईं ! कलाकार होकैं तुम भला किसी की बुराई करोगे !"

...और फिर गनेशीलाल तकिये का सहारा लेकर लेट गये। ग्राहक अभी तक कपड़े की खरीददारी कर रहे थे। छींट के एक पूरे थान का मोल-तोल हो रहा था। नौकर ने उसे उठाकर लालाजी की ओर दिखाते हुए पूछा, "पूरा थान खरीद रये हैं, कहवैं कुछ पैसे कम करो !"

लालाजी चौंक गये और फिर सहज होकर बोले, "हाँ, हाँ, भई, ठीक तो कह रये हैं। कोई पूरा थान खरीदैगा तो दो-चार आन्ने छोड़ने ही पड़ेंगे।"

उधर सौदा होने लगा और इधर गनेशीलाल फिर विचारों में उलझ गये। अगर छुट्टियों के बाद भी उनके होटल की समस्या नहीं सुलझी तो हॉस्टल का सुपरिण्टेण्डेण्ट चाहे शास्त्री हो या श्रीवास्तव या रस्तोगी, पर सत्यव्रत नहीं रहेगा ! हाँ, लाला हरीचन्द से सौदा करना पड़ेगा। पिछली

बार जब यह प्रस्ताव उन्होंने लालाजी के सामने रखा था तो उन्होंने कैसी सफ़ाई से टाल दिया था, 'देखो भइया गनेसीलाल, तुम तो जानो ही हो लौण्डों का भी हित देखना पड़ै है। और चाहे कुछ हो, पर इत्ती बात तो तुम्हें माननी पड़ैगी कि सत्तेबरत ने होस्टल कू आस्रम बना दिया है। लौण्डों का सुबह-सुबह नहाना, पूजा-पाठ-हवन और भिरमण आदि करना ऐसी बात्तें हैं जिनसे लगै है कि कोई हिन्दू-छात्रावास है। फिर विचार उसके बड़े सुद्ध हैं। उस दिन हमारे यहां जब उत्तमचन्द ने कया कि लौण्डे पढ़ना नईं चाहते इसीलिए फेल होवें तो उनने क्या जवाब दिया था— याद है? उनने कया था, यदि हम सच्ची भावना से पढ़ावेंगे तो छात्र अवस्य उसे सच्ची भावना से ग्रिहण करेंगे। जैसा बीज डाललोगे वैसा फल आवैगा! अब बताओ, ऐसे मास्टर कू हटावोगे तो कैसे काम चलैगा! फिर छुट्टियों के बाद तो आडर पै अमल होवैगा ही। उसमें चिन्ता की क्या बात है?'

गनेशीलाल यह सोचकर चुप रहे कि चलो, छुट्टियां खत्म होने के भी कोई बहुत दिन नहीं हैं। या तो कॉलेज खुलते ही होटल चलेगा या गनेशीलाल फिर सौदेबाज़ी करेंगे। वह बाबू हरकरण सहाय से मिलेंगे। बाबू साहब आदमी भले हैं और हर बात में भले हैं। ऐसा नहीं है कि अपने बारे में उनके सिद्धान्त और हों और दूसरे के बारे में और; मगर लाला हरीचन्द तो किसी के भी सगे नहीं। उस दिन हज़ारों ईंटें भट्ठे से उठवाकर स्कूल के अहाते में रखवा दीं, कहा कि कोई मुआयने के लिए आ रहा है और अगले दिन सुबह स्पेशल आर्डर निकालने के लिए जो प्रेसीडेंट, वाइस प्रेसीडेंट और सेक्रेटरी की मीटिंग हुई उसमें सबसे पहले अपनी ईंटों का ही मामला रखा—और प्रस्ताव पास किया कि कॉलेज में निम्न कक्षाओं के लिए स्थान की कमी को दूर करने के लिए कॉलेज-भवन के पीछे पक्की ईंटों की छोटी-छोटी अस्थायी दीवारें उठाकर उन पर छप्पर डाल दिये जायें। चूंकि यह कार्य दशहरे की छुट्टियों के अन्दर-ही-अन्दर हो जाना चाहिए, इसलिए इस विशेष प्रस्ताव द्वारा कमेटी कॉलेज के प्रधानाचार्य को उक्त कार्य की अविलम्ब पूर्ति कराने का आदेश देती है।

इसी प्रस्ताव के सन्दर्भ में लाला हरीचन्द ने अपनी सारी फालतू ईंटें

कॉलेज को बेच दीं। और अहसान फिर भी कॉलेज पर रखा कि उसकी ढुलाई बच गयी। बाद में जब गनेशीलाल ने होटलवाली बात उठायी तो उस पर केवल इतना ही लिखा गया कि कमेटी को विदित हुआ है कि छात्रावास के छात्रों ने अपने भोजन की जो व्यवस्था की है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर नहीं है। प्रधानाचार्य का कर्तव्य है कि वह इस सम्बन्ध में तुरन्त जाँच करके अपनी रिपोर्ट कमेटी के समक्ष प्रस्तुत करें और छात्रावास के अध्यक्ष को आवश्यक निर्देश दें।

गनेशीलाल ने तभी इस प्रस्ताव का दबा-सा विरोध किया था कि प्रस्ताव में होटल की बात नहीं आयी, किन्तु लालाजी ने बड़ी होशियारी से उन्हें चुप करा दिया था, "भैया गनेसीलाल ! ऐसी बातें कहीं कागज़ पै लायी जावें हैं। अरे, वो तो प्रिंसिपल कू बुलाके कह देवैंगे और वो अपने आडर निकालता रहवेगा।"

लालाजी सबकी नज़रों में भले बने रहना चाहते हैं—और गनेशीलाल उनके इसी नाटक से चिढ़ते हैं। शायद इसका कारण यह भी हो कि वह स्वयं इस नाटक का निर्वाह उस स्तर तक नहीं कर पाते। इसी क्षणिक पीड़ा से विकल होकर गनेशीलाल ज्योंही सीधे हुए कि उनकी नज़र सामने लोहे की नयी दुकान पर नेकर और पूरी आस्तीन की कमीज़ पहने मूँगफली चबाते हुए पवन बाबू पर पड़ी। मूँगफली फोड़कर उसके दानों को वह इस तेज़ी से मुँह में डालते जा रहे थे कि यदि उन्होंने इतनी जल्दी दानों को न खाया तो दाने ही उन्हें खा जायेंगे।

गनेशीलाल ने सोचा कि पवन को बुलाकर उससे पूछा जाये कि प्रिंसिपल ने होटल के सम्बन्ध में कोई आदेश निकाला है या नहीं ! मगर दूसरे क्षण ही यह सोचकर चुप हो गये कि गुलज़ारीमल का भानजा है। बात फ़ौरन गुलज़ारीमल तक जा पहुँचेगी। दूसरे, सड़क के बीच में बिसातियों ने जो दुकानें लाठियों पर चादरें टाँगकर लगा ली थीं, उनसे सामनेवाली दुकान का फ़ासला चाहे न बढ़ा हो पर बीच में आड़ ज़रूर हो गयी थी।

पंजे पनवाड़ी ने अपनी दूसरी दुकान गनेशीलाल की कपड़े की दुकान के ठीक सामने खोली है। वह भी अब मुस्लिम हाई स्कूल की कमेटी का

सेक्रेटरी हो गया है और उस दिन से कई बार अपनी नयी दुकान से चिल्ला-कर कह चुका है कि दोनों स्कूलों के सेक्रेटरियों की दुकानें आमने-सामने हो गयी हैं। दरअसल वह चाहता है कि लोग उसे भी अब सेक्रेटरी साहब के नाम से पुकारें ताकि पनवाड़ी के वौंक से मुक्ति मिले।

गनेशीलाल ने जब दुबारा उसकी दुकान की ओर दृष्टि उठायी तो पवन जा चुका था। पंजे ने उन्हें अपनी ओर ताकते देखा तो बोला, "आपके क्लर्क से कह रहा था कि दो सेक्रेटरियों का मुकाबला है इस इलेक्शन में। एक लाला हरीचन्द को सपोट कर रहा है और दूसरा बाबू साहब को! देखो कौन जीते है।"

लाला गनेशीलाल मुस्कराकर चुप हो गये।

पंजे पनवाड़ी लोगों की प्रतिक्रिया देखने लगा कि कितने लोगों ने उसकी बात सुनी। इलेक्शन में रुचि रखनेवाले दो-चार फ़ालतू क़िस्म के आदमी उससे इलेक्शन के नक्शों पर बातचीत करने के लिए पास आ गये थे। पर उनमें से किसी ने भी उसे सेक्रेटरी साहब कहकर सम्बोधित नहीं किया।

पंजे सोचता है कि हाथीवाले आढ़तियों की लोण्डिया भाग गयी थी कि उनका नाम 'लोण्डियावाले आढ़ती' पड़ गया था। गाँव के लोग तो खुलेआम उन्हीं के मुंह पर उन्हें लोण्डियावाले आढ़ती कहा करते थे। मगर उनके लड़के ने दस रुपये देकर, दुकान की दीवार पर जो बड़ा-सा काला हाथी बनवाया तो उसी के बाद से उनका नाम बदलता चला गया और लोण्डियावाले आढ़तियों की बजाय वे हाथीवाले आढ़ती के नाम से मशहूर होते गये। जाने वह कब सेक्रेटरी साहब के नाम से पुकारा जायेगा। वैसे उसे अभी सेक्रेटरी हुए एक महीना ही तो हुआ है। और इस पर भी कुछ लोग सेक्रेटरी कहने ही लगे हैं। पंजे ने याद करने की कोशिश की तो हिन्दू कॉलिज के मास्टर जयप्रकाश का पहला नाम याद आया जिसने पंजे को सेक्रेटरी साहब के सम्बोधन से याद किया था। अभी कुछ दिन हुए वह बाबू हरकरण सहाय के इलेक्शन के सिलसिले में उनके पास आया था, "सेक्रेटरी साहब! हालांकि आप खुद सेक्रेटरी हैं एक स्कूल के, लेकिन फिर भी मैं आपसे हिन्दू कॉलिज के सेक्रेटरी के खिलाफ़ सपोर्ट की दरखास्त लेकर

ग्राया हूं। हमारे सेक्रेटरी साहब लाला हरीचन्दजी की सपोर्ट कर रहे हैं मगर हम सब लोग ग्रपनी कमेटी के मेम्बर बाबू हरकरण सहाय को जिताना चाहते हैं। ग्राप तो जानते ही हैं सेक्रेटरी साहब, कि बाबूजी कितने शरीफ़ आदमी हैं! न किसी के झगड़े में ग्रौर न सियासत में। ग्रगर ग्रापकी ग्रौर ग्रापके स्कूल की सपोर्ट मिल जाये तो…"

पंजे को मास्टर जयप्रकाश का बार-बार सेक्रेटरी साहब कहना बहुत ग्रच्छा लग रहा था। इसलिए बाबू हरकरण सहाय से कोई खास जान-पहचान न होने के बावजूद उसने कहा, "देखो भई, ग्रपना वोट तो मैं दे दूंगा चूंकि ग्राप ग्राये हो, मगर स्कूल की बाबत कोई जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूं?"

जयप्रकाश ने फौरन ग्रागे झुककर उसके दोनों हाथ पकड़कर ग्रपने हाथों में ले लिये ग्रौर मुस्कराकर पनियाली-सी ग्रांखों से उसकी ग्रांखों में झांकते हुए कहा, "बड़ी उम्मीद लेकर ग्रापके पास ग्राये थे सेक्रेटरी साहब! हमें ग्राप निराश मत कीजिए! ग्रब तो ग्राप सेक्रेटरी हैं, पूरा स्कूल ग्रापके इशारों पर घूमता है, पर जब ग्राप मेम्बर थे तब भी ग्रापका कितना ग्रसर था सेक्रेटरी साहब, ये हमें मालूम है! ग्रौर फिर हम ग्रापका वोट नहीं ग्रापकी सपोर्ट लेने ग्राये हैं। ग्रापकी उस शख्सियत का फ़ायदा उठाना चाहते हैं जिसने ग्रापको सेक्रेटरी जैसे जिम्मेदार पद पर ला बिठाया है।"

…ग्रौर उसे 'हाँ' करनी ही पड़ी थी। बाद में जयप्रकाश ने बाबू साहब से भी उसका परिचय सेक्रेटरी साहब कहकर ही कराया था। ग्रौर शायद उन्होंने भी एकाध बार उसे सेक्रेटरी कहा था। बस!

गनेशीलाल कब अपनी दुकान से उतरकर पंजे की दुकान के सामने ग्रा खड़े हुए इसका उसे पता नहीं चला। खुद गनेशीलाल भी चकित थे कि वे क्यों वहां रुक गये। वे तो घर खाना खाने के लिए जाने को उठे थे। मगर ग्रब रुक गये तो उन्हें बोलना पड़ा, "पंजे मियां, ग्रपना तो भई सीधा-सादा-सा हिसाब है। कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरी छांड़ि न हुइ हैं रानी।"

ग्रौर फिर बिना पंजे के उत्तर की प्रतीक्षा किये वे ग्रागे बढ़ गये। सिर्फ़

पंजे ये सोचता रह गया कि अगर हम दोनों एक-दूसरे से सेक्रेटरी साहब कहकर बातचीत करें तो कैसा रहे !

मुख्य-द्वार

गूंगे की आशा के अनुसार उस दिन हिन्दू कॉलिज खुला और प्रिंसिपल, अध्यापक तथा लड़के मुख्य-द्वार के पास प्रार्थना के लिए जमा होने लगे।

दशहरे की छुट्टियाँ खत्म होने का इन्तज़ार जितनी बेसब्री से सेक्रेटरी गनेशीलाल कर रहे थे, उससे भी ज्यादा बेसब्री गूंगे हलवाई में थी। गनेशीलाल का होटल ग्राहकों के अभाव में दम तोड़ रहा था तो गूंगे की हिसाब-किताब की कापी अध्यापकों पर बकाया ऋण का बोझ लिये सिसक रही थी। अपनी सांकेतिक विशिष्ट भाषा में गूंगा रोज दस गालियाँ अध्यापकों को देता था तो पचास मैनेजमेन्ट को, जिसने ढाई-तीन महीने से अध्यापकों की तनख्वाहें नहीं दी थीं। जयप्रकाश की चाय और बीड़ियों का हिसाब पच्चीस रुपये के आसपास था, किन्तु राजेश्वर ठाकुर पर गूंगे के सत्तर रुपये निकलते थे। अध्यापकों में भी पचास-साठ रुपये से कम किसी पर न थे। जब वह पैसों का तकाज़ा करता था तो अध्यापक अपनी खाली जेबें दिखाकर इशारे से जताते थे कि अभी तनख्वाह नहीं मिली।

इसलिए उस दिन सुबह नौ बजे के लगभग जब सुबह की दोनों गाड़ियों से उतरनेवाले मुसाफ़िरों की एक अपेक्षाकृत बड़ी-सी भीड़ स्टेशन पर दिखायी दी तो गूंगा समझ गया कि मास्टर और लड़के छुट्टियाँ बिताकर लौट आये हैं।

फिर मास्टरों, विद्यार्थियों और अन्य मुसाफिरों से भरे कई तांगे खड़-खड़ करते हुए राजपुर की उस एकमात्र माल रोड से गुज़रे और शहर की ओर बढ़ गये थे। और गूंगा ये सोचता रहा था कि वह आज क्या-क्या नयी चीज़ें बनायेगा ? अब तक तो स्टेशन के खलासियों और इक्के-दुक्के ग्राहकों का काम पकौड़ियों और जलेबियों से चल जाता था लेकिन गाँव के विद्यार्थी गुलाब-जामुन, रसगुल्ले और गोले या लौकी की लौज ज्यादा पसन्द

करते हैं।

गूंगे ने ज्योंही जलेबियों का पहला घान कड़ाही में छोड़ा, विद्यार्थियों की प्रार्थना शुरू हो गयी। सैकड़ों कण्ठों से समवेत-गान वातावरण में गूंज उठा—

वह शक्ति हमें दो दयानिधे
कर्तव्य-मार्ग पर डट जायें।

विद्यार्थी पूरी शक्ति से चिल्ला रहे थे। दाहिनी ओर बारहवीं कक्षा के छात्र थे फिर ग्यारहवीं, दसवीं, नवीं और आठवीं कक्षा से लेकर छठी तक के छात्र पंक्ति-बद्ध खड़े थे। छात्रों की उन खड़ी रेखाओं के सामने अध्यापकों की एक पंक्ति पट-रेखा के समान खड़ी थी।

छात्रों की प्रार्थना उस वक्त खत्म हुई जब गूंगे का पहाड़ी नौकर स्टेशन के कुलियों और खलासियों से दिन को मज़दूरी का हिसाब करके लौटा। स्टेशन के दोनों कुलियों ने उसे इस बात की अनुमति दे रखी थी कि भीड़ या मेले-ठेलों और ब्याह-बरातों के दिनों में वह भी स्टेशन पर आकर मुसाफ़िरों का सामान उतरवाकर मजदूरी कर ले, किन्तु उसे उसमें से कुछ प्रतिशत स्टेशन के लोगों को देना पड़ता था।

इतनी देर तक दूकान से ग़ायब रहने के लिए गूंगा उस पर बिगड़ने लगा। अपने नंगे बलिष्ठ बाहुओं को उठाकर वह बार-बार क्रोध का प्रदर्शन कर रहा था और पहाड़ी नौकर संकेतों में उसे इतनी देर की अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण दे रहा था कि उसे पेट में मरोड़ हो रही थी और वह छोटे तालाब तक गया था।

उधर प्रिंसिपल साहब व्याख्यान देने लगे थे, "अगले हफ़्ते हमारे यहाँ इन्सपेक्शन पैनल आनेवाला है। मैं चाहता हूँ तब तक आप लोगों की सारे सब्जेक्ट्स (विषयों) की कापियाँ कम्पलीट (पूर्ण) हो जानी चाहिए। क्लास-टीचर्स (कक्षा-अध्यापकों) का कर्तव्य है कि उनकी कक्षाएँ स्वच्छ हों और विद्यार्थियों को चाहिए कि वे पैनल पर अपने अनुशासन और चरित्र का अच्छा प्रभाव डालें।"

"दूसरी बात मुझे विशेषकर हॉस्टल के स्टूडेण्टस से कहनी है। मेरे नोटिस में आया है कि लड़कों ने अपने खाने-पीने का इन्तज़ाम खुद किया

हुआ है। यह एक गलत-सी बात है। पढ़ाई के साथ ही आपके स्वास्थ्य की देख-भाल करना भी हमारी ज़िम्मेदारी है। आखिर आप लोगों के पैरेण्ट्स (माँ-बापों) ने आपको यहाँ किसकी ज़िम्मेदारी पर भेजा है? आप ग़लत-सलत खाना खाकर अगर बीमार पड़ गये तो कौन ज़िम्मेदार होगा? इसलिए आज से आप सबको वह सिस्टम खत्म करना पड़ेगा।"

इस बात पर लड़के चेमागोइयाँ करने लगे। पैनल की बात उन्होंने जितने शान्त होकर सुनी थी उतनी ही अब चख-चख कर रहे थे। अध्यापक भी एक-दूसरे के कोहनियाँ मारकर मुस्करा रहे थे।

आखिर बारहवीं कक्षावाली पंक्ति में सबसे आगे खड़ा हुआ राम पूजन और आगे खिसक आया, बोला, "साहब! खाने का यह इन्तज़ाम तो हमने बहुत दिनों से कर रखा है। हमारे सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब भी हमारे साथ ही खाना खाते हैं। अगर खाने में कोई खराबी हो तो उनसे पूछ लीजिए!"

"मगर ये हमें सोचना है कि इसमें कितना वक़्त बरबाद होता है! और बिना प्रिंसिपल की अनुमति के ऐसा प्रबन्ध करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया?" प्रिंसिपल साहब ने कोट के कालर पर हाथ फेरते हुए क्रोध का प्रदर्शन किया और अपने हिसाब से इस विषय में अपना अन्तिम निर्णय दे डाला।

रामपूजन फिर भी पीछे नहीं हटा, बोला, "साहब, हम लोग गरीब आदमी हैं। तीस रुपये महीना होटल पर देना हमारे बस की बात नहीं है। होस्टल में हमें बीस रुपये से भी कम खर्च आता है, अगर इतना ही आप होटल पर करा दें तो……"

"खामोश!" प्रिंसिपल साहब ने डाँटा, "मैं हरगिज़-हरगिज़ उस काम की इजाज़त नहीं दे सकता जिसके लिए मुझसे अनुमति नहीं ली गयी।"

"मगर हमने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब से……" रामपूजन ने कहना चाहा, अनुमति ले ली थी, मगर वह रुक गया क्योंकि ऐसा कहना असत्य ही होता और पीछे हटकर वह पंक्ति में जा मिला।

सत्यव्रत प्रिंसिपल के बायीं ओर आठवीं-कक्षा की पंक्ति के सामने

जयप्रकाश की बराबर में खड़ा था। रामपूजन की बात अधूरी रह जाने के कारण को समझते हुए वह आगे बढ़ा। उसने कहना चाहा कि विद्यार्थियों ने उससे इसकी अनुमति ले ली थी। क्योंकि शुरू में चाहे उससे ब.क़ायदा अनुमति न ली गयी हो, किन्तु वह इसके विरोध में तो कभी भी नहीं था। और वह खुद होटल की गन्दगी से ऊब चुका था।

मगर उसके कुछ कहने के पूर्व ही प्रिंसिपल साहब ने बिगड़कर कहा, "कौन होते हैं सुपारण्टेण्डेण्ट साहब अनुमति देनेवाले! अगर आप लोग इसी तरह डिसिप्लिन (अनुशासन) तोड़त रहे तो मुझे मजबूर होकर कुछ एक्शन लेना पड़ेगा।"

और इसी के साथ प्रार्थना समाप्त हो गयी। प्रिंसिपल साहब साँप की तरह तेज़ी से पलटकर पीछे की ओर घूमे और अपने कमरे में चले गये। विद्यार्थी भी उसी तरह पंक्तियों में, अपने-अपने क्लॉस-मानीटर के पीछे चलते हुए कक्षाओं में घुस गये। केवल बातें करते हुए मास्टर उत्तमचन्द, जयप्रकाश और राजेश्वर ठाकुर ही सबसे पीछे गये।

सामने मिठाइयों के तीन थाल और बराबरवाले रैक में पान-बीड़ी और माचिस जमाये हुए गूंगा अपनी दुकान पर बैठा किसी मास्टर के आने और पैसे देने की काल्पनिक तस्वीरें बनाता हुआ, सफल प्रतीक्षा करता रहा। पहला इण्टरवल यों ही निकल गया। कोई भी अध्यापक दुकान पर नहीं आया। श्रीवास्तव बाबू ने कैंचो की कुछ सिगरेट मँगायी थीं। हाँ, लड़कों की भीड़, जिसमें सिगरेट-बीड़ी से लेकर चाय-पान और गुलाबजामुन तक खरीदनेवाले ग्राहक थे, दुकान पर अवश्य आयी थी। दूसरे इण्टरवल शुरू हुए भी दो-तीन मिनट हो चुके थे। लड़कों की एक छोटी-सी भीड़ ने फिर दुकान को घेर लिया था। गूंगे की उत्सुक आँखें उस भीड़ में कहीं कुछ खोजने लगीं। वह सौदा देता जाता था और उसकी आँखें बार-बार भीड़ के पास पहुँच जाती थीं।

किसी लड़के ने फब्ती कसी, "अँखिया किसी रसगुल्ले के दरस को तरस रही हैं।"

आटेवाले सेठ के लड़के गोपाल की घटना से परिचित सभी लड़के खिलखिलाकर हँस दिये। गूंगा परिस्थिति के प्रति सजग हुआ और 'आं-आं' करके दाहिने हाथ को नचाकर पूछने लगा, "क्या हुआ, क्यों हँसे ?"

उम्मेद ने दांये हाथ को सीने पर रखकर, आंखें बन्द कीं और किसी मधुर स्मृति में भाव-विभोर होने का नाट्य करते हुए गर्दन हिलाकर कारण जताया कि लड़के सोचते हैं, तुम अपने माशूक की तलाश कर रहे हो।

गूंगा 'हो-हो' करके हँस पड़ा और हाथ को जांघों पर फेरकर पांचों उँगलियां नकारात्मक ढंग से हिलाने लगा। आशय था कि माशूक कहां मिलते हैं !

अचानक किसी लड़के ने कहा, "मास्टर साहब !" और उम्मेद ने पीछे मुड़कर देखा तो जयप्रकाश, उत्तमचन्द, राजेश्वर और सत्यव्रत चारों धीरे-धीरे कदम रखते हुए उसी ओर आ रहे थे। वह चुपके-से वहां खिसक लिया और बराबरवाले नल पर जाकर हाथ धोने लगा जिसके नीचे चाय की सड़ी-गली पत्तियों का मोटा-सा ढेर पड़ा था। और लड़के भी इधर-उधर हो लिये। सिर्फ दूध-चाय पीनेवाले लड़के वहां खड़े रहे।

गूंगा जयप्रकाश को देखते ही हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। संकेतों में एक-दूसरे का कुशल-क्षेम पूछा गया। दरअसल इतनी देर से गूंगा मास्टर जयप्रकाश का ही इन्तजार कर रहा था। वही उसकी भाषा समझ पाता है और मास्टरों मे उसी से बातें करके गूंगे को सुख मिलता है। या फिर दूसरे मास्टर हैं सत्यव्रत जिनकी गूंगा बहुत इज्जत करता है। ठाकुर से वह श्लील-अश्लील सब तरह की बातें इशारों में कर लेता है, पर समझता है कि वह बदमाश है।

जयप्रकाश ने संकेत द्वारा पहले उसे चार चाय का आर्डर दिया। फिर तीन का। सत्यव्रत चाय नहीं पीता। और चारों, नींबू की बगिया में, खाट बिछवाकर जा बैठे। एक क्षण क लिए गूंगा उन्हे देखता रहा। सत्यव्रत का मुंह उतरा हुआ था और वह उदास था। राजेश्वर के मुख पर उत्तेजना के भाव थे और वह हाथ घुमा-घुमाकर बातें कर रहा था। उत्तमचन्द और जयप्रकाश शान्त थे।

लड़कों की भीड़ और कुछ अन्य मास्टरों की उपस्थिति के कारण गूंगे ने जयप्रकाश से उस वक्त बातें करना उचित नहीं समझा। और उसने इशारे से ही अपने नौकर को चार स्पेशल चाय बनाने का आदेश दिया।

जयप्रकाश ने एक बीड़ी निकालकर जलायी और हाथ बढ़ाकर सत्यव्रत से कहा, "कागज़ कहाँ है ?"

"मैंने तो उसी समय प्रिंसिपल साहब को लौटा दिया।" सत्यव्रत ने उत्तर दिया। तुरन्त मास्टर उत्तमचन्द ने जयप्रकाश से कहा, "वो तो मुझे पवन ने बताया कि सत्यव्रतजी से कोई 'एक्सप्लेनेशन कॉल' (जवाब-तलब) किया गया है। वरना ये तो शायद बताते भी नहीं।"

सत्यव्रत का मुंह लज्जा से आरक्त हो उठा। सचमुच इसके बारे में उसका इरादा किसी को बताने का नहीं था, क्योंकि यह उसकी कर्तव्य-निष्ठा पर सीधी चोट थी। नोट अंग्रेजी में था जिसमें सत्यव्रत पर यह आरोप लगाया गया था कि वह छात्रों को पढ़ाने की बजाय उनसे अनर्गल बातें करने में ही सारा घण्टा खत्म कर देते हैं और इस चीज़ को प्रिंसिपल साहब ने अपने 'राउण्ड' में कई बार स्वयं महसूस किया है। अन्त में उसे चेतावनी दी गयी थी कि वह भविष्य में इस ओर सतर्क रहें।

जयप्रकाश ने उत्तमचन्द की बात का कोई उत्तर न देते हुए सत्यव्रत से ही प्रश्न किया, 'आपने उसे दस्तखत करके लौटा दिया ? यही न !"

सत्यव्रत ने स्वीकृति में गर्दन हिलायी।

"इसका मतलब है कि आपने अपनी ग़लती स्वीकार कर ली।" जयप्रकाश ने कहा।

"हाँ जय भाई ! गलती तो थी ही।" सत्यव्रत ने अपराधी-जैसे अन्दाज़ में धीरे से कहा, "मुझे प्रिंसिपल साहब ने अपने कमरे में बुलाकर भी समझाया। उन्होंने कई बार मुझे लड़कों से पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त इधर-उधर की बातें करते स्वयं सुना है। मेरा स्वभाव भी है कि मैं छात्रों को स्वच्छता, अनुशासन और नीति सम्बन्धी अन्य बातें समझाने में सम्भवतः अधिक समय लगा देता हूँ।"

"तो क्या ये अनर्गल बातें हैं ?" राजेश्वर ने पूछा, "क्या लड़कों को पढ़ाई के साथ-साथ ऐसी बातें बताना कोई गुनाह है ?"

"अच्छा, ये तो बताइये सत्यव्रतजी कि आज जब प्रिंसिपल साहब 'राउण्ड' पर निकले तो आपकी क्लास में हो क्या रहा था ?" राजेश्वर के साथ उत्तमचन्द ने भी लगभग यही प्रश्न किया।

सत्यव्रत एक क्षण के लिए झिझका और फिर बोला, "जब मैं चौथे घण्टे में आठवीं कक्षा में गया तो दो लड़के आपस में झगड़ते हुए एक-दूसरे को अश्लील गालियां दे रहे थे। बात केवल इतनी थी कि एक ने दूसरे की डैस्क की रोशनाई में अपना कलम डुबा दिया था। मैं इसी बात पर उनको समझाने लगा कि जब तुम एक-दूसरे के लिए इतनी छोटी-छोटी वस्तुओं का त्याग नहीं कर सकते तो बड़े-बड़े त्याग कैसे करोगे ! फिर मैंने उन्हें यह भी बताया कि देश की स्वतन्त्रता के लिए लोगों ने कितने बड़े-बड़े त्याग किये। मैंने सोचा कि मारने-पीटने की अपेक्षा यदि मैं उन्हें त्याग का महत्त्व प्रतिपादित करके समझा सकूँ तो सम्भव है उन पर अधिक स्थायी प्रभाव पड़े। और इसी प्रयत्न में मेरा भाषण सम्भवतः कुछ लम्बा हो गया !"

"आपने ये 'बैकग्राउण्ड' (पृष्ठभूमि) प्रिंसिपल साहब को नहीं बतायी !" उत्तमचन्द ने पूछा।

"बतायी थी। किन्तु उन्होंने कहा कि 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते। फिर इस तरह की घटनाएँ तो प्रतिदिन हर कक्षा में होती रहती हैं। अगर सारे अध्यापक भाषण में ही समय नष्ट करने लगें तो वे सारे साल भी अपना पाठ्यक्रम पूरा नहीं कर सकते।' किसी सीमा तक बात मुझे ठीक भी लगी।"

"आपको तो हर बात ठीक लगती है।" राजेश्वर ने चिढ़कर कहा, "कल को अगर वे आपको नौकरी से निकाल देंगे तो वह भी आपको ठीक लगेगा !"

"ये सिर्फ़ प्रिंसिपल का काम नहीं है।" जयप्रकाश ने कहा, "हॉस्टल के लड़कों के होटल पर खाना न खाने से मैनेजमेण्ट का आपके प्रति जो रुख बदला है—यह उसी की अभिव्यक्ति है। क्यों मास्टर साहब ?"

अन्त में जयप्रकाश ने उत्तमचन्द को सम्बोधित किया था। वे आगे को झुकते हुए बोले, "दोनों ही बातें हैं। प्रिंसिपल भी कम बदमाश नहीं है।

फिर सीधे आदमी की सब जगह मौत है।"

राजेश्वर आवेश और उत्सुकता के कारण बार-बार आगे-पीछे हो रहा था। उत्तमचन्द की बात पूरी होते ही बोला, "साहब, जब तक हम लोगों की एसोसियेशन काम नहीं करने लगती तब तक ये मामले तय हो ही नहीं सकते।"

गूंगे का पहाड़ी नौकर चाय के तीन गिलास रख गया था। जयप्रकाश की बीड़ी हाथ में ही बुझ गयी थी। उसे पुनः सुलगाते हुए उसने एक गिलास उठाकर मास्टर उत्तमचन्द को दिया और तीनों चाय पीने लगे।

उत्तमचन्द बहुत गरम चाय पीते हैं। एक मिनट में गिलास खाली करके ज़मीन पर रख दिया, बोले, "क्यों जयप्रकाशजी?"

तभी इण्टरवल खत्म होने का घण्टा घनघना उठा। जल्दी से गिलास की बची हुई चाय खत्म करते हुए जयप्रकाश ने कहा, "अगर अत्याचार के खिलाफ़ आवाज़ उठानी है तो हमें संगठित होना ही पड़ेगा! इसके अलावा कोई चारा नहीं।"

सत्यव्रत जब भी इन छोटी-छोटी बातों को बड़ा-सा रूप लेते देखता है तो उसे क्लेश होता है। यह अनुभव करते हुए भी कि जयप्रकाश राजेश्वर और उत्तमचन्द उसके हितैषी हैं और उसी दृष्टिकोण से उन्होंने अध्यापकों के संगठन की बात कही है, सत्यव्रत प्रसन्न नहीं हुआ। प्रिंसिपल साहब ने उसको जो भी कुछ कहा उसमें उसका आंशिक दोष अवश्य है—इतना वह सत्यतापूर्वक अनुभव करता है।

जब तीनों अध्यापकों के साथ सत्यव्रत भी उठकर अन्दर कॉलिज की ओर जाने लगा तो जयप्रकाश ने उसकी मनःस्थिति को पढ़ने की कोशिश करते हुए कहा, "शायद, मास्टर साहब को यह बात पसन्द नहीं आयी।'

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं।" सत्यव्रत ने कहा, "मैं तो संगठन के पक्ष में पहले भी आपसे अपनी सहमति व्यक्त कर चुका हूँ। किन्तु मैं ये अवश्य सोचता हूँ कि संगठन का उपयोग हमें किसी से लड़ने-झगड़ने या अनुशासनात्मक कार्यों में प्रिंसिपल आदि का विरोध करने के लिए नहीं बल्कि रचनात्मक कार्यों के लिए करना चाहिए। उसमें किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि उन समस्याओं की चर्चा होनी चाहिए जो सबकी हैं।"

हड़ताल

अक्टूबर बीत चुका था। नवम्बर शुरू हो गया था। इसी महीने के साथ राजपुर में चहल-पहल और सरगर्मी शुरू होती है। खँडसालियों की खँडसालें चालू हो जाती हैं और आस-पास के गाँवों से गुड़ और राब की मटकियाँ गाड़ियों में लद-लदकर आने लगती हैं। दूर-दूर से व्यापारी आते हैं और नमूने देखते तथा भाव-ताव करते हुए मण्डी में घूमते दिखायी पड़ते हैं। गाँववाले, व्यापारी, दलाल और खँडसालियों की ऐसी भीड़-भाड़ रहती है कि कभी-कभी तो लगता है कि यहाँ सिवाय खँडसाल के और कोई धन्धा ही नहीं होता।

किन्तु, इस साल राजपुर में खँडसाली-व्यापारियों से भी ज्यादा रौनक इलैक्शन की है। सड़कों पर, दीवारों पर, ताँगों पर और तमाम सार्वजनिक स्थानों पर वोट माँगनेवालों के इश्तिहार चिपके हैं। रात-दिन काम हो रहा है। उम्मीदवारों को एक मिनट की फुरसत नहीं है। वे दिन-रात घूम रहे हैं। रोज़ाना जलूस निकलते हैं, जलसे होते हैं और उम्मीदवारों के भाषण होते हैं। लाउडस्पीकरों की आवाज़ से कानों के परदे फटे पड़ते हैं।

परसों इस इलैक्शन ने एक नया गुल खिलाया था। किसी 'नागरिक समिति' नामक संस्था की ओर सारे प्रतिद्वन्द्वी-उम्मीदवारों को मण्डी चौक में भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया था कि वे आकर जनता को अपने दृष्टिकोण से अवगत करायें। समिति ने अपने इश्तिहारों में इस वाक्-प्रतियोगिता का खूब प्रचार किया था। उसमें भी सबसे ज्यादा चर्चा लाला हरीचन्द और बाबू हरकरण सहाय के वाक्‌युद्ध की थी।

यों बाबू साहब अपनी बैठक पर चाहे कितना ही बोलते हों पर मंच पर जनता के सामने बोलना ज़रा मुश्किल काम है। इसीलिए उन्होंने पहले तो इस प्रतियोगिता में उतरना भी स्वीकार नहीं किया पर बाद में लोगों के अनुरोध पर उन्हें बोलना पड़ा था। अत्यन्त संक्षेप में और बहुत ही नपे-तुले शब्दों में उन्होंने नगरपालिका की वर्तमान कमियों का चित्र प्रस्तुत करते हुए अपनी भविष्य की योजनाओं को जनता के सामने रखकर

उनके सहयोग एवं वोट की प्रार्थना की थी। और दस मिनट में ही भाषण खत्म करके मंच से उतर आये थे।

मण्डी के चौक में जहाँ यह आयोजन किया गया था दूर-दूर तक फर्श बिछा था। उम्मीदवारों के लिए कुर्सियाँ रखी गयी थीं। लोगों की एक बहुत बड़ी भीड़ दूर तक बैठी हुई थी। शाम का वक्त था और लोग उत्सुकता से इन्हीं दोनों उम्मीदवारों का भाषण सुनने के लिए बैठे थे।

बाबू साहब के मंच से उतरते ही लालाजी मुस्कराते हुए छड़ी टेककर उठे और मंच पर जा खड़े हुए। पहले उन्होंने विजेता के भाव से आत्म-विश्वास पूर्वक बाबू साहब की तरफ़ देखा और फिर भाइयो और बहनों को सम्बोधित करके भाषण देने लगे।

बाबू साहब के भाषण में एक तरह का किताबीपन और नीरसता थी और उसके कारण जनता में जो गाम्भीर्य व्याप्त हो गया था उसे लालाजी ने मंच पर जाते ही छितरा दिया। लोग तन्मयतापूर्वक उनकी बातें सुनने लगे। लालाजी कांग्रेस के बलिदानों, बापू के महान् त्यागों और उसी सन्दर्भ में नगर के लिए अपनी छोटी-मोटी सेवाओं का ज़िक्र करते हुए बार-बार बाबू साहब की अफ़सरी पर चोट कर रहे थे, "भय्यो! मुससे पूच्छो! वो जिसके दिमाग में अफसरी की बू है, वो, जो मुझ जैसे बूढ़े आदमी कू भी 'तुम गधे हो' कह सकता है और वो जो अपनी राय के सामने सारी दुनिया की राय कू हेच मानता है, वो आदमी कलट्टर हो सकता है, गवर्नर और लाट साहब भी हो सकता है पर जनता का सेवक नईं हो सकता। सेवा ऐसा कर्म है कि उसमें आदमी कू झुकना पड़ै है। पतलून और हैट लगा के जनता पै अफसरी हो सकै, पर उसकी सेवा नईं हो सकती।"

और ऐसी चोटों के साथ जब लाला हरीचन्द मुस्कराकर पार्श्व में बैठे हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी बाबू हरकरण सहाय की तरफ देखते थे तो जनता बेतहाशा तालियाँ बजाती और खुश होती थी। लालाजी जनता को परपीडन में सुख अनुभव करते देखकर, चोटों पर चोटें किये जा रहे थे।

इस तरह जनता की गगन-भेदी तालियों के बीच लालाजी ने लगभग एक घण्टे तक भाषण दिया और जब मंच से उतरे तो उनके चेहरे पर ऐसा सन्तोष का भाव था जैसे वे इलैक्शन जीतकर आ रहे हों। बाद में लालाज

को उनके आदमियों ने जो रिपोर्ट दी उसमें बताया गया था कि बाबू साहब बड़े लड़खड़ाते कदमों से घर तक पहुंचे थे और उनका चेहरा ऐसा तमतमाया हुआ था जैसे बहुत बड़ी मात खाकर लौटे हों।

सारी मण्डी और सारा वार्ड लालाजी की स्पीच से दहल गया था। जयप्रकाश, उत्तमचन्द और राजेश्वर भीड़ के जिस कोने में खड़े होकर लालाजी की स्पीच सुन रहे थे—वहाँ की जनता पर लालाजी का सबसे अच्छा प्रभाव पड़ा था। वह मन्त्रमुग्ध-सी लालाजी के हंसाने पर हँसती और शान्त कराने पर शान्त हो जाती थी।

भाषण के बाद जयप्रकाश को भी मानना पड़ा कि जनता की नब्ज़ को पहचानकर बोलना लालाजी को ही आता है। सारी भीड़ एकमत से लालाजी के बोलने की प्रशंसा कर रही थी। मंच के पास से अचानक बाबू साहब को उठते देख जब जयप्रकाश भी भीड़ में से खिसक लिया तो किसी ने ध्यान न दिया किन्तु बाबू साहब जब मंच के दायीं ओर की भीड़ में से रास्ता बनाने लगे तो लालाजी ने जाने क्या जादू किया कि जनता तालियाँ बजाने लगी और बेचारे बाबू साहब ने पीछे मुड़कर भी न देखा। परसों सारी रात और कल तीसरे पहर तक शहर में इसी बात की चर्चा रही। मगर कल के जलूस ने लालाजी की इस विजय का सारा उल्लास धो दिया। यह जलूस वोट माँगनेवालों का जलूस नहीं था बल्कि हिन्दू-कॉलिज के उन चार सौ लड़कों का जलूस था जो कॉलेज में हड़ताल कराने के बाद शहर में नारे लगाते घूम रहे थे।

अगली कतार से कोई आवाज़ उठती थी—"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी" और पीछे लगभग एक फर्लांग तक एक पंक्ति में चलनेवाले विद्यार्थी समवेत स्वर में चिल्लाते थे, "लालाशाही नहीं चलेगी।"

शहर की सारी मुख्य गलियों में नारे लगाने के बाद जलूस मण्डी चौक में आकर इकट्ठा हो गया था। कण्ठ की पूरी ताकत लगाकर सबने एक नारा लगाया—"लालाशाही नहीं चलेगी" और उसकी गूंज पर खिचते, जगा होते हुए लोगों के साथ जलूस ने एक सभा की शक्ल अख्तियार कर ली। सभा का न कोई सभापति था न संयोजक, फिर भी भीड़ और लोगों की दिलचस्पी कल से ज्यादा थी। फिर विद्यार्थियों के पुरज़ोर भड़कीले भाषण

हुए जिसमें उन्होंने प्रिंसिपल, प्रेसीडेण्ट लाला हरीचन्द ग्रौर सेक्रेटरी गनेशीलाल की जमकर बखिया उधेड़ी। उनकी बेईमानी, अत्याचार ग्रौर हस्तक्षेप की खुली ग्रालोचना की और ग्रन्त में एक प्रस्ताव पारित किया कि इन्सपैक्टर ग्रॉफ स्कूल को तुरन्त छात्रों की इन उचित माँगों पर ध्यान देना चाहिए।

सबसे सन्तुलित भाषण रामपूजन का था। उसने कहा, "दुनिया के किसी भी ग्राज़ाद देश में विद्यार्थियों पर इतने ग्रंकुश नहीं लगाये जाते जितने हम पर लगाये जा रहे हैं। ग्रौर इसका सबसे ताज़ा प्रमाण है हमारे प्रिंसिपल का वह ग्रादेश जिसके द्वारा उन्होंने हॉस्टल के छात्रों को लाला गनेशीलाल के होटल में खाना खाने के लिए बाध्य किया है। हम उन्हें ग्रौर कमेटी के प्रेसीडेण्ट तथा सेक्रेटरी को यह बता देना चाहते हैं कि हम ग्रपने निजी मामले में उनका हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करेंगे। बरदाश्त की भी एक हद होती है। जब कृषि-योजना के बहाने इन्होंने गांव के सीधे-सादे लड़कों से हल जुतवाकर उनका वक्त ग्रौर कॉलेज का रिज़ल्ट खराब किया तब हमने विरोध नहीं किया। जब हॉस्टल के नाम पर हमें एक घुड़साल में रहने को मजबूर किया गया ग्रौर उसका ढाई सौ रुपया किराया नियत हुग्रा तब भी हमने कुछ नहीं कहा। और जब शहर ग्रौर गांवों के लड़कों के बीच भेदभाव की दीवार खड़ी करके इन्होंने उम्मेदसिंह के खिलाफ प्रिंसिपल उत्तमचन्दजी से गलत बयान दिलवाये ग्रौर उसे हवालात में बन्द कराया तब भी हमने उफ़ नहीं की···लेकिन ग्राज जब ग्रपनी देखरेख में बनवाया हुग्रा सस्ता ग्रौर ग्रच्छा खाना खाने तक की हमारी ग्राज़ादी का खून हो रहा है ग्रौर हमें मजबूर किया जा रहा है कि हम लाला गनेशीलाल के होटल पर खाना खाएँ, तो हम चुप नहीं रह सकते। हम इस ग्रत्याचार का विरोध करेंगे ग्रौर उस वक्त तक करेंगे जब तक हमारी माँगें नहीं मान ली जातीं। हमें तो ताज्जुब होता है कि कॉलेज-कमेटी ग्रौर प्रेसीडेण्ट ग्रौर सेक्रेटरी ने क्या कॉलेज को ग्रपनी जागीर समझ रखा है जो कमेटी के ग्रौर सदस्यों की सलाह के बिना ही, जो निर्णय चाहते हैं, ले लेते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि कमेटी के ग्राधे से ग्रधिक सदस्य उनके इस निर्णय के विरोध में हैं। ग्रौर ग्राप जानते ही हैं कि हर हॉस्टल में छात्रों के खाने की व्यवस्था

हॉस्टल में ही होती है। उसके लिए कमेटी के सेक्रेटरी को अपना होटल खोलने की ज़रूरत नहीं होती। और अगर होटल हमारे हित के लिए खोला गया है तो फिर हम होटल में खाने को तैयार हैं मगर हमसे उतने पैसे लिये जायें जितने हमें हॉस्टल में देने पड़ते हैं।"

रामपूजन के इस शान्तिपूर्ण भाषण के बाद उम्मेदसिंह ने एक बड़ा ही उत्तेजनात्मक भाषण दिया था। उसने लाला हरीचन्द की कृषि-योजना और उससे उनको प्राप्त अनेक लाभों का अतिरंजित खाका खींचते हुए, लालाजी की स्वार्थपरता पर करारी चोटें की थीं और फिर भट्ठे पर लड़कों द्वारा ईंटें ढोने की घटना का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया था कि उपस्थित जनता लालाजी के नाम पर थू-थू करने लगी। सबसे ज़्यादा छीछालेदर तो लालाजी की तब हुई जब रामदत्त नाम का छोटा-सा लड़का उठा और उसने गूंगे हलवाई और आटेवाले सेठ के लड़के की प्रणय-कथा को सविस्तार बताते हुए कहा, 'ऐसा भी होता है हमारे इस कॉलेज में। और हमारे प्रेसीडेण्ट साहब उस गूंगे बदमाश को बचाने के लिए, उसका दोष हमारे बड़े भाइयों के सिर मढ़ देते हैं। क्यों उसकी ऐसी हरकतों के बाद भी उसे कुछ नहीं कहा जाता—और क्यों उसे इतनी सुविधाएँ दी जाती हैं, मैं चाहता हूँ इस सवाल को आप लोग लालासाहब से उस वक्त पूछें जब वो आपसे वोट माँगने आयें।"

और रामदत्त के भाषण के बाद प्रेसीडेण्ट, सैक्रेटरी और प्रिंसिपल के नामों पर मुर्दाबाद के नारे लगाये गये थे जिसमें जनता का भी पूरा सहयोग था और जलूस उसी शान्तिपूर्ण ढंग से हॉस्टल की तरफ़ लौट गया। जलूस की सबसे बड़ी विशेषता थी उसका अनुशासन और यह भी कि उसमें छोटी कक्षाओं के छात्रों को छोड़कर शहर और गाँव के सभी लड़कों ने भाग लिया था।

स्वाभाविक रूप से इस पर शहर में खूब चर्चा हुई। अधिकांशतः नागरिकों की सहानुभूति विद्यार्थियों के साथ थी और वे जी खोलकर मैनेजमेण्ट को कोस रहे थे।

मगर शहर में इतनी हलचल के बावजूद कॉलेज में एक अजीब तरह की

शान्ति थी। टीचर्स-रूम में बैठे हुए कुछ अध्यापकों की बातचीत का शोर कमरे की शान्ति भी मुश्किल से भंग कर रहा था। प्रिंसिपल साहब, प्रेसीडेण्ट लाला हरीचन्द के यहाँ गये हुए थे जहाँ कमेटी की एक तात्कालिक बैठक हो रही थी।

अध्यापक दो-दो, तीन-तीन के समूहों में बंटे हुए बातचीत कर रहे थे। हड़ताल का विषय यद्यपि एक दिन पुराना हो गया था फिर भी हड़ताल और इलैक्शन से लेकर राशन तक पर चर्चा हो रही थी। अचानक प्रवीणचन्द्र शास्त्री ने सबकी दिलचस्पी का एक प्रश्न पूछा, "क्या ये सत्य है कि व्यवस्था-समिति इस गोष्ठी में हम लोगों के संगठन पर भी विचार-विमर्श करेगी ?"

शास्त्रीजी का संकेत दो-दिन पूर्व बनी टीचर्स-एसोसियेशन की ओर था। किसी से कोई उत्तर न पाकर उन्होंने आगे कहा, "सम्भवत: व्यवस्था-समिति को किसी ने यह बताया है कि हमने उनसे अपना विगत तीन मास का वेतन प्राप्त करने के लिए यह संगठन किया है।"

"तो इसमें कौनसी बुराई है ?" राजेश्वर ने पूछा।

"यदि समिति ने हमारे इस संगठन को अवैध घोषित करके भंग कर दिया तो ?" शास्त्रीजी ने शंका प्रकट की।

"ऐसा कैसे हो सकता है !" मास्टर उत्तमचन्द ने विश्वासपूर्वक कहा, "देश के हर स्कूल में टीचर्स की एसोसियेशन होती हैं। हमने कोई नयी और अनहोनी बात थोड़े ही की है।"

शास्त्रीजी ने और कोई शंका नहीं की। इसके बाद फिर बातचीत का प्रवाह लड़कों की हड़ताल और माँगों की ओर मुड़ गया। कमेटी का उनके प्रति क्या रुख होगा ? किस-किस लड़के के खिलाफ़ क्या-क्या कार्यवाही की जायेगी—आदि सम्भावित बातों पर बहस होने लगी। सारे अध्यापक किसी-न-किसी रूप में भाग लेने लगे। केवल जयप्रकाश ही मुख पर सन्तोष और आत्मनिष्ठा के भाव लिये कहीं और खोया रहा।

यह सच था कि इससे पूर्व जयप्रकाश ने भी कहीं इतनी पूर्ण और सफल हड़ताल नहीं देखी थी। किन्तु वह यह सोच रहा था कि शास्त्रीजी की बातों में कितना तथ्य है ? और अगर मैनेजमेण्ट के पास एसोसियेशन

की बात पहुंची तो उस पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हो सकती है ? और फिर उसके दिमाग में एसोसियेशन के निर्माण की पूरी प्रक्रिया फ़िल्म की तरह घूम गयी और वह एक-एक दृश्य को सूक्ष्मता से देखने लगा कि उसमें कहीं मैनेजमेण्ट के विरोध की गन्ध तो नहीं थी। कहीं कुछ ऐसा तो नहीं था कि लड़कों की इस हड़ताल को उससे जोड़ा जा सके।

सबसे पहले उसीने खड़े होकर एसोसियेशन के निर्माण की बात उठाते हुए कहा था कि ऐसी एसोसियेशन्स सब स्कूलों और कालेजों में होती हैं और उनका उद्देश्य अध्यापकों में शिक्षा और शिक्षण के प्रति जागरूकता लाने के साथ-साथ उनके चिन्तन को प्रखर करना भी होता है। इसके द्वारा हम सब लोगों को एक स्थान पर बैठकर अपनी समस्याओं पर विचार करने और उन्हें सुलझाने का अवसर मिलता है; वे समस्याएँ चाहे हमारे आवास की हों या शिक्षण की, खाने की हों या खेलने की। उसके बाद मास्टर उत्तमचन्द खड़े हुए थे और उन्होंने भी दूसरे शब्दों में इन्हीं बातों को दोहराया था, कहा था, "ऐसी एसोसियेशन्स को और व्यापक स्तर पर बनाया जाये तो उनसे शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़े उपयोगी प्रयोग किये जा सकते हैं। हर प्रदेश की लोकल (स्थानीय) प्राब्लम्स (समस्याएँ) अलग-अलग होती हैं। यदि एसोसियेशन्स को, अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा को ढालने के अधिकार दिये जायें तो मैं समझता हूँ कि शिक्षा-जगत में क्रान्ति आ सकती है।" उनके भाषण में भी ऐसी कोई बात न थी जिसे आपत्तिजनक या मैनेजमेण्ट के विरोध में माना जा सके। अलबत्ता राजेश्वर ठाकुर ने ज़रूर अध्यापकों को तीन महीने से वेतन न मिलनेवाली बात उठाकर वातावरण को उत्तेजनापूर्ण बना दिया था। उसके बाद सर्व-सम्मति से एसोसियेशन के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ था—मास्टर उत्तमचन्द प्रेसीडेण्ट, श्रीवास्तवजी वाइस प्रेसीडेण्ट, सत्यव्रत जनरल सेक्रेटरी, रस्तोगी ज्वाइण्ट सेक्रेटरी और राजेश्वर ठाकुर कोषाध्यक्ष चुने गये थे।

सत्यव्रत ने अपना पद इस शर्त पर स्वीकार किया था कि एसोसियेशन की सारी कार्यवाही हिन्दी में होगी और राजेश्वर ठाकुर ने इस शर्त पर कि लोग अपना चन्दा बिना माँगे ही तनख्वाह मिलने के दिन उसे

दे दिया करेंगे। बहुत आग्रह करने पर भी जयप्रकाश ने कोई पद स्वीकार नहीं किया था।

जयप्रकाश याद करने की कोशिश करने लगा कि उस वक्त कौन ऐसा अध्यापक वहाँ था जिसने मैनेजमेण्ट तक ये बात पहुंचाई होंगी। सभी के चेहरे उल्लास से दीप्त थे। प्रारम्भिक भाषण ने ऐसा वातावरण उपस्थित कर दिया था कि किसी के मन में लेशमात्र भी अविश्वास, संशय या भय नहीं था। अगर ये अपराध था तो सब इसके अपराधी थे और अगर ये पुण्य था तो सबने इसका फल चखा था। हाँ, स्वयं शास्त्रीजी के मुख पर कुछ उदासी के भाव ज़रूर थे जो शायद इस कारण अधिक थे कि उनकी वरिष्ठता और महानता के बावजूद उन्हें कोई उच्च पद नहीं दिया जा सका था।

अगली मीटिंग कब होगी और उसका क्या विषय होगा—इसका दायित्व एसोसियेशन के सेक्रेटरी सत्यव्रत को सौंपने के बाद मीटिंग खत्म हो गयी थी। एसोसियेशन की पूरी कार्यवाही की मन-ही-मन समीक्षा करने पर जयप्रकाश ने निश्चिन्तता की साँस ली। उसे कुछ भी ऐसा नहीं लगा जो आपत्तिजनक हो और जिसको आज की हड़ताल से जोड़ा जा सके।

अध्यापकों के सारे पीरियड खाली थे। जब पढ़नेवाले ही नहीं थे तो पढ़ाते किसे? इसलिए ज़रा-ज़रा-सी बात पर ठहाके गूंज उठते थे। ऐसे ही एक ठहाके पर चौंककर जयप्रकाश ने पूछा, "क्या हुआ भाई!"

"अरे ऊँची मज़ाक हो गयी!" राजेश्वर हँसते हुए बोला, "बाहर कुछ आहट हो रही थी तो सत्यव्रतजी ने कहा कि शायद इन्सपैक्शन पैनल आ रहा है।"

जयप्रकाश भी हँस पड़ा फिर गम्भीरता से बोला, "वैसे कुछ आश्चर्य नहीं कि ऐसा भी हो जाये। परसों को पैनल आ ही रहा है और अगर लड़कों की हड़ताल परसों तक खत्म न हुई तो पैनल इन टूटी कुर्सियों और उखड़ी दीवारों का ही मुआयना करेगा।"

तभी टन-टन करके स्कूल का घण्टा बज उठा। सातवाँ घण्टा शुरू हो गया था।

राजेश्वर को इन घण्टों से बड़ी खीज हो रही थी, बोला, "कल से देख रहा हूँ कि लड़का एक नहीं आ रहा, मगर घण्टे बराबर वक्त से बजे जा रहे हैं।"

रस्तोगी ने कहा, "इसलिए जनाब कि आप यह न भूल जायें कि आप यहां पढ़ाने के लिए आये हैं!"

"प्रिंसिपल साहब अभी तक नहीं लौटे?" रामाधीन श्रीवास्तव ने कहा, "शायद कोई सीरियस (गम्भीर) चर्चा हो रही होगी।"

"यही तो हमारा दुर्भाग्य है कि न सोचने लायक बातों पर हमारी कमेटी इतनी गम्भीरता से विचार करती है। अगर सोचने लायक बातों पर..." जयप्रकाश व्यंग्य से बोला और उसके होंठों पर विकृति उभर आयी। जोर से मन हुआ कि कहे यदि ऐसा न होता तो यह हड़ताल ही क्यों होती? पर जैसे अचानक हाथों से छूटे हुए गैस के गुब्बारे की डोर कोई उचककर पकड़ ले वैसे ही जयप्रकाश ने अन्तर की भावनाओं को अधरों तक आने से पहले ही दबोच लिया। फिर एक हल्की-सी मुस्कराहट उसके होंठों पर आयी और वह सोचने लगा कि अभी कितना बड़ा राज़ प्रकट हो जाता। सिवाय राजेश्वर के और किसी को भी इसकी भनक नहीं थी। सब लोग यही समझते थे कि लड़कों ने प्रिंसिपल के आदेश के विरुद्ध स्वयं हड़ताल की है। परसों दिन भर रामपूजन ज्ञान और उम्मेद आदि लड़के छात्रों की मीटिंग करते रहे थे और कल तक किसी को कानों-तक भी खबर न थी कि हड़ताल हो जायेगी। हाँ, कल सुबह जब जयप्रकाश और उत्तमचन्द, सत्यव्रत की कोठरी में बैठे हुए थे तो सत्यव्रत का वह मुस्लिम-छात्र मोहसिन अवश्य आया था। उसी ने बताया था कि रामपूजन हॉस्टल के कुछ लड़कों के साथ कॉलेज के रास्ते में स्टेशन रोड पर बैठा है—और ये लोग कॉलेज जानेवाले लड़कों को कॉलेज जाने से रोक रहे हैं।

सत्यव्रत और उत्तमचन्द की ही तरह जयप्रकाश भी इस समाचार पर चौंक पड़ा था और मोहसिन के जाते ही सत्यव्रत तथा मास्टर उत्तमचन्द के साथ वह भी उन लड़कों के पास जाने के लिए उद्यत हो गया था। किन्तु दूसरे ही क्षण कुछ सोचते हुए उन दोनों से कहा था, "सुनो, कमेटी

से अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए जो लड़ाई हम तुम नहीं लड़ पाये, वही यदि आज लड़के लड़ रहे हैं तो उन्हें रोका क्यों जाये? क्या पता उन्हीं की हड़ताल से त्रस्त होकर कमेटी को हमारा भी खयाल आ जाये।" और इस पर उत्तमचन्द और सत्यव्रत दोनों ही एक क्षण के लिए ठिठककर पुनः अपने-अपने स्थान पर आ बैठे थे। सत्यव्रत ने स्वीकार किया था, "लड़कों की लड़ाई सत्य की लड़ाई है—यह मैं मानता हूँ।"

उत्तमचन्द ने भी कहा था, "लड़कों ने बहुत बोल्ड (साहसपूर्ण) कदम उठाया है और इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।" मगर फिर उन्होंने जयप्रकाश के शान्त मुख की ओर एकटक देखते हुए कहा, "अगर उनकी बजाय, मास्टर साहब! आपको ही बधाई दे दी जाये तो क्या हर्ज है?"

जयप्रकाश तुरन्त 'त्राहि-माम्' की मुद्रा में हाथ उठाकर खड़ा हो गया था और बोला, "अरे क्या गज़ब कर रहे हैं मास्टर साहब! कहीं मज़ाक में भी ऐसा मत कह दीजिएगा। मुझे तो, भगवान जानता है, अभी-अभी मालूम हुआ।"

उत्तमचन्द समझ गये थे कि लालाजी की परसोंवाली स्पीच का प्रभाव कम करने के लिए ही जयप्रकाश ने यह हड़ताल करायी है और यही सोचकर उनके मुँह पर कुटिल-सी मुस्कराहट अनायास आ गयी थी किन्तु सत्यव्रत ने जयप्रकाश का विश्वास किया, बोला, "मैं समझ नहीं पाता कि ये विद्यार्थी किस धातु के बने हैं। आज सुबह की बात लीजिए कि सारे-के-सारे विद्यार्थी ठीक पाँच बजे उठे और हवन-पूजन की सामग्री तैयार करके स्वयं मुझे बुलाने के लिए आये। जब कि नित्यप्रति मैं उन्हें उठाकर हवन-पूजन के लिए बुलाया करता था। मैंने सोचा ये भी कोई ईश्वरीय चमत्कार है जो उन्हें सुबुद्धि आ गयी। उनकी ऐसी श्रद्धाभक्ति देखकर कौन सोच सकता था कि ये आज हड़ताल करने की सोच रहे हैं।"

और जयप्रकाश का हृदय, सत्यव्रत के उस वर्णन के साथ-साथ एक अनिर्वचनीय आनन्द से भरता गया, क्योंकि विद्यार्थियों ने उसकी इच्छा का अक्षरशः पालन किया था।

जयप्रकाश ने उन्हें केवल हड़ताल की आवश्यकता ही नहीं समझायी थी बल्कि उसके नैतिक, सामाजिक और वैयक्तिक महत्त्व पर भी ज़ोर

दिया था। कहा था, "ऐसी स्थिति में, जब हड़ताल के अलावा कोई दूसरा उपाय शेष न हो, हड़ताल, हड़ताल की तरह नहीं, पूजा की तरह होनी चाहिए। उसी निष्ठा और उसी लगन के साथ, जिसके साथ हम ईश्वर से किसी वरदान की प्रार्थना करते हैं। मैं तो कहता हूँ यदि अपराध भी निष्ठा के साथ किया जाय तो वह अपराध नहीं होता। मैं इसीलिए कम्यूनिज़्म को पसन्द करता हूँ कि वे ईश्वर का विरोध भी करते हैं तो निष्ठा के साथ और मानवीय हित के लिए करते हैं। तुम लोग अगर लगन और निष्ठा के साथ हड़ताल करोगे तो कोई कारण नहीं कि वह सफल न हो। लेकिन अगर उसमें हुल्लड़बाज़ी और गालीगलौज हुई तो तुम न केवल नागरिकों की, बल्कि मेरी और अपनी नज़रों में भी गिर जाओगे। और वह स्वप्न अधूरा रह जायेगा, जिसके लिए हम लोग छटपटाते हैं।"

रामपूजन, ताहरसिंह, ज्ञान और उम्मेद चारों श्रोता लड़के सिर झुकाये सामने बैठे थे। जयप्रकाश भाव-विह्वल होकर सच्चाई और आवेश के साथ बोल रहा था। राजेश्वर तटस्थ दर्शक की भाँति 'हाँ-हूँ' करता हुआ उसे सुन रहा था। फिर उसने गांधीजी की हड़तालों और निजी स्वार्थ के लिए की गयी हड़तालों के तुलनात्मक सन्दर्भ में उन्हें अधिक-से-अधिक शान्त और गम्भीर रहने का महत्व समझाया था और फिर देर रात गये तक उन्हें हड़ताल का पूरा कार्यक्रम समझाता रहा था। यहाँ तक कि उनके भाषण भी उसी ने लिखवाये थे। हाँ, बीच-बीच में राजेश्वर कुछ प्वाइण्ट्स ज़रूर बताता जाता था।

तभी सातवाँ घण्टा खत्म हुआ और छुट्टी की घण्टी बज उठी। अध्यापक टीचर्स-रूम से निकल-निकलकर जाने लगे। प्रिंसिपल साहब तब तक भी नहीं आये थे। राजेश्वर और उत्तमचन्द ने कन्धे पकड़कर जयप्रकाश को छूने का नाट्य किया, और जयप्रकाश के चौंक उठने पर राजेश्वर, एक लम्बी-सी साँस छोड़कर बोला, "शुक्र है, परमेश्वर का, जिन्दा तो हैं।"

जयप्रकाश उठते हुए हँसकर बोला, "हाँ, अभी तो हूँ। मगर कल की फ़िक्र है?"

राजेश्वर बोला, "ये बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी कि तुम भविष्य में

जीते हो। अमाँ, जो वर्तमान है उसे देखो, उसमें जीओ।"

"वर्तमान भी भूत और भविष्य के सन्दर्भों में ही जीने योग्य होता है। सब लोग अगर वर्तमान में जीने लगें, और किसी को भविष्य का कोई आश्वासन न हो, तो जनाब नब्बे फ़ीसदी लोग, इस ज़िन्दगी को तलाक देकर, बैकुण्ठ का रास्ता ढूँढ़ना चाहेंगे। आया अक्ले-शरीफ़ में? चलिए इसी बात पर चाय पिलाइए।" जयप्रकाश ने हँसकर टीचर्स-रूम के दरवाज़े से निकलते हुए कहा।

चाय का प्याला हाथ में लेकर राजेश्वर, उत्तमचन्द और जयप्रकाश से पूछना ही चाहता था कि चाय कैसी बनी है कि उसी समय सड़क की तरफ़ स पवन बाबू आते दिखायी दिये। राजेश्वर को कोफ्त हुई कि खामखाँ एक प्याला चाय की चपत और लगी। चूंकि उत्तमचन्द वहाँ बैठे थे, इसलिए पवन बाबू का इधर गूंगे की दुकान पर आना निश्चित था। राजेश्वर अनमना हो उठा। वह अभी तक इस आदमी के प्रति अपनी घृणाभावना कम नहीं कर पाया।

जयप्रकाश का ध्यान पवन बाबू पर गया तो वह मुस्करा उठा। उत्तमचन्द का ध्यान उधर आकृष्ट करते हुए बोला, "लीजिए मास्टर साहब, आपके 'ऐडीकांग' साहब आ गये।"

"कौन?" उत्तमचन्द ने खाली प्याला ज़मीन पर रखते हुए इधर-उधर ताका और फिर पवन को देखकर बोले, "आओ भाई पवन, बड़े मौके से आये!"

पवन ने किसी की ओर देखा तक नहीं। न कोई जवाब दिया। सीधे उत्तमचन्द पर दृष्टि जमाये नेकर की दोनों जेबों में हाथ डालकर रिंग-मास्टर की तरह वे दस गज दूरी पर खड़े हो गये और फिर गर्दन हिलाकर उत्तमचन्द को अपने पास आने का इशारा किया।

मुस्कराते हुए उत्तमचन्द उठकर पवन के पास चले गये और एक मिनट के भीतर ही गम्भीर होकर लौट आये। पवन बाबू उनके कान में कुछ कहकर फ़ौरन ही कॉलिज के फाटक में घुस गये। गूंगा हथेलियाँ बजा-बजाकर उन्हें बुलाता ही रह गया। उसने पवन बाबू के लिए भी एक

प्याला तैयार कर लिया था।

जयप्रकाश ने उत्तमचन्द की यह गम्भीरता लक्ष्य की मगर उसके और सत्यव्रत के पूछने पर भी उन्होंने कुछ नहीं बताया। फिर जब वे चारों दुकान से उठकर चल दिये तो रास्ते में उत्तमचन्द ने कहा, "सुना है आज की मीटिंग में चार मास्टरों की सर्विसेज़ (नौकरी) टर्मिनेट करने की बात तय हुई है! अब लगा लो वे चार कौन-कौन हो सकते हैं?"

"कैसे मालूम हुआ?" जयप्रकाश ने पूछा, "पवन बता रहा था क्या?"

"हाँ?" उत्तमचन्द ने कहा और चारों लोग जैसे खामोश होकर अपनी-अपनी प्रतिरक्षा का उपाय सोचने लगे। सत्यव्रत अधिक निश्चिन्त एवं आश्वस्त दिख रहा था। राजेश्वर उदासीन था जैसे सोच रहा हो जो होगा देखा जायेगा। हाँ, उत्तमचन्द और जयप्रकाश अवश्य ज़रूरत से ज्यादा गम्भीर थे।

इज़्ज़त का सवाल

"हाँ भय्या गनेशीलाल अब कहो!" लाला हरीचन्द मसनद के सहारे टिक-कर पाँव फैलाते हुए बोले, "अब तुम्हारे प्रिस्तावों पै विचार करने का मौक्का आया है।"

गनेशीलाल, लालाजी से बहुत खिन्न थे और अपने मनोभावों को कई बार स्पष्ट रूप से लालाजी के सामने रख चुके थे। लालाजी के बारे में उनका ये खयाल बन चला था कि कॉलिज के मामले में लालाजी बिल्कुल तानाशाही चलाना चाहते हैं और किसी दूसरे की बात पर ध्यान नहीं देते। इसलिए आज जब लालाजी ने उन्हें बुलवाकर उनसे यह बात कही तो उन्हें सहसा अविश्वास का एक करण्ट-सा छू गया और उसी की पीड़ा से अभिभूत होकर उन्होंने कहा, "अब क्या कहूँ लालाजी। उस बखत अगर आप दो-एक मास्टरों कू डिसमिस कर देत्ते तो सारी-की-सारी हड़ताल बरी रै जात्ती।"

लालाजी ने जैसे मर्माहत होकर कहा, "भैय्या गनेसीलाल ! बात तुम हमेस्सा सही कहो हो मगर मौक्का-मुहाल देख कै नई कहते। अब तुम ही बताओ उस दिन इस बात का कोई मौक्का था ?" और यह कहने के साथ ही गनेशीलाल की आँखों के सामने उस दिन यानी हड़ताल के दूसरे दिन वाली मीटिंग की सारी स्थितियाँ साकार होकर उभर आयीं।

उस दिन लाला हरीचन्द और सेक्रेटरी गनेशीलाल दोनों ही बेहद परेशान थे। ज्वाइण्ट सेक्रेटरी गुलज़ारीमल, छदम्मीलाल, बालिस्टर और बाबू साहब ने मीटिंग का इस आधार पर बहिष्कार कर दिया था कि छात्रों की माँगें उचित हैं और उनको बिना किसी मीटिंग के मान लेना चाहिए। इसके बाद जैसे-तैसे कोरम पूरा हुआ तो भी वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके थे।

हड़ताल की ज़िम्मेदारी किस पर है—यह प्रश्न जब सेक्रेटरी गनेशीलाल ने उठाया तो उस पर सबसे ज़्यादा गरमागरम बहस हुई थी। एक मत था कि इसका कारण प्रिंसिपल की कमज़ोरी है। इसका लालाजी ने एव बाद में स्वयं प्रिंसिपल ने प्रतिवाद किया था। दूसरा मत था कि लड़कों को कुछ पढ़ाया नहीं जाता इसी से उनके दिमाग में खुराफ़ातें घूमती हैं। मगर लाला गनेशीलाल की राय थी कि हड़ताल की सीधी ज़िम्मेदारी हॉस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट पर है। हॉस्टल के ही लड़के होटल के विरोध में थे और वे ही हड़ताल के नेता हैं। उन्होंने ही कल उलटे-सुलटे भाषण दिये हैं और शहर में कॉलिज की भद्द पीटी है। चूंकि लड़कों को हर मामले में शुरू से ही अपने सुपरिण्टेण्डेण्ट का समर्थन मिलता रहा है इसलिए उनका हौसला इतना बढ़ा कि उन्होंने हड़ताल तक कर दी। अतः सुपरिण्टेण्डेण्ट को ठीक करना ज़रूरी है।

लालाजी उनके पक्ष या विपक्ष में कोई तर्क नहीं सोच पाये कि तभी प्रिंसिपल ने उठकर कहा, "मैं सेक्रेटरी साहब की राय से सहमत हूँ। वर्ना बिना किसी की शह पाये लड़कों में इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि वे हड़ताल कर दें। फिर जब उन्हें ये मालूम पड़ा कि हॉस्टल के लड़के ही हड़ताल के लीडर हैं तो क्या सुपरिण्टेण्डेण्ट होने के नाते उनका ये फ़र्ज़ नहीं था कि वे उन्हें जाकर समझाते ? मैं समझता हूँ कि मैंने कुछ दिनों

पहले उनसे जो एक्सप्लेनेशन काल (जवाबतलब) किया था ये उसका रिएक्शन (प्रतिक्रिया) है। मैं अर्ज करना चाहता हूँ कि देखने में सीधे लगनेवाले आदमी अक्सर खतरनाक होते हैं।"

और प्रिंसिपल की इस बात का गनेशीलाल ने प्रबल समर्थन किया।

बात बढ़ते देखकर लालाजी को खड़ा होना पड़ा। उन्होंने अपनी शान्त संयत वाणी में कहा, "देख्खो भय्यो ! इस बखत हमारे सामने अहम सवाल जो है वो ये है कि इस हड़ताल को रोक्का कैसे जावे ? परसों कू इन्सपैक्सन-पैनल आनेवाला है। तब तक अगर हड़ताल चाल्लू रई तो क्या पिरभाव पड़ेगा उनपै—ये सोचने की बात है !"

दरअसल लालाजी नहीं चाहते थे किसी अध्यापक को डिसमिस करने का प्रश्न इन दिनों इस तरह खुले आम तय किया जाये। इससे उनके इलैक्शन पर भी बुरा प्रभाव पड़ सकता है। क्योंकि कुछ हो, उन्होंने सत्यव्रत की बाबत यह बात नहीं सुनी थीं कि वह इलैक्शन में उनके विरुद्ध कार्य कर रहा है। जब कि जयप्रकाश, राजेश्वर और यहाँ तक कि उत्तमचन्द तक के बारे में उन्होंने ऐसी बातें सुनी थीं।

आखिर हड़ताल रोकने का एक ही उपाय सर्वसम्मति से तय पाया गया कि फ़िलहाल लड़कों को होटल पर खाना खाने के लिए विवश न किया जाये और लड़कों के नेताओं को समझा-बुझाकर हड़ताल खत्म करा दी जाये। होटल की कीमत पर हड़ताल खत्म होने की बात गनेशीलाल को अखरी तो बहुत, मगर इसके अलावा कोई दूसरा उपाय न पाकर उन्हें सहमत होना पड़ा था। मगर यह मलाल उनके मन में ज़रूर रह गया था कि हड़ताल कराकर होटल बन्द करानेवाले मास्टर को सज़ा नहीं मिल पायी।

अब इतने दिन बाद, लालाजी ने फिर वही बात उठायी तो गनेशीलाल को अपने असन्तोष का प्रदर्शन करना पड़ा, बोले, "अब क्या कहूँ लालाजी, अब तो मौक्का ही निकल गया।"

लालाजी उठकर बैठे हो गये, बोले, "क्या कहते हो भय्या गनेसीलाल ! अभी तो मौक्का आया है। पैनल की इन्सपैक्सन रिपोर्ट हमारे हक में हुई है। इलैक्सन के आसार भी ऐसे हैं कि बाबू साहब, लगता है,

चुप हो गये हैं। और प्रिंसिपल से मैंन्नें कया है कि वो हड़ताल के कारनों की जाँच करके जिन-जिन मास्टरों का इसमें हाथ होवै, उनके विरुद्ध कार्यवाई करे।"

गनेशीलाल के चेहरे पर सहज उल्लास उभर आया। जैसे कोई गोताखोर कई तरह के मोतियों के ढेरों के पास जा पहुँचा हो और यह निश्चय न कर पा रहा हो कि पहले वह कौन-सी ढेरी को अपनी झोली में भरे। आन्तरिक उल्लास को वाणी में व्यक्त करते हुए उन्होंने पूछा, 'अच्छा ! तो क्या बाबू साहब अपना नाम वापस ले लेवैंगे ?"

"वापिस तो क्या लेवैंगे मगर यो है कि अब उनकी दिलचस्पी नई रई।" लालाजी ने उसी शान्त संयत भाव से कहा, "वास्तव में वो खड़ा हाना चाहवें ही नई थे। उन्हें तो लोग्गों ने जबरदस्ती खड़ा कर दिया !"

"आपको ये सब बात्तें कैसे मालूम हुई लालाजी ?" गनेशीलाल ने सहज कौतूहल से पूछा।

"बस होई गई।" लालाजी ने कहा, "वो बालिस्टर आर्या था रात मेरे पास। कह रया था कि हमारे कुछ मास्टरों ने ही बाबू साहब कू खड़ा कर दिया था। मगर जब से बालिस्टर की उनकी चली है, तबसे तो वो बिलकुल ही बिरक्त हो गये हैं। कल तो उनने मास्टरों से भी कह दिया कि अब उन्हें इलैक्सन-बिलैक्सन नई लड़ना।"

"अच्छा, कौन-कौन मास्टर थे ?" गनेशीलाल ने पूछा।

"नाम तो किसी का बताया नई और न मैंन्नें जोर ही दिया, पर जयपरकास, उत्तमचन्द और राजेश्वर के सिवाय और कौन हो सकै ?"

"बस येई तो धोक्का है आपकू !" गनेशीलाल ने बिश्वास के साथ कहा, "मैं कहे दूं हूँ कि आपका जो वो बिरमचारी पंडत है न, सत्तेबरत, उसका इसमें जरूर हाथ होवैगा।"

लालाजी एक क्षण के लिए सोचते रह गये फिर बोले, "वैसे तो सास्त्री भी मुससे योई बात कै रया था, पर मुझे बिस्वास नई हुआ। पर तुम कहो तो।"

"शास्त्री झूँठ बोलनेवाला आदमी नई है !" गनेशीलाल ने शरीर पर पड़ी चादर को कन्धे से लपेटते हुए कहा, "तब तो जरूर सत्तेबरत का

हाथ इसमें होवैगा। उनने ही लौण्डों कू होटल पै खाना खाने से रोक्का था और उनने ही हड़ताल भी करायी होगी।" और फिर गनेशीलाल ने स्वर को धीमा करके कहा, "मुझे तो लगै है लालाजी, वो बहुत छँटा हुआ है। मैंन्ने तो उसके चाल-चलन की बाबत भी सुना है कि वो एक मुसलमान लौण्डे कू पीच्छे लगाए फिरै है।"

"हाँ, सुना तो मैंन्नै भी है। बल्कि उस बखत चौधरी साब भी यहीं बैट्ठे थे। उन्होंने भी तसदीक करी। कहन लगे चरित्र का अच्छा नई है। उनकी लौण्डिया कू पढ़ावै था, उन्होंने छुड़ा दिया। सायद उसे भी कच्ची-पक्की दृष्टि से देख्खा था।" लालाजी ने गनेशीलाल से सहमत होते हुए कहा।

गनेशीलाल का मुँह विस्मय से खुला रह गया। यद्यपि वे सत्यव्रत के चरित्र पर आक्षेप कर रहे थे, पर उनके अन्तर्मन में स्वयं अपने वक्तव्य पर विश्वास न था। वे तो इस बात पर सत्यव्रत से नाराज़ थे कि उसने उनका होटल बन्द कराया था और उस दिन जब उन्होंने उससे उसकी बहन की शादी के सामान आदि की खरीद-फ़रोख्त के बारे में बातें कीं तो उसने टका-सा जवाब दे दिया था कि अभी तो वेतन ही नहीं मिला है, और जब मिलेगा तो सामान वग़ैरा जो कुछ उसे खरीदना होगा वह बिजनौर से ही खरीदेगा, क्योंकि गाँव के सब लोग वहीं से खरीदते हैं। चौधरी साहब के आक्षेप की बात सुनकर गनेशीलाल असमंजस में पड़ गये।

लालाजी ने शायद गनेशीलाल का असमंजस भाँप लिया था। इसी-लिए मुस्कराते हुए बोले, "क्यों बिस्वास नई हुवा ?"

"नई लालाजी।" गनेशीलाल ने पैंतरा बदलते हुए कहा, "विश्वास इस बात पै तो हुआ कि सत्तेबरत ने ऐसा करा होवैगा पर इस बात पै नई हुआ कि चौधरी साहब ने खुद ऐसी बात बतलाई होवैगी। आपकू याद होवैगा कि कल लो वो सत्तेबरत के गीत गात्ते फिरैं थे।"

...और तब लालाजी ने जो बात बतलायी उसका सारांश यह था कि दशहरे की छुट्टियों के बाद जब चौधरी साहब ने देखा कि सत्यव्रत विमला को पढ़ाने नहीं आ रहा है तो उन्होंने विमला से इसका कारण पूछा। विमला ने उत्तर में कहा तो कुछ नहीं, बस रो पड़ी। तब चौधरी साहब को

ध्यान आया कि सारी छुट्टियाँ विमला अत्यन्त उद्विग्न और विह्वल रही है। और उन्हें लगा कि ज़रूर सत्यव्रत ने छुट्टियों पर जाते समय कोई ऐसी हरकत की होगी जो लड़की लाज-शीलवश उनसे नहीं कह पायी और उसके मन में एक अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। उसी का पता लगाने के लिए उन्होंने विमला से बहुतेरा पूछा परन्तु सिवाय आँसुओं के और कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में निर्लज्ज होकर उन्होंने स्पष्ट ही पूछा कि क्या सत्यव्रत ने कोई ऐसी हरकत की जो उसे नागवार गुज़री है ? इस पर विमला स्वीकृति में सिर हिलाकर रोती-रोती अन्दर भाग गयी !

सुनकर गनेशीलाल जड़वत रह गये। जब से इधर चौधरी साहब का लड़का अलग हुआ है, वे अपनी खेती के अलावा और किसी चीज़ में ध्यान ही नहीं देते। शहर की राजनीति और झूठ-सच से भी उनका कोई वास्ता नहीं रहा। अतः अविश्वास का भी कोई कारण नहीं था फिर अपनी लड़की के बारे में कोई झूठी बात उड़ायेगा ही क्यों ?

आखिर गनेशीलाल को स्वीकार करना पड़ा "ये तो बड़ी अपमान की बात है लालाजी ! चौधरी साहब की और हमारी इज्जत कोई दो-दो थोड़े ही हैं। आज उनकी पगड़ी उछली है, कल कू कोई हमारी भी उछाल सकै है !"

"मैं भी येई सोच रया हूँ !" लालाजी ने गम्भीर होकर निःश्वास छोड़ते हुए कहा। और फिर रात के अँधेरे में थोड़ी खामोशी के बाद दोनों देर तक फुसफुसाहट के स्वर में बातें करते रहे। जब काफ़ी देर बाद गनेशीलाल वहाँ से निकले तो उनके मुख पर पूर्ण सन्तोष के भाव थे।

बुझी हुई लालटेन

सत्यव्रत ऊपर, छत पर पड़ी हुई खाट पर लेटा था। बरसात की उमस भरी शामों में भी वह हॉस्टल की छत पर नहीं आया था। क्या पता कब उसकी आहट सुनकर विमला आ जाये और बिना बात की बात का बतंगड़ बन जाये। पर अब जिस दिन वह टहलने नहीं जाता, छत पर ज़रूर आता

है। दशहरा के बाद से अब तक कई बार सत्यव्रत ने सोचा है कि अगर विमला दिखायी दी तो वह उसे प्रणाम ज़रूर करेगा। इसलिए नहीं कि वह फिर उससे सामीप्य बढ़ाये बल्कि इसलिए कि विमला के मन की कटुता कम हो। अपमान की अग्नि में झुलसती हुई उसकी आत्मा को शान्ति मिले। मगर अब तक ऐसा अवसर उसे कभी नहीं मिला था।

दशहरा की छुट्टियाँ खत्म होने के बाद तो कई दिनों तक शाम को सत्यव्रत बाहर भी नहीं निकला था, इसी आशा में कि कहीं पीछे चौधरी साहब का बुलावा न आ जाये। किन्तु उसे नहीं बुलाया गया और उसकी सारी आशाएँ धीरे-धीरे बुझ गयीं। अब किसी उजड़ी हुई प्रदर्शनी की तरह केवल उनकी स्मृतियाँ शेष हैं। आज उस व्यक्ति की तरह जिसने भरे-पूरे सौन्दर्य में प्रदर्शनी देखी हो, सत्यव्रत को भी अनिर्वचनीय-सा मलाल होता है। अनायास जाने कब पढ़ी एक कविता की पंक्ति उसके हृदय में उभर आती है—"तट पर रखकर शंख सीपियाँ चला गया है ज्वार हमारा।"

रोज़ ही जब शाम के लाल होते हुए क्षितिज पर धीरे-धीरे अँधेरे के सुरमई डोरे उभरने लगते हैं तो सत्यव्रत को बरबस विमला की याद आ जाती है। ऐसे ही लज्जा से आरक्त होकर वह उसकी निकटता प्राप्त करने की कोशिश किया करती थी और कोई उत्साहप्रद प्रत्युत्तर न पाकर इसी तरह बुझ जाया करती थी।

आज रात को आठ बजे हॉस्टल में टीचर्स-एसोसियेशन की मीटिंग है इसलिए सत्यव्रत टहलने नहीं जा सका। अतः ऊपर पड़ा-पड़ा वह आसमान के बदलते हुए रंगों को देख रहा है।

धीरे-धीरे पश्चिमी क्षितिज में चाँद उग आया। अँधेरे की काली लटों से झाँकता हुआ चाँद आज सोलहवों कलाओं से युक्त नहीं था। पूर्णमासी को समस्त कलाएँ जब पूर्ण होंगी तभी इसका सौन्दर्य भी विकसित होगा। सत्यव्रत को अनुभव हुआ कि अभी तो इस चाँद में कोई विशेषता नहीं है। तो फिर संस्कृत-साहित्य में चन्द्रमा की सौन्दर्य-स्तुति में वर्णित अनेक काव्यांश क्या यों ही हैं? और उसके स्मृति-पटल पर अनेक कविताएं उभरने लगीं। किसी में चन्द्रमा को चन्दन के समान शीतल कहा गया था तो किसी में अमृत के समान मधुर। उन्हें याद करते हुए

उसने अपने ऊपर चांद की प्रतिक्रिया जानने की कोशिश की तो लगा कि चांद को देखकर उसकी उदासी थोड़ी और बढ़ गयी है। उसके भीतर का शून्य और गहरा उठा है और अकेलेपन का अहसास उसे और तीव्रता से होने लगा है।

जब से दशहरे की छुट्टियां खत्म हुई हैं या जब से विमला ने उसे पढ़ाने के लिए नहीं बुलवाया तभी से अकेलापन उसके लिए समस्या बन गया है। हर शाम एक प्रश्नवाचक चिह्न की तरह उसके सामाने आ खड़ी होती है कि वह उसे कैसे हल करे? कहां जाये? अक्सर—अपने को ईमानदारी से टटोलकर सत्यव्रत ने स्वयं से प्रश्न किया है—क्या ऐसा विमला से अलगाव के कारण ही होता है? और अक्सर यह सवाल अनुत्तरित रहकर भीतर-ही-भीतर गूंजता-उतरता चला गया है। फिर एक और प्रश्न उसके मन में उठा है—तुम ऐसी स्थिति में विमला से क्या आशा करते थे? और इसका प्रतिक्रिया भी आत्मा में ठण्डे बर्फीले बर्छे के स्पर्श जैसी हुई है।

सत्यव्रत अपने आप से केवल इतना कहता है कि विमला को उतनी ज़रा-सी बात पर ऐसे नहीं रूठना चाहिए था कि पढ़ना तक बन्द कर दे। इधर-उधर दिख जाये तो साधारण शिष्टाचार तक न बरते या उसे एक बार भी अपने घर न बुलवाये।

सत्यव्रत रोज़ाना ऐसे ही सवालों से उलझता है। अक्सर शाम को वह छोटे तालाब के किनारे जाता है और पाता है कि कई छोटे-छोटे सवाल खजरों, नीमों और जामुनों के पेड़ों तले आसन जमाये उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सब किसी-न-किसी रूप में विमला से सम्बद्ध हैं। उनकी चाल-ढाल, रंग-रूप और आकृति पर भी विमला के किसी-न-किसी अंग का प्रभाव है। हवा का तेज़ झोंका आता है तो खजूर के लम्बे-लम्बे पंठों के साथ पूरा पेड़ ऐसे झटका खाता है जैसे विमला बात करते-करते गर्दन हिला दिया करती थी। सत्यव्रत अचानक सिहर उठता है और तभी एक छोटा-सा सवाल पेड़ के नीचे से उसके सामने आ खड़ा होता है—"बोलो, क्या विमला सुन्दर नहीं है?"

ऐसी ही परिस्थिति में, कल एक सवाल से घबराकर उसने हाथ में छोटी-सी कंकरी उठा ली थी और अनायास प्रश्न पर ताककर दे मारी

थी। और फुच्च की एक आवाज़ के साथ कंकरी तालाब के पानी में जा गिरी थी और कुछ दूर तक पानी की सतह काँपकर रह गयी थी। सत्यव्रत ने सजग होकर ऊपर देखा था कि कोई पंछी तो उसके शीश के ऊपर नहीं मँडराने लगा है। और आश्वस्त होकर वह ज़मीन पर कुछ उल्टी-सीधी लकीरें खींचने लगा था। उसके हृदय में उद्विग्नता और हाथ में फिर एक कंकरी आ गयी थी जिससे वह ज़मीन खुरच रहा था। तभी सामनेवाले प्रश्न ने अचानक विमला की आकृति धारण कर ली और उसके हाथ की कँकरी से भयभीत हुए बिना तड़फकर कहा, "तुम···तुम या तो ढोंगी हो या नपुंसक।"

विमला के थरथराते काँपते होंठों और भिंचे हुए दाँतों के दुर्ग से निकला हुआ यह वाक्य तीर की तरह सत्यव्रत के सीने पर आ लगा। वह तत्काल सजग होकर वर्तमान में लौट आया। बीसियों दिन पहले की उस रात का अन्धकार उसकी सुधियों में आलोकित हो उठा···

···विमला गीतों से लौटकर नहीं आयी थी। बारह का घण्टा बज चुका था और सत्यव्रत तख्त पर पड़ा हुआ बेचैनी से करवटें बदल रहा था। ऐसी ही मनःस्थिति में, आर्य समाज-मन्दिर में तख्त की उभरी हुई कील उसके चुभ गयी थी। वह सोचने लगा कि आज भी कुछ ऐसा ही हो जाये। ऐसी ही तीव्रता से कोई कील उसके शरीर में कहीं चुभ जाये ताकि वह उस दर्द में डूबकर इस अन्तर्द्वन्द्व की दम घोटनेवाली स्थिति से छुटकारा पा सके। और इसी प्रतीक्षा में वह कई बार पूरे तख्त पर इधर-से-उधर तक लुढ़क गया मगर उसके कोई कील नहीं चुभी गोकि तख्त पर एक चटाई के अलावा और कुछ न बिछा था।

हॉस्टल में गहरा सन्नाटा था। मगर उसे नींद नहीं आ रही था। विमला का "दरवाज़ा खुला रखना" कहते समय का विवर्ण, दयनीय मुख उसकी पलकों में काँटे की तरह अड़ा था। इसके सिवाय कोई चारा न था कि वह खुली आँखों अन्धकार को निहारता रहे और अपने अंक में भरता रहे।

विमला को मुझसे क्या काम हो सकता है? उसने कोठरी के अन्धकार से पूछा था और उत्तर में उसके दिमाग में साँकलें बजने लगीं थीं।

कनपटियाँ गर्म हो गयी थीं और रक्त नसों के अन्दर झनझनाकर दौड़ने लगा था और···। मगर उस दिन भी तो उसने पूछा था, "क्या जाकर फ़ौरन सो जाओगे ?" और वह नहीं आयी थी। पर, सत्यव्रत को लगा, उसकी बात का यही अर्थ क्यों निकाला कि वह आना चाहती थी। क्या ऐसा प्रश्न यों ही नहीं पूछा जा सकता।

हाँ, उस दिन यदि वह फ़ौरन नहीं तो कुछ देर बाद ज़रूर सो गया था। मगर आज···। आज विमला आयेगी तो ज़रूर ! कितने साफ़ शब्दों में उसने कहा है—"गीतों से लौटते में आऊँगी।" और विमला के वाक्य के पीछे निहित दृढ़ निश्चयात्मकता को याद करते ही सत्यव्रत की साँसों की धड़कन चौगुनी बढ़ गयी। वह आवेश में आ गया जैसे सामने खड़े किसी शत्रु को कुचलकर चकनाचूर कर देगा। उसकी इच्छा हुई कि उठकर दरवाज़ा क़सकर बन्द कर दे और साँकल लगाकर लेट जाये।

मगर वह उठने को हुआ तो लगा कि सारी शक्तियाँ जवाब दे चुकी हैं और वह उठ भी नहीं सकता। किन्तु कुछ आशंकाएँ ज़रूर उसके मन में उठ खड़ी हुईं।···मान लो उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया और विमला ने आकर धक्का दिया तो···? कितनी आवाज़ करते हैं ये किवाड़ ! और फिर इतना गहरा सन्नाटा कि सुई भी गिरे तो आवाज़ सुनायी दे। हो सकता है उसके घर में कोई उसका इन्तजार कर रहा हो और खड़का सुनकर इधर ही आ जाये।

तभी बाहर कोई बैल या बिजार सड़क से गुजरा तो सत्यव्रत के दिल की धड़कन बढ़ गयी। शिराओं में से रक्त फूट पड़ने को हो आया और एक पल के बाद उसने महसूस किया कि वह कितना दुर्बल व्यक्ति है जो एक ज़रा से संवेग को वश में नहीं कर पा रहा। व्यर्थ ही एक ज़रा-सी बात को इतना महत्त्व दिये बैठा है। उसने अगर कह दिया कि वह आयेगी तो क्या ज़रूरी है कि वह आये। और आयी भी तो कौन उसका अस्तित्व ख़तरे में पड़ जायेगा ? उसे लगा कि इस तर्क-वितर्क से उसे राहत मिली है और उसके रक्त की गति सामान्य हो गयी है। निश्चिन्त होकर उसने टाँगें फैलायीं और अँधेरे में छत की कड़ियाँ देखने की कोशिश करने लगा।

"सो गये क्या ?" विमला ने फुसफुसाकर दबे पाँव कमरे में घुसते हुए

कहा।

सत्यव्रत हड़बड़ाकर बैठा ही गया। विमला हाथ की लालटेन का घोड़ा दबाकर चिमनी ऊपर उठाने की कोशिश कर रही थी ताकि उस धीमी-सी रोशनी को फूंक मारकर बुझा सके। सत्यव्रत को लगा उसके भीतर भी संयम की ज्योति धीमी पड़ गयी है और कोई है जो इसी तरह फूंक मारकर उसे बुझा देना चाहती है। तत्काल वह समझ नहीं सका कि उसे क्या करना चाहिए।

विमला ने चिमनी उठाकर लालटेन बुझा दी थी और तख्त के पास खड़ी होकर उसी की तरफ़ देख रही थी। शायद अँधेरे से अपने-आपको अभ्यस्त करने का प्रयत्न करती हुई अगले कदम के सम्बन्ध में भी विचार कर रही थी। शरत के उपन्यासों का हलका-सा नशा उसकी अन्तश्चेतना पर छाया था और वह अपने-आपको पारो की स्थिति में रखकर सोच रही थी···'अभी देवदास उससे पूछेगा कि तुम क्यों आयी विमला?' और वह उत्तर देगी मैं···मैं···?

सहसा उसे ध्यान आया कि वह खड़ी है और उसका यहाँ ज़्यादा देर रुकना खतरनाक है। आखिर गीतों की आवाज़ आनी खत्म हो गयी है तो बाबूजी इतना तो सोच ही सकते हैं कि विमला अभी तक क्यों नहीं आयी। बोली, "तुम मुझे बैठने के लिए भी नहीं कहोगे?"

सत्यव्रत केवल सफ़ेद वस्त्रों में आवृत्त एक छाया ही देख रहा था। किंकर्तव्यविमूढ़, हतप्रभ और अवाक्-सा! अब उसे लगा कि छाया में स्पन्दन भी है और जीवन भी और उसके प्रति उसे कुछ सामाजिक शिष्टाचार का पालन भी करना है। वह फ़ौरन तख्त पर सिरहाने की ओर खिसकते हुए धीरे से बोला, "हाँ, हाँ बैठो।"

फिर एक पल खामोशी में जीने के बाद उसने संज्ञा प्राप्त की और मन-ही-मन जैसे वाक्यों के सहारे अर्धमृत चेतना को खड़ा करते हुए बोला, "तुम इस समय क्यों आयीं विमला? तुम्हें इस समय नहीं आना चाहिए था।"

"मैं क्यों आयी हूँ?" विमला ने उसी के प्रश्न को दोहराते हुए कहा, जैसे उसने कोई बड़ा अनपेक्षित प्रश्न पूछा हो और वह इसके लिए क़तई

तैयार न हो। फिर एक क्षण रुककर धीरे से बोली—"पानी की छोटी-छोटी धाराएँ, नदियों की ओर क्यों बहती हैं? और क्यों नदियाँ इधर-उधर बहती हुई समुद्र के ही पास जाती हैं? बोलो, इस बात का कोई उत्तर है तुम्हारे पास? यदि है इस बात का कोई उत्तर, तो बस, वही मेरा भी उत्तर है। यदि नहीं, तो समझ लो कि मेरे पास भी कोई उत्तर नहीं—देने के लिए। समझ लो कि मैं भी एक छोटी-सी सरिता हूँ और अपने समुद्र के किनारे आकर ठिठक गयी हूँ। बस यही मेरी गति है यही मेरा मन्तव्य है।"

शुरू में तो सत्यव्रत ने जैसे कुछ नहीं सुना अथवा सुनकर भी समझ नहीं सका, मगर ज्यों-ज्यों विमला बोलती गयी त्यों-त्यों वाक्यों की भावना और सौन्दर्य उसकी समझ में आता गया। साथ ही उसका विवेक भी लौट आया और उसका शिक्षक जागकर उसे सतर्क करने लगा कि सुन्दर मनोरम वाक्यों में निहित हर अर्थ सुखद नहीं होता। और यह उसके अपने हाथ में है कि वह भावना के प्रवाह में बहकर अपने भीतर की ज्योति को बुझा दे या उसे प्रज्ज्वलित रखे।

कोई उत्तर न पाकर विमला ही बोली थी, "अब यह समुद्र की महानता पर निर्भर है कि वह अपने तक आयी नदी का स्वागत किस तरह करे? पर नदी की गति तो समुद्र ही है। चाहे वह दहाने बनाकर चक्कर खाती हुई समुद्र में मिले या सीधी उसी में जा गिरे···"

सत्यव्रत बनियान और घुटन्ना पहने था और अँधेरे में भी उसे रह-रहकर अपनी निर्वसनता की लज्जा का अनुभव हो रहा था। एकाएक विमला के वाक्यों को सुनकर उसे लगा कि ये संवाद उसने विमला के ही दिये हुए किसी उपन्यास में पढ़े हैं। और अचानक उसे लगा कि उसके सामने आया संकट टल गया है और घुटने टेकती हुई नैतिकता उठकर सीधी खड़ी हो गयी है।

विमला की प्रतीकात्मक भाषा को अभिधार्थ देते हुए किंचित क्रोध से तड़फकर उसने कहा, "तुम कहानियों और उपन्यासों की भाषा का सहारा लेकर अपनी जिस शारीरिक वासना को तृप्त करना चाहती हो वह मुझसे सम्भव नहीं। मैं तो रेगिस्तान हूँ···ऐसे संस्कारों का रेगिस्तान, जहाँ

आकर वासना की बडी-से-बड़ी नदी सूख जाती है। मैं तुम्हें निश्चित रूप से बता देना चाहता हूँ कि जो देह सामाजिक निकष पर कसकर नियमों-प्रतिनियमों के अनुरूप मुझे नहीं मिली—मैं उसका उपभोग नहीं कर सकता।"

विमला स्तब्ध रह गयी। ऐसी स्थिति में, जैसे शरतचन्द्र की पारो को देवदास के मकान से निकलते हुए सैकड़ों आदमियों ने देख लिया हो और सब उसके चरित्र पर उँगलियाँ उठा रहे हों।

कहाँ विमला की उसके चरणों में समर्पित हो जाने की छोटी-सी चाह और कहाँ इतना बड़ा चारित्रिक लांछन! उसने तो कभी शारीरिक सन्दर्भों में सोचा भी नहीं। दूसरे सत्यव्रत के व्यक्तित्व से जिस पावन उज्ज्वलता का तेज टपकता है उसको देखकर ऐसी बात सोची भी नहीं जा सकती। उसे तो सिर्फ़ यही लगता रहा है कि वह इन चरणों में बैठकर जीवन बिता दे। फूल की तरह अपनी सारी गन्ध अर्पित करके किसी उपन्यास की नायिका बन जाये और अस्तित्व की सार्थकता का बोध अनुभव करे।

सत्यव्रत की बात से वह तिलमिलाकर रह गयी। अगर वह तख्त पर बैठी न होती तो निश्चय ही डगमगाकर गिर पडती। फिर भी उसने अपने दोनों हाथ तख्त पर टिका लिये।

विमला की खामोशी को सत्यव्रत ने अपने भाषण का प्रभाव समझा। अतः उन्हीं सूत्रों को आगे बढ़ाते हुए बोला, "ये तो चोरी है विमला। ये उसी तरह का अपराध है जैसे बिना श्रम किये अपहृत धन पर भोग-विलास करना। सबके सामने विधिपूर्वक त्याग, सम्मान या पारिश्रमिक किसी भी उपलक्ष्य में दिया गया धन जैसे भोग्या होता है, उसी प्रकार विवाह की वेदी पर पवित्र होकर मिली नारी की स्थिति होती है। मैं इसी कारण इन सम्बन्धों को अनैतिक मानता हूँ कि तुम मुझे पत्नी रूप में प्राप्य नहीं हो।"

विमला चुपचाप तख्त से उठ गयी। सत्यव्रत ने अन्धकार में उसे देखने की और उसकी सिसकियों का अनुमान लगाने की कोशिश की। परन्तु सम्भवतः विमला की आँखें गीली न थीं, न उसका कण्ठ अवरुद्ध। वरना

अब तक आँसुओं का झरना फूट पड़ता और सिसकियाँ वातावरण में सुबकने लगतीं। विमला ने चुपचाप आगे बढ़कर कोने से लालटेन उठायी और दरवाज़ा खोलने को बढ़ी। सत्यव्रत से उसकी यह निष्क्रियता न सही गयी तो विमला की मनःस्थिति का सही अनुमान लगाने के लिए उसने कहा, "तुम मुझे समझने का प्रयत्न करना विमला!"

कोठरी की खामोशी में सत्यव्रत के शब्द तुरन्त घुल गये। साँसों की धड़कनें भी सुनायी दे रही थीं। विमला ने दरवाज़ा खोल लिया था। सत्यव्रत की बात सुनकर गर्दन पीछे घुमायी और बोली, "मैं तुम्हें खूब समझ गयी हूँ। तुम···तुम या तो ढोंगी हो या···या नपुंसक!"

और वह तुरन्त बाहर चली गयी। सत्यव्रत खड़ा का खड़ा रह गया। उसकी सारी कल्पनाओं को जैसे किसी ने उसी के सामने उठाकर एक नंगी स्याह चट्टान पर पटख दिया। अपनी बातों की ऐसी प्रतिक्रिया की उसने कल्पना भी नहीं की थी। कितनी हिकारत, कितनी घृणा और कितनी गहन एवं तीव्र विरक्ति से रुक-रुककर उसने कहा था···"तुम···तुम···या तो" और इस वाक्य को याद करते ही सत्यव्रत उसकी मुख-मुद्रा का काल्पनिक चित्र बनाने लगता है कि उसके गले की नसें उभर आयी होंगी और नथुने फूल उठे होंगे। और मन का सारा उबाल और आवेश इन्हीं शब्दों की अभिव्यक्ति में उतर आया होगा।

सत्यव्रत को देर तक कोठरी में वही वाक्य गूँजता सुनायी देता रहा। उसे लगा जाने विमला ने कितनी ज़ोर से यह वाक्य कहा था और रात के सन्नाटे में इसकी अनुगूँज जाने कहाँ तक पहुँची होगी।

अचानक हॉस्टल के आँगन से उठता हुआ हलका-हलका शोर एकदम हलका हुआ और सत्यव्रत का ध्यान उचटकर नीचे चला गया। बराबर की छत सूनी है। उस पर विमला के आने की अब कोई आशा नहीं। वह नीचे उतरने लगता है। बाँस की सीढ़ी से सावधानीपूर्वक उतरते हुए उसे लगता है कि वह अपनी मंज़िल दूर पीछे छोड़ता जा रहा है।

नीचे, अपने-अपने कमरों में लालटेन जलाये लड़के खुसर-पुसर कर रहे हैं। सत्यव्रत अपनी कोठरी की ओर देखता है। उसमें भी प्रकाश है।

तीन-चार लड़के हैं जो धीरे-धीरे कुछ बोल रहे। आँगन पार करके सत्यव्रत अन्दर घुसता है तो एक क्षण के लिए बातचीत रुक जाती है। तख्त से उठकर जयप्रकाश हाथ पकड़कर सत्यव्रत को बराबर में बिठाता है, "माफ करना मास्टर साहब, मैं एक घण्टा पहले ही आ गया। कमरे पर तबियत ही नहीं लगी। फिर इन लड़कों से कुछ बातें भी करनी थीं।"

"लड़कों से?" सत्यव्रत ने सहज होकर पूछा।

"हाँ।" जयप्रकाश ने उत्तर दिया और लड़कों को डाँट पिलाकर भगाते हुए उसने सत्यव्रत को बताया, "शहर में एक ज्योतिषी आया हुआ है, जो दो रुपये लेकर आपके दिये हुए किसी भी नाम का भविष्य बताता है। ये लड़के आज उसे आठ-दस रुपये पूज आये हैं।"

सत्यव्रत पूर्ण रूप से सँभल चुका था। जयप्रकाश की बात पर उसे हंसी आ गयी, बोला, "आप वहाँ कैसे जा पहुंचे?"

"मैं?" जयप्रकाश ने कहा, "मुझे पंजे पनवाड़ी पकड़कर ले गया था। उसी ने दो रुपये खर्च किये मेरे लिए भी। मैंने भी उससे आपका भविष्य-फल पूछा था!"

"मेरा?"

"हाँ! मैंने सोचा, आपको इस ज्योतिष-वोतिष पर बड़ा विश्वास है।"

"ऐसा तो नहीं है!" सत्यव्रत ने अपनी उत्सुकता को छिपाते हुए कहा, "फिर भी क्या कहा उसने?"

जयप्रकाश ने एक क्षण का विराम लिया और इधर-उधर देखकर पलकें झपकाते हुए बोला, "उसने सरासर बकवास की। बताया कि यह युवक किसी नारी के कारण घोर मानसिक-द्वन्द्व की स्थिति में है।"

"अच्छा!" सत्यव्रत ने चकित होने की असफल चेष्टा करते हुए कहा, "और क्या कहा?"

जयप्रकाश बाहर से थोड़ी कृत्रिम हँसी हँसा, बोला, "और मैंने उसे कुछ कहने ही नहीं दिया। मैंने कहा, क्या बकवास करते हो? जानते हो जिस व्यक्ति के भविष्य के विषय में मैंने पूछा है, वह पूर्ण ब्रह्मचारी है! उसका ऐसी बातों से कोई सम्बन्ध नहीं। और मैं उठकर चला आया।"

सत्यव्रत चुप हो गया। वह सोचने लगा उस दिन विमला के सम्बन्ध में राजेश्वर ने कुछ मज़ाक छेड़ी थी तो उसने गम्भीरता से कहा था, "आप लोग कुछ समझें राजेश्वर भाई किन्तु मैं उसे मात्र शिष्या मानता हूँ।"

"तो आप उसे नारी नहीं मानते?" राजेश्वर ने पूछा था, "आप नारी-पुरुष के सहज आकर्षण को कैसे झुठला सकते हैं? क्या आप कह सकते हैं कि उसके मन में आपके प्रति कोई कोमल भावना नहीं है?"

"उसके मन में होगी?" सत्यव्रत ने असत्य उच्चारण से बचते हुए कहा, "किन्तु मैं शिष्या के नाते उसे आत्मजा मानता हूँ। और वह चाहे कैसी भी भावनाएँ रखे, मेरे विचारों में परिवर्तन नहीं हो सकता। जो आत्मजा है वह कभी भी अर्द्धांगिनी नहीं हो सकती।"

"क्या बात करते हो यार! सैकड़ों शिष्याएँ पत्नियाँ हो गयीं।" राजेश्वर ने हँसकर कहा, "साली का पकड़ो हाथ और भगाकर ले जाओ। दो साल बाद सीधे प्रिंसिपल होगे। इस ढकोसले में क्या धरा है?"

तब जयप्रकाश बोला था, "नहीं ठाकुर, मास्टर साहब ढोंग या ढकोसला नहीं करते। पर हाँ, इतना मैं भी मानता हूँ कि खून के अलावा नारी से पुरुष के और सारे सम्बन्ध बड़े पोले होते हैं! ऐसे सम्बन्धों में नारी को जो लोग समझते हैं कि वह फ्रेंड है, शिष्या है, मित्र की बहन है, या बहन की सहेली है, और निकटता बढ़ाते रहते हैं, वे दरअसल अपनी अतृप्त काम-भावनाओं को तृप्त करते हैं और अपने आपको धोखा देते हैं।"

"वही तो ढोंग हुआ।" राजेश्वर बोला।

"नहीं, वह आत्मवंचना हुई।" जयप्रकाश ने कहा, "ढोंग दूसरों को धोखा देने के लिए किया जाता है और आत्मवंचना में आदमी मिथ्या-मर्यादाओं की आड़ में खुद का दमन करता और खुद को धोखा देता है।"

जयप्रकाश ने सत्यव्रत और विमला के सन्दर्भ में प्रसंगवश ही आत्म-वंचना शब्द का प्रयोग किया था। किन्तु अब ज्योतिषी के वही बात बताने पर जयप्रकाश ज्योतिषी को भला ग़लत क्यों कहता है—यह बात सत्यव्रत की समझ में न आयी। वास्तव में उसे ज्योतिषी के उत्तर पर खुद आस्था हो गयी थी। आखिर वह पूछ ही बैठा, "मगर आपको अविश्वास कैसे

हुआ ? आप तो…।"

बात काटकर जयप्रकाश बोला, "तो क्या सचमुच द्वन्द्व है मन में ?"

एक पल का असमंजस झेलकर कुछ झिझकते हुए सत्यव्रत ने स्वीकृति में गर्दन हिला दी।

"उसी के कारण !" जयप्रकाश ने आश्चर्य-भावना पर नियन्त्रण करते हुए उँगली से बायीं ओर चौधरी साहब के मकान की ओर इशारा करते हुए पूछा।

"हाँ !" सत्यव्रत ने फिर स्वीकृति दी।

जयप्रकाश गम्भीर हो गया और कुछ सोचकर बोला, "अच्छा, इस समस्या पर फिर बातें करेंगे। यह तो भावात्मक समस्या है। अभी जो भौतिक समस्याएँ पड़ी हुई हैं, उन्हें सुलझा लें। पहले ये बताइए कि आज के 'एजेंडे' में क्या-क्या विषय रखे हैं आपने ?"

सत्यव्रत फिर सामान्य हो आया। टीचर्स-एसोसियेशन के जनरल सेक्रेटरी के नाते मीटिंग की सूचना एवं कार्यक्रम-विवरण सत्यव्रत के हस्ताक्षरों से ही अध्यापकों में प्रचारित हुआ था। बोला, "वही वेतन वाले प्रश्न पर चर्चा करनी है। तीन महीने से अधिक होने को आये, सारे अध्यापक ऋण ले-लेकर काम चला रहे हैं। मैं स्वयं छात्रों के व्यय पर भोजन कर रहा हूँ ! इस स्थिति का कब अन्त होगा ? मैं तो समझता हूँ यदि एसोसियेशन स्वीकार करे तो आज ही हमारे कुछ प्रतिनिधि जाकर व्यवस्था-समिति के प्रधान, उपप्रधान एवं मन्त्री महोदय आदि से मिलें और उन्हें स्थिति से अवगत करायें।"

"तो आप भी मैनेजमेण्ट के विरोध पर आ ही गये ?" जयप्रकाश हँसकर बोला।

"नहीं, मैंने तो केवल सत्य और न्याय की बात उठायी है। किसी के विरोध का इसमें प्रश्न कहाँ है ?"

"सत्य और न्याय का प्रश्न उठाना और अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प होने का अर्थ ही ये है कि कहीं विरोध है। कहीं असत्य और अन्याय है। कहीं आपके अधिकारों का हनन हो रहा है !" जयप्रकाश उसी सहज मुस्कान से बोला।

"लेकिन हम मैनेजमेण्ट की निन्दा या भर्त्सना तो नहीं करते।" सत्यव्रत ने कहा।

"क्यों, क्या आप जब अपना अधिकार माँगते हैं तो उससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि आपके अधिकार किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा दबा लिए गये हैं। क्या आप जब सत्य और न्याय माँगते हैं तो उससे यह आशय प्रगट नहीं होता कि आपको अन्याय और असत्य मिला है। और…"

जयप्रकाश अगला वाक्य बोल नहीं पाया था कि दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। गुप्ताजी और रस्तोगी थे। कुछ दूर के फ़ासले पर रामाधीन श्रीवास्तव और शास्त्रीजी भी झूमते हुए चले आ रहे थे। सत्यव्रत ने दरवाज़ा खुला छोड़ दिया। आठ बजने में पाँच मिनट बाकी थे। थोड़ी ही देर में सब लोग जमा हो जायेंगे। उसने पुकारकर, लड़कों से कुछ और खाटें भेज देने को कहा।

सत्यव्रत ने फिर पिछले सूत्र पकड़ते हुए कहा, "वेतन का प्रश्न मेरे अकेले का प्रश्न नहीं है। सबका प्रश्न है। अनेक साथियों ने मुझसे समय-समय पर इस प्रश्न को एसोसियेशन की मीटिंग में रखने के लिए कहा है!"

"मगर मुझे इसमें कहाँ आपत्ति है?" जयप्रकाश ने मासूमियत से मुस्कराकर कहा, "मैं तो उन दिनों की बात कह रहा हूँ जब आप मेरी बातों को मैनेजमेण्ट का अकारण विरोध कहकर मुझे ही ग़लत समझते थे। अब आपको अनुभव तो हुआ!"

गुप्ताजी, रस्तोगी, श्रीवास्तव और शास्त्रीजी चारों ने आराम से बैठकर बहस में दिलचस्पी ली। गुप्ताजी बात समझे बिना ही बोले, "हाँ भई, अब तो 'ऐड' (अनुदान) भी आ गयी है। अब भी तनख्वाह न मिले तो हद है।"

श्रीवास्तव आगे को होते हुए धीरे से बोले, "आपको मालूम है कल प्रिंसिपल ने दयाल, गुरु, हरिप्रसाद और मित्तल चारों को बुलवाया था और उनसे कहा था कि आप एक महीने की तनख्वाह छोड़ दें तो मैं आपको अभी तनख्वाह दिलवा दूंगा। आपकी रिपोर्ट में यह बात लिखी जायेगी

कि आपने कॉलिज को डोनेशन (दान) दिया है। और वे लोग मान गये।"

"मान गये?" जयप्रकाश ने साश्चर्य पूछा।

"अरे जभी तो उन्हें तनख्वाहें दे दी गयीं।" श्रीवास्तद ने कहा।

जयप्रकाश स्तब्ध रह गया। अगर अध्यापक इस तरह के मामलों में स्वयं झुकते चले जायेंगे तो एसोसियेशन की क्या उपयोगिता रहेगी?

शास्त्रीजी बोले, "मैं भी आज सर्वसज्जनों के समक्ष अपनी व्यथा रखूंगा। मैं गत कितने वर्षों से उच्च कक्षाओं के छात्रों को पढ़ा रहा हूँ किन्तु वेतन मुझे सहायक अध्यापक का ही मिल रहा है और जिस वर्ष मैं अपने अधिकार के लिए समिति के सामने प्रश्न उठाता हूँ, उसी वर्ष वे संस्कृत प्राध्यापक का स्थान पत्रों में विज्ञापित करके आवेदन-पत्र आमन्त्रित करते हैं और मुझे अपदस्थ करने का भय दिखाकर चुप करा देते हैं। मेरे साथ घोर अन्याय हो रहा है। ये बात भी आज निर्णीत हो जानी चाहिए।

इस पर श्री वास्तव और रस्तोगी दोनों ही बोल उठे, "विषय को उलझाइए मत शास्त्रीजी। आज सिर्फ़ वेतनवाली बात तय होगी। अगर ऐसे मामलों को उठाया जायेगा तो स्टाफ़ के आधे से ज़्यादा लोग ऐसे निकलेंगे जो सौ रुपये पाते हैं और डेढ़ सौ पर हस्ताक्षर करते हैं।"

शास्त्रीजी के कुछ बोलने के पूर्व ही उत्तमचन्द, पाठक और राजेश्वर आते दिखायी दिये। निम्न कक्षाओं के अध्यापक भी उनके पीछे आ रहे थे। सबके आने और विधिवत् कार्यवाही शुरू होने की प्रतीक्षा में लोग थोड़ी देर के लिए शान्त हो गये।

निर्णय

इलेक्शन के परिणाम घोषित होने तक लोगों के पास उम्मीदवारों के गुण-दोष-विवेचन का दिलचस्प कार्य था। और राजपुर-जैसे छोटे शहर में जहाँ मनोरंजन के साधनों के नाम पर कुछ भी नहीं है, लोग परनिन्दा

श्रौर प्रवादों में ही मज़ा लेते हैं। हालांकि बाबू साहब ने इलेक्शन की सरगर्मियों से अपना हाथ खींच लिया था, फिर भी उनके हितैषी श्रौर लालाजी के आलोचकों को इस चर्चा में परम सुख मिलता था कि जीत अब भी बाबू साहब की होगी। मगर इलेक्शन के परिणाम से चर्चा का विषय बदल गया। बाबू साहब की पराजय को लोगों ने बड़े सहज भाव से स्वीकार किया, जैसे ये ही होना था श्रौर कुछ नहीं। फिर भी कुछ लोगों को यह लगता रहा कि यूं न होकर यूं होता तो अच्छा होता।

कॉलिज की यह अफ़वाह भी कि कुछ मास्टरों को निकाला जा रहा है अब खत्म हो चली थी और उन मास्टरों के नामों की खोज में छात्रों श्रौर अध्यापकों ने कल्पनाश्रों के घोड़े दौड़ाने छोड़ दिये थे। हां, शहर में यह अफ़वाह ज़ोरों पर थी कि मास्टरों ने टीचर्स एसोसियेशन बनाकर एक दूसरी हड़ताल की तैयारी पूरी कर ली है। मगर वस्तुस्थिति कुछ श्रौर ही थी।

जिस दिन नगर-पालिका के इलेक्शन का परिणाम घोषित हुआ, उसी दिन शाम को हिन्दू-कॉलिज की मैनेजिंग-कमेटी की एक विशेष मीटिंग, टीचर्स-एसोसियेशन की मांगों तथा हड़ताल के कारणों से सम्बन्धित प्रिंसिपल की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए, वाइस प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिंह के यहां रखी गयी थी।

लालाजी दोपहर से ही इलेक्शन के परिणाम पर दुखी थे। यद्यपि वे दो सौ वोटों से जीत गये थे पर यह जीत उन्हें हार से कम नहीं चुभ रही थी। यों अनेक लोग उन्हें इलेक्शन की सफलता पर बधाई देने के लिए आ चुके थे श्रौर उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में सभी का स्वागत किया था, किन्तु भीतर-ही-भीतर उलझे हुए वे सोच रहे थे कि ज़रूर उनकी लोकप्रियता बहुत घट गयी है इसीलिए तो बाबू साहब के मुकाबले से हट जाने पर भी वे इतने कम वोटों से जीत पाये।

चौधरी साहब के इशारे पर उन्होंने मुस्कराते हुए बड़े कष्ट से सिर ऊपर उठाया श्रौर बोले, "मेरा सिर कुछ चकरा-सा रया है। इत्तैं आप ही कार्यवाई सुरू कर दो।"

"ऐसा!" चौधरी साहब ने कहा, "अच्छा आप ठहरिए, मैं अभी

आपको एक बहुत अक्सीर दवा लाकर देता हूँ" और वे अन्दर हवेली में चले गये।

खाली बैठे मेम्बर लोग इलेक्शन की चर्चा करने लगे। कौन कितने मार्जिन से जीता? कितने वोट और आ जाते तो कौन जीत जाता; वग़ैरा।

और लालाजी फिर सोचने लगे कि उनके कम वोट पड़ने का कारण निश्चय ही अध्यापकों का असहयोग तथा लड़कों की हड़ताल है; अगर कमेटी में आपसी मतभेद न होते तो अध्यापकों को हड़ताल कराने का साहस नहीं हो सकता था और न उनका इलेक्शन ही बिगड़ता। खैर। अब तो सारे मतभेद लगभग समाप्त ही हो गये। बाबू साहब ने मेम्बरशिप से इस्तीफ़ा दे दिया है। छदम्मीलाल और बालिस्टर तो फिर उनमें आ ही मिले हैं। गुलज़ारीमल भी रास्ते पर आ जायेगा। बालिस्टर ने अपने लड़के ईन्दल को बिजनौर से बुलाकर फिर हिन्दू कॉलिज में दाखिल करा दिया है। उन्होंने ही उसे समझाया था, "देखो इस साल से यहाँ सैण्टर हो रया है, लौण्डे कू यहीं बुला लो। न हुवा तो जिस कमरे में उसकी सीट लगैगी, उसमें किसी भले से मास्टर कू इनविजलेटर लगवा देवेंगे!"

अचानक बालिस्टर की आवाज़ ज़ोर से गूंजी। वह अपने जिगरी दोस्त छदम्मीलाल से कह रहा था, "अबे जा, पहले चचा होने लायक भसरा तो गड़वा ला।"

लालाजी का ध्यान उचट गया, "क्या बिसय चल रया है?" लोगों की हँसी पर आँखों में बालकोचित विस्मय और होंठों पर निर्व्याज-सी मुस्कराहट बिखेरकर उन्होंने पूछा।

छदम्मीलाल ने साफ़ बता दिया, बोले, "क्या कहदे करें लालाजी, मैं इससे कै रया था कि बे तेरा चचा भी सुसरा कच्चा खिलाड़ी निकला जो जीत्ता-जिताया इलक्शन हार गया। लोग तो इलक्शनों के पीच्छे घर बरबाद कर देवें! उससे क्या कहदे करें एक तेरे लौण्डे की पढ़ाई भी न सिभली। मैंने कया, मैं या लालाजी तेरे चचा होत्ते तो इलक्शन तक तो तेरे एक ईन्दल की पढ़ाई के खर्चे की क्या बात, सारे घर के खर्चे का भी

जिम्मा ले लेत्ते। बाद में जो होत्ता देख्खा जात्ता।"

सारे मेम्बर एकबारगी हंस दिये। मजबूरन लालाजी भी वही सरल-सी हंसी अधरों पर लाते हुए बोले, "ठीक कह रये हो भय्या छदम्मीलाल इस वखत ! सच्ची पूच्छो तो ये मेरी जीत नईं बल्के बालिस्टर साब की ही जीत है।"

लालाजी के साथ सभी ने महसूस किया कि अगर बालिस्टर की धमकियों से हतोत्साह न होकर बाबू साहब मैदान में जमे रहते तो बहुत बड़े बहुमत से उनकी जीत निश्चित थी।

तभी चौधरी साहब दवा की पुड़िया लेकर लौटे और लालाजी के हाथ में थमाते हुए बोले, "इसे खा लीजिए, बस, अभी चक्कर बन्द हो जायेंगे। बड़ी अक्सीर चीज़ है।"

"लाओ, होम्योपैथिक दवाई है, मीट्ठी तो होवैगी, खाय लूं हूं। वैसे अब तबीयत ठीक है।"

मेम्बर लोग थोड़ी देर के लिए इलेक्शन की दुनिया से मीटिंग में लौट आये। एक पल में सबके दिमाग से यह बात उतर गयी कि लालाजी को बालिस्टर और बाबू साहब के झगड़े से फ़ायदा हुआ है और अगर बाबू साहब, बालिस्टर के लड़के ईन्दल की, बिजनौर की पढ़ाई का खर्च बरदाश्त करने से साफ़-साफ़ मना न कर देते तो पूरा नक्शा कुछ और ही होता। कम-से-कम बाबू साहब को यह तो महसूस न होता कि वे अकेले हो गये हैं और कॉलिज और अध्यापकों की जो सहायता उन्हें मिली है वह बालिस्टर और छदम्मीलाल की वजह से मिली है और वह अब खत्म हो जायेगी। उनका प्रचार-पक्ष पंगु हो जायेगा।

एक क्षण रुककर पुड़िया की फंकी लगाते हुए लालाजी ने कहा, "हाँ तो प्रिंसिपल साब, अब आप संक्छेप में अपनी रिपोर्ट सब मिम्बरों के सामने धर दो।"

मेम्बरों की उत्सुक निगाहें तुरन्त लालाजी के दायीं ओर बैठे प्रिंसिपल पर टिक गयीं। प्रिंसिपल आदेश पाकर कुर्सी से खड़ा हो गया, बोला, "ऑनरेबुल मेम्बर्स, जैसा आप लोगों को मालूम होगा, प्रेसीडेण्ट साहब के ऑर्डर पर मैंने हड़ताल के कारणों की कई दिनों तक जांच की है। इसमें

मुझे कई अध्यापकों, लड़कों और बाहर के लोगों से भी बातचीत करने का मौक़ा मिला और इस सबके बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि हड़ताल की पूरी ज़िम्मेदारी मास्टर राजेश्वर ठाकुर, मास्टर जयप्रकाश, सत्यव्रत और मास्टर उत्तमचन्द पर आती है। इन्हीं चारों अध्यापकों ने लड़कों को भड़काकर हड़ताल की सलाह दी और जब मैंने इनक्वायरी (जाँच) के लिए बुलाया तो उल्टे मुझ पर ही इल्ज़ाम लगाकर बिना ठीक से कुछ बातें किये लौट गये। इन्हीं लोगों ने टीचर्स-एसोसियेशन बनाकर अब टीचर्स के स्ट्राइक (हड़ताल) की योजना बनायी है जिसमें ये अपनी पे (वेतन) के मामले को इश्यू (मसला) बनाना चाहते हैं। अब कमेटी जो एक्शन तजवीज़ करे।"

यथासम्भव संक्षेप में अपनी बात समाप्त करके प्रिंसिपल प्रश्नवाचक मुद्रा में चारों ओर देखता हुआ कुर्सी पर बैठ गया।

एक मेम्बर ने पूछा, "क्या मास्टरों के अलावा इसमें लड़कों का हाथ नहीं था ?"

प्रिंसिपल फिर उत्तर देने के लिए खड़ा हुआ, बोला, "जी, लड़कों का तो सारा ही हाथ था। वे न करते तो हड़ताल ही न होती। मगर मेरा तो मक़सद अपनी रिपोर्ट में यह बताना था कि उन्होंने आख़िर किसके उकसाने पर हड़ताल की !"

लालाओं ने मेम्बर की जिज्ञासा का और समाधान करते हुए कहा, "वास्तव में हम ये चाहवें हैं कि हानी विद्यार्थियों की नईं होनी चाहिए। उनका क्या, वे तो कच्ची मिट्टी की तरयो हैं, जिवे कू ढाल्लोगे उंघे कू ढल जावेंगे। पर अपना भी तो कुछ कर्त्तव्य बनै है।"

मेम्बर महोदय शान्त हो गये। तब लालाजी ने आगे कहा, "इस विसय में जो लोग पूरी रिपोर्ट पढ़ना चाह्वें वे चौधरी साहब से लेक्कै पढ़ सकै हैं। प्रिंसिपल साब ने केवल उत्ती ही बात बतायी, जित्ती जरूरी थी।"

इस पर जब कोई मेम्बर कुछ न बोला तो लालाजी ने वाइस प्रेसीडेण्ट को टीचर्स-एसोसियेशन के सैक्रेटरी की ओर से आया हुआ पत्र पढ़कर सुनाने का आदेश दिया।

चोधरी नत्थूसिह अपना चश्मा सँभालते हुए उठ खड़े हुए और एक लम्बे लिफ़ाफ़े में से तीन पृष्ठों का बड़ा-सा पत्र निकालकर अटक-अटककर पढ़ने लगे। उन्हें हिन्दी की अपेक्षा उर्दू पढ़ने में अधिक सुविधा होती थी।

'एसोसियेशन ने दो प्रस्ताव पारित किये थे—एक तो यह कि समस्त अध्यापकों का वेतन उन्हें अविलम्ब दिलाया जाये और जिन अध्यापकों का एक मास का वेतन काट लिया गया है, वह, उन्हें अगले मास के वेतन के साथ दिया जाये। दूसरा यह कि प्रिंसिपल को तुरत ससपैण्ड करके उसके आचरण की जाँच की जाये। प्रिंसिपल के अभद्र व्यवहार पर खेद प्रगट करते हुए प्रस्ताव में कहा गया था कि वह अध्यापकों को समुचित सम्मान नहीं देता। उन्हें चपरासियों और छात्रों तक की उपस्थित में डाँटकर अपमानित करता है। अन्त में एसोसियेशन ने हड़ताल के कारणों की जाँच का विरोध करते हुए उसे अपमानजनक कहा था। उनके मत स जाँच छात्रों में होनी चाहिए थी न कि अध्यापकों में।

पहले, अर्थात् वेतनवाले प्रस्ताव का प्रस्तावक था सत्यव्रत और अनुमोदक कोई न था। दूसरे अर्थात् प्रिंसिपल वाले प्रस्ताव को राजेश्वर ठाकुर ने प्रस्तुत किया था और समर्थक एवं अनुमोदकों में जयप्रकाश तथा उत्तमचन्द के नाम थे। पहले प्रस्ताव पर सारे अध्यापकों के हस्ताक्षर थे और दूसरे पर भी सत्यव्रत को छोड़कर सभी के हस्ताक्षर थे। किन्तु उक्त पत्र को पढ़नेवाले वाइस प्रेसीडेण्ट चौधरी नत्थूसिह ने या उपस्थित अन्य सदस्यों में से किसी ने भी, इस सूक्ष्म भेद को लक्षित नहीं किया।

वास्तव में, राजेश्वर वाले प्रस्ताव पर सत्यव्रत ने जान-बूझकर हस्ताक्षर नहीं किये थे। उसकी दृष्टि में राजेश्वर, जयप्रकाश और उत्तमचन्द का वक्तव्य ग़लत था। प्रिंसिपल के सम्बन्ध में सत्य केवल इतना था कि उसने इन्क्वायरी के लिए उन तीनों के साथ उस दिन सत्यव्रत को भी बुलवाया था—और गुस्से में उफनते हुए केवल इतना ही कहा था, "आप लोग समझते हैं कि पैनल की वजह से मैं कुछ बोला नहीं, तो डर गया। मैं आपकी घौंस में आ गया। आप समझ लीजिए कि यह बात छिपी नहीं रह सकती कि हड़ताल के पीछे किसका हाथ था। और मैं उस

टीचर को एक मिनट यहाँ नहीं रहने दूँगा जिसने यह सब कराया है।"

"आप हमसे यह सब क्यों कह रहे हैं ?" राजेश्वर ने बड़ी कड़ाई से उतर दिया था, 'क्या आपका मतलब है कि हड़ताल हमने कराई है ? आपको सोचना चाहिए कि चपरासी और बाहर खड़े हुए लड़कों के बावजूद जिस तरह चिल्लाकर आप हमें गालियाँ दे रहे हैं उससे हमारी नहीं आपकी भी इज़्ज़त उछल रही है।" और इतना कहकर राजेश्वर कुर्सी से उठकर चला आया था। उसके तुरन्त बाद उत्तमचन्द फिर जयप्रकाश और अन्त में सत्यव्रत को आना पड़ा था।

सत्यव्रत सोच नहीं पाया कि प्रिंसिपल की क्या ग़लती थी, और उसने गाली कब दी ? फिर भी सेक्रेटरी होने के नाते उसने दोनों प्रस्तावों को यथावत साफ़-साफ़ अक्षरों में उतारा और एसोसियेशन के निर्णय के अनुसार कार्बन की तीन प्रतियाँ कराकर रजिस्टर्ड डाक से एक प्रति जिला-विद्यालय-निरीक्षक को, एक प्रिंसिपल को और एक व्यवस्था-समिति को भिजवा दी थी।

चौधरी साहब जब तक पत्र पढ़ते रहे मेम्बर लोग बड़ी उत्सुकता से साँस रोके उसे सुनते रहे। और जब पत्र समाप्त हो गया तो सब अपने-अपने गिरेबान झाँकने लगे। ऐसी स्थिति थी जैसे आम चुराकर भागे हुए लड़कों को माली ने पकड़ लिया हो और पूछ रहा हो, बोलो तुमने आम क्यों चुराये, और उनसे कोई उत्तर देते न बन रहा हो।

लालाजी ने ही वातावरण की निर्जीवता भंग की। बोले, "इसके बिसय में किसी मिम्बर के मन में कोई संका हो तो कहै ?"

पर शायद—मेम्बरों को इसमें सोचने लायक़ बात नहीं दिखी थी। फिर भी कुछ लोग सोचने की कोशिश कर रहे थे कि क्या कहें ?

लालाजी बोले, "बेसक इस समस्या पै सबकू गम्भीरता से विचार करना चाहिए। यह एक अनुसासन की समस्या है, और इसपै हो सकै है कि हमै कुछ मास्टरों कू निकालना भी पड़ जावै।"

शायद गनेशीलाल के अधरों में कम्पन हुआ जिसे भाँपकर लालाजी ने कहा, "हाँ भय्या गनेसीलाल, तुम अपने बिचार रक्खो ना।"

गनेशीलाल ने मूढ़ा कुछ आगे को सरका लिया और जैसे किसी नींबू

का रस निचोड़ रहे हों—वैसा उपक्रम करते हुए उन्होंने बड़े परिश्रम से अपने चिन्तन का निचोड़ एक वाक्य में प्रस्तुत कर दिया—बोले, "मेरे खियाल में तो इन चारों मास्टरों कू फौरन डिसमिस कर देना चाहिए।"

मनेशीलाल ने अपनी समझ से बड़ी सादी बात कही थी। अध्यापकों का इतना बड़ा दुस्साहस कि वे एसोसियेशन बनाकर अपनी माँगों का प्रदर्शन करें और स्कूल को बालावाली की काँच की फैक्ट्री बनाना चाहें, जहाँ आये दिन मज़दूरों की हड़ताल होती रहती है—कोई मामूली अपराध न था। पर जाने क्यों शान्त बैठे हुए सभी सदस्य दहल-से गये। जैसे अचानक तूफ़ान आ गया हो। मेम्बरों में हलचल होने लगी। कई मेम्बर अपनी-अपनी कुर्सियों में हिल गये तो कुछ खड़े होकर सीधे विरोध प्रगट करने लगे, "ऐसा होने से संस्था की बेहद बदनामी होगी", एक ने कहा, दूसरा बोला, "इन चारों में से कई मास्टर कॉलिज के सबसे योग्य मास्टर हैं। इतनी-सी बात के लिए इतनी बडी सजा देना अनुचित है"; आदि-आदि !

स्पष्ट रूप से विषय एसोसियेशन की माँगों से हटकर इस बात पर केन्द्रित हो गया था कि अध्यापकों के विरुद्ध क्या कार्यवाही की जाये ? और इसी को लेकर सदस्य आवेश में आ गये थे।

लालाजी ने वातावरण का रुख परखकर सबसे शान्त रहने की प्रार्थना की और अभय दान की मुद्रा में दोनों हथेलियाँ फैलाकर कोलाहल को मद्धिम करते-हुए बोले, "मैंन्ने मान्ना कि यह बहोत बड़ी सजा है। पर भय्यो ये भी तो बिचारने की बात है कि अपराध भी छोट्टा नई है। फिर गनेसीलाल ने तो अपना मत व्यक्त करा है, आप भी अपना-अपना मत व्यक्त करो। होवैगा तो वोई जो सब पंचों की राय होवैगी।"

इस वक्तव्य से मेम्बरों को आश्वासन मिला और फिर सब एक-एक करके अपनी राय देने लगे। किसी ने मास्टरों पर जुर्माने की सज़ा तज़वीज़ की तो किसी ने उनकी पिछले तीन महीनों की तनख्वाहें ज़ब्त कर लेने का सुझाव दिया। परन्तु अधिकांश सदस्य इस पक्ष में थे कि अनुशासन सुधारने के लिए कुछ मास्टरों को डिसमिस करना ज़रूरी है। और डिसमिल के प्रश्न पर ही बहुत देर तक सारे सदस्य उलझे रहे। यह

मानते हुए भी कि कुछ मास्टरों का डिसमिसल होना चाहिए—यह तय नहीं हो पा रहा था कि इन कुछ में आख़िर किन मास्टरों को लिया जाये। राजेश्वर का नाम आया तो स्वयं लालाजी और बाद में गनेशीलाल ने भी इसका विरोध किया। जयप्रकाश का नम्बर आनेवाला था परन्तु बालिस्टर जयप्रकाश को अपना आदमी समझते थे। सोचते थे आखिर किसके लिए जयप्रकाश ने बाबू साहब को इतना सपोर्ट किया? किसके लिए लालाजी से विरोध मोल लिया और रात-रात भर बैठक में इलेक्शन के नक़्शे तैयार करता रहा? उनके और छदम्मीलाल के लिहाज के ही कारण न? फिर! फिर उसकी और उसके साथियों के हितों की रक्षा की ज़िम्मेदारी किसकी हुई?

इसलिए जब उत्तमचन्द और जयप्रकाश के नाम पर विचार शुरू हुआ तो छदम्मीलाल और बालिस्टर एक साथ विरोध में खड़े हो गये। बाद में चौधरी साहब ने भी दोनों का पक्ष लेते हुए उन्हें कॉलिज के लिये उपयोगी बताया। बच रहा सत्यव्रत। उसके नाम पर अलबत्ता कोई न बोला। सब ऐसे मौन हो गये जैसे वे इस नाम से परिचित ही न हों।

जैसे कभी-कभी ऐसा होता है कि हम किसी काम को करना चाहते हैं मगर हमारे अन्तर्मन में उसके लिए उत्साह नहीं होता और हम सक्रिय नहीं हो पाते। कभी हम यह चाहते हैं कि कोई दूसरा इस काम को शुरू करे तो हम भी जुट जायें और कभी ऐसी मनःस्थिति भी होती है कि काम है तो कोई-न-कोई करेगा ही? लालाजी के बोलने से पूर्व लोगों की मनःस्थिति कुछ-कुछ ऐसी ही थी।

सहसा गनेशीलाल ने लालाजी की बात सुनकर पहलू बदला और इधर-उधर देखने लगे। चौधरी साहब ने अपने बन्द गले के कोट का ऊपरी बटन खोलकर सिर से गोल टोपी उतारी और लालाजी तथा गनेशीलाल को अपनी ही ओर देखते हुए पाकर धोती से चश्मा पोंछते हुए उठे बोले, "अब निर्णय क्या करना है? हकीकत अपने-आप उभरकर सामने आ गयी है। मेरी तो राय है कि सत्यव्रत को फ़ौरन डिस-मिस कर देना चाहिए। ऐसे बदचलन और बदकार मास्टर को रखकर हमें अपना कॉलिज बदनाम नहीं करना।" इतना कहते-कहते चौधरी

साहब के चेहरे पर विरक्ति और घृणा के भाव उभर आये, जिन्हें उपस्थित सदस्यों में से अधिकांश लोग विस्मय से देखने लगे।

आखिर सेक्रेटरी गनेशीलाल को चौधरी साहब की बात का समर्थन करने के लिए उठना पड़ा। सत्यव्रत के चरित्र की आलोचना और उसे हड़ताल एवं लड़कों में अनुशासनहीनता का दोषी ठहराने के लिए उन्होंने भी चार-पांच वाक्य कहे।

मेम्बरों की सत्यव्रत में कोई दिलचस्पी न थी। न वह कभी उनके पास गया था और न राह-रास्ते में मिलने पर उसने कभी दुआ-सलाम ही की थी। फिर उन्हें लिहाज़ किस बात का होता। मगर जाने क्यों आश्चर्य सबको हो रहा था।

मेम्बरों की मुखमुद्रा में कोई परिवर्तन न होते देख लालाजी को ही ख्याल आया। वे प्रिंसिपल की ओर देखकर बोले, "अरे कुछ आप भी तो बोल्लो प्रिंसिपल साब! आपने उसके काम-काज कू देख्खा-भाल्ला है। आपका उससैं वास्ता पड़ा है। पता तो चलै कि आपकी राय क्या कहवै?"

अनायास कमेटी की निगाहें प्रिंसिपल की ओर जा लगीं। कमेटी के सारे सदस्यों की मौन स्वीकृति और सेक्रेटरी एवं वाइस प्रेसीडेण्ट की राय के बाद प्रिंसिपल के लिए कुछ कहने की गुंजाइश नहीं बची थी। फ़िर भी अपने अस्तित्व एवं सत्ता की स्वतन्त्रता के लिए उसे कहना पड़ा, "मैंने तो साहब पिछली मीटिंग में भी उसे निकालने का सुझाव दिया था और अब भी कह रहा हूँ कि उसी ने हड़ताल करायी, उसी ने लड़कों को भड़काकर होटल पर खाना खाने से रोका और उसी के कारण इन्सपेक्शन पैनल की इतनी ग्रैण्ड रिपोर्ट बिगड़ गयी। ऐसे आदमी को अगर निकाला जाये तो कॉलिज का नुकसान कुछ नहीं होगा, फ़ायदा ही होगा।"

लालाजी ने इन्सपेक्शन-पैनलवाली बात अपने कहने के लिए रख छोड़ी थी। प्रिंसिपल तथा अन्य लोगों से उन्हें सत्यव्रत के चारित्रिक एवं दूसरे दोषों की ही आलोचना अपेक्षित थी। वे प्रिंसिपल से सत्यव्रत के सम्बन्ध में विस्तार से बातें कर चुके थे और एक तरह से उसकी इस बात

पर सहमत थे कि हड़ताल में सत्यव्रत का हाथ नहीं था, किन्तु मोहसिन नामक छात्र को लेकर उड़ी हुई अफवाहें, चौधरी नत्थूसिंह की उसके चालचलन के सम्बन्ध में रिपोर्ट, लड़कों को स्वयं खाना बनाने के लिए उकसाकर, गनेशीलाल के होटल को बन्द कराना एवं अध्यापन में शिथिलता आदि ऐसे अनेक गुरु अपराध थे, जिन्हें प्रिंसिपल कमेटी के सामने रख सकता था।

आखिर ये सारी बातें लालाजी को ही अपने समापन-भाषण में कमेटी के मेम्बरों के सामने रखनी पड़ीं और विषय का उपसंहार करते हुए बोले, "इन सब बात्तों के होने पै भी, यदि वो अच्छा सिच्छक होत्ता, तो मैं उसे निकालने की बात पे राज्जी न होत्ता। मरग जैसा कि अभी प्रिंसिपल साब ने बताया पैनल-रिपोट में उसके सिच्छण को दोसपूर्ण बताया गया है। और सच्ची पूच्छो तो उसी की वजह से दूसरों की दृस्टी में हमारी संस्था की नाक नीच्ची हुई। फिर जो न अच्छा मनुष्य है, न अच्छा सिच्छक—ऐसे आदमी कू रखकै हम क्या करेंगे? इसलियो पंचों की राय सिर माथे।"

कमरे के भीतर साँझ का डूबता प्रकाश दम तोड़ने लगा था और रोशनी की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। लोग जल्दी से उठ जाना चाहते थे जैसे अन्धकार में सबका दम घुट रहा हो। अत: लालाजी की बात का सबने समर्थन किया, किन्तु एक मेम्बर ने साथ ही यह प्रश्न भी उठाया कि हड़ताल से सम्बन्धित और अध्यापकों को भी कुछ-न-कुछ सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए।

"ठीक है।" लालाजी ने कहा, "इस बात कू हम प्रिंसिपल के ऊप्पर छोड़े देवें कि वो सबकू कुछ-न-कुछ सजा देवैं। आखिर वो संस्था के परधान हैं उन्हें भी तो कुछ अधिकार होने चहिएँ।"

और इसी के साथ मीटिंग खत्म हो गयी। अब लालाजी का दिमाग़ हलका था, इतना हलका जैसे वे दो सौ नहीं, दस हज़ार वोटों से जीते हों।

चलते-चलते गनेशीलाल भी चौधरी नत्थूसिंह का हाथ पकड़े हुए कह रहे थे, "चौधरी साहब, जो आपकी इज्जत का दुश्मन है वो मेरी का भी हो सकै है। मुससे तो जब लालाजी ने बताया मैंन्ने उसी बखत तै कर

लिया था कि ऐसे आदमी कू कॉलिज में एक मिण्ट नईं रहने देना चहिए।"

अश्नाहत ज़िन्दगी

जयप्रकाश को जब यह खबर मिली कि मास्टर सत्यव्रत कॉलिज से निकाल दिये गये हैं तो सातवाँ घण्टा शुरू हो चुका था। वह ऊपरी मंज़िल में आठवीं कक्षा के 'बी' सैक्शन के लड़कों को, अंग्रेजी-व्याकरण पढ़ा रहा था। अतः लड़कों को कुछ काम देकर वह फ़ौरन क्लास-रूम से बाहर निकल आया और उसने बराबर के कमरे से, ग्यारहवीं कक्षा पढ़ाते हुए उत्तमचन्द को बाहर बुला लिया।

रात उसने एक भयंकर स्वप्न देखा था, जिसमें पहले तो नंगी तलवारें लिये हुए कई आदमी उसके सामने से गुज़रे थे और फिर किसी ने उसे सघन कुहासे-भरे वातावरण से उठाकर तपती हुई धूप में एक चौराहे पर लाकर गाड़ दिया था। उसे लगा था कि वह गले तक सख़्त ज़मीन में दफ़न है और उसके चारों ओर लाला हरीचन्द के भट्टे की अव्वल ईंटें लगाकर मज़बूत प्लास्टर कर दिया गया है। उसके हाथ कीलें ठुकवाने वाली ईसामसीह की मुद्रा में ऊपर उठे हैं और वह चिल्ला-चिल्लाकर उधर बढ़ते आनेवाले लोगों से कह रहा है—सावधान! इधर मत आना, ये जल्लाद मेरी तरह तुम्हें भी ज़मीन में दफ़ना देंगे। मगर कुछ भोले-भोले चेहरे उधर बढ़ते ही आते थे। शायद वह भीतर-ही-भीतर चिल्लाने की अनुभूति प्राप्त कर रहा था क्योंकि उसके कण्ठ से निकली आवाज़ें उन बिल्कुल पास आ जानेवाले भोले आदमियों तक नहीं पहुँच पा रही थीं। तभी नंगी तलवारें लिये दो आदमी आये और नवागन्तुकों में से सबसे भोले आदमी को पकड़ ले गये। और तब उसे महसूस हुआ कि वह आगन्तुक सत्यव्रत है। तभी अचानक उसके मुँह से चीख निकल गयी थी और सपना टूट गया था।

जयप्रकाश ने सपने की घटना सुनाकर उत्तमचन्द से सत्यव्रत के विषय में पूछा तो उत्तमचन्द ने अपनी असमर्थता जतायी। विवशता के ऐसे

मौकों पर उत्तमचन्द होंठ बिचकाकर कन्धे हिला देते हैं। बोले, "पवन ने बताया था, कि कल कमेटी की कोई मीटिंग हुई थी, पर यह नहीं मालूम हो सका कि उसमें क्या तय हुआ ? वैसे सत्यव्रत के बारे में उड़ती हुई खबर मैंने भी अभी-अभी सुनी है !"

"किससे ?"

"ऐसे ही किसी लड़के-वड़के से !"

"हूँ !" जयप्रकाश ने असन्तोष की एक लम्बी साँस छोड़ी और उसका हाथ अनायास अपनी वास्कट की जेब में चला गया। एक कागज़ जेब में धीरे-से खड़खड़ा उठा ! उसके चेहरे पर डूबती हुई मुस्कान आँखों में झलक आयी। कागज़ बाहर निकालते हुए बोला, "कहीं कोई वारनिंग (चेतावनी) वगैरा तो नहीं मिली ?"

"हां सकता है ?" उत्तमचन्द भी उत्साहित होकर बोले।

राजेश्वर और जयप्रकाश की तरह उन्हें भी इण्टरवल के बाद प्रिंसिपल की ओर से एक चेतावनी-पत्र मिला था, उसमें लड़कों को हड़ताल के लिए उकसाने का दोषी ठहराते हुए उनसे स्पष्टीकरण माँगा गया था, "यदि आपने अपने इस कार्य का तीन दिन के अन्दर-अन्दर कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया तो आपके विरुद्ध कठोर अनुशासनात्मक कार्य-वाही की जायेगी।"

जयप्रकाश को लगा शायद ऐसी ही कोई चेतावनी सत्यव्रत को मिली होगी और लड़कों ने उसी को लेकर तिल का ताड़ बना दिया है।

पता नहीं लड़कों तक ये खबर कैसी पहुँची थी। पर हर लड़का दूसरे मिलनेवाले लड़के से यही कहता आता था, "सुना तुमने, मास्टर सत्यव्रतजी निकाल दिये गये और वे कल से कॉलिज नहीं आयेंगे।" इस वाक्य में सूचना से कहीं अधिक विस्मय था और कहनेवाला लड़का यह वाक्य खत्म करने के बाद तब तक स्तब्ध रहता था जब तक दूसरा भी उसी भाव-प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति न दे देता।

...अफ़वाह थी कि दूसरा इण्टरवल खत्म होने के बाद छठे घण्टे में प्रिंसिपल ने मास्टर सत्यव्रत को अपने कमरे में बुलाकर उनके विरुद्ध

लगाये गये आरोप उन्हें सुनाये थे। उनमें शायद मोहसिन को लेकर ऐसे चारित्रिक आरोप भी लगाये गये थे कि सत्यव्रत जी सहन नहीं कर सके और स्पष्टीकरण की बजाय सीधे त्याग-पत्र देकर चले आये।

…कुछ लड़कों का ये भी कहना था कि सत्यव्रतजी को एक महीने का नोटिस मिला था। किन्तु उन्होंने स्वयं ही त्याग-पत्र देना पसन्द किया।

किन्तु इन अफ़वाहों पर पूरा विश्वास किसी के मन में न था।

छठे पीरियड की समाप्ति पर लड़कों ने पवन बाबू को गूंगे की दुकान पर घेरकर उनसे इस सम्बन्ध में इतने प्रश्न किये कि वे बिना चाय पिये ही दफ़्तर में लौट आये।

गूंगा, लड़कों की उत्तेजना और आकुलता से किसी नयी हड़ताल की कल्पना कर रहा था। परन्तु जब लड़कों ने इशारों से उसे सत्यव्रत के निकाले जाने की बात बतायी तो वह अचानक दुकान से कूदकर नीचे आ गया और उन दोनों लड़कों के कन्धे पकड़कर ज़ोर से हिला-हिलाकर पूछने लगा कि वह झूठ तो नहीं बोल रहे हैं।

जयप्रकाश की तबियत उचट गयी। वह कक्षा में लौट आया मगर उसकी पढ़ाने की इच्छा नहीं हुई। विद्यार्थियों को वाक्यों में प्रयोग के लिये कुछ शब्द देकर वह सोचने लगा कि इसमें कितनी सचाई है। ऐसी ही बेपर की बात उस दिन पवन सुना गया था कि चार मास्टर निकाले जा रहे हैं। वह तो उसे बाद में मालूम हुआ कि प्रिंसिपल ने अपनी रिपोर्ट में हड़ताल की ज़िम्मेदारी तय करते हुए चार मास्टरों को निकालने का सुझाव दिया था। मगर प्रिंसिपल के सारे सुझाव माने थोड़े ही जाते हैं। जयप्रकाश ने लाख अपने-आपको समझाया किन्तु फिर भी उसका मन नहीं माना। कॉलिज बिल्डिंग में व्याप्त एक अपरिचित-सी कानाफूसी और भय की लहरें उसके मन में संशय को कुरेद रही थीं। बार-बार उसकी दृष्टि अनायास विह्वल-सी इधर-उधर घूमती और कुर्सी के सामने पड़ी मेज़ पर रखी दो विवश बँधी मुट्ठियों पर आ टिकती थी। अपने ही शरीर के अंगों से उसे ऐसा पार्थक्य अनुभव हो रहा था जैसे ये उसकी

मुट्ठियां न होकर किसी और की हैं जो ज़ख्मी हैं और जिनसे खून रिस रहा है।

जयप्रकाश ने घण्टा खत्म होने से दस मिनट पहले ही क्लास छोड़ दी : लड़कों को शान्तिपूर्वक बिना शोर किये बाहर जाने का आदेश देकर खुद भी सीढ़ियों से उतरता हुआ वह चुपचाप नीचे आ गया और साइन्स लेबोरेटरी के सामनेवाले बरामदे में, थमले से लगकर खड़ा हो गया।

सत्यव्रत का अन्तिम पीरियड सामनेवाली आठवीं कक्षा में गणित का होता था, जिसे जयप्रकाश 'ज़हमत' कहा करता था। "सत्यव्रतजी और गणित और वह भी सातवें घण्टे में" खूब मज़ाक चलती थी। राज़ रात में, सत्यव्रत आठवीं कक्षा को गणित पढ़ाने के लिए, खुद गणित का अभ्यास किया करता था।

जयप्रकाश ने देखा सारी कक्षा शान्त है। सत्यव्रत निर्विकार भाव से प्रश्नों पर प्रश्न समझता जा रहा है।

उसकी कक्षा के बराबरवाले कमरों से अध्यापकों की आवाज़ें आ रही हैं और कमरों की गूंज छोटे-छोटे बच्चों की तरह बरामदों में घूम रही है। मगर सत्यव्रत अपनी कक्षा के लड़कों की तरफ़ देखता है या ब्लैक-बोर्ड की तरफ़। जयप्रकाश को अनायास राहत मिली और चिन्ता का एक बड़ा-सा बोझ उसके ऊपर से धीरे-धीरे खिसकने लगा। तभी अचानक एक लड़का खड़ा हुआ और हाथ उठाकर बोला, "मास्टर साहब, सुना है आप जा रहे हैं?"

सत्यव्रत का हाथ, ब्लैक-बोर्ड पर कुछ लिखता-लिखता ठहर गया और हाथ की चाक को इतना तेज़ झटका लगा कि वह आधी टूट-कर नीचे गिर गयी। कमरे में निस्तब्धता छा गयी थी और चाक का गिरना भी ऐसा ध्वनित हुआ मानो छत पर लटके हुए कई झाड़-फानूस अचानक टूटकर फ़र्श पर गिर पड़े हों।

सत्यव्रत ने धीरे से गर्दन घुमाई और प्रश्न पूछनेवाले लड़के की ओर देखकर कहा, "हां!"

इस उत्तर पर लड़कों की क्या प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने क्या-क्या कहा, यह जयप्रकाश नहीं सुन सका। पर उसके दिमाग़ की नसें जैसे

एक साथ झनझना उठीं और खौलते हुए पानी की भाप जैसा अपना ही ताप उसे असह्य हो उठा। एक पल पहले का उतरा हुआ बोझ जैसे हज़ार गुना होकर फिर उसकी आत्मा पर आ पड़ा और उसी की थकान और विवशता ने उसकी सारी संज्ञाओं को एक मिनट के लिए सोख-सा लिया। भावना-शून्य-सा वह कितने मिनट या कितने सेकेण्ड इस स्थिति में रहा, उसे मालूम नहीं, पर जब उसने घड़ी देखी तो पीरियड खत्म होने में दो मिनट शेष थे। सत्यव्रत फिर उसी शान्त मुद्रा में ब्लैक-बोर्ड पर प्रश्न समझाने लगा था।

जयप्रकाश ने देखा कि एक लड़के ने फिर कुछ कहने के लिए हाथ उठाया है और सत्यव्रत ने उसे बोलने की अनुमति दी है। जयप्रकाश दरवाज़े के थोड़ा और पास हो गया और एक टूटी हुई कुर्सी पर दायां पांव रखकर, कोई किताब खोलकर खड़ा हो गया।

उस लड़के ने कहा, "मास्टर साहब, आपने हमें बड़े-बड़े इम्पार्टेण्ट सवाल तो बताये ही नहीं। हमारे तो छमाही इम्तहान होनेवाले हैं। आप चले गये तो हमारा क्या होगा?"

सत्यव्रत ने हाथ से लड़के को बैठने का इशारा किया और उसके मुंह पर अनायास प्रच्छन्न व्यंग्य और आत्म-भर्त्सना के भाव उभरते गये, बोला, "यही हम लोगों की भूल है कि हम केवल इम्पार्टेण्ट सवालों को महत्त्व देते हैं और छोटे-छोटे सवालो की उपेक्षा करते जाते हैं। किन्तु इन्हीं बड़े सवालों के पीछे भटककर जीवन में जब हमें अपनी असफलता का बोध होता है तो लगता है अब छोटे सवालों को हल करने का भी समय नहीं रहा। और तब हमें उपलब्धि के रूप में मिलता है शून्य, जिसे तुम लोग ज़ीरो कहते हो!"

लड़का शायद कुछ समझ नहीं पाया था।

तभी छुट्टी का घण्टा ज़ोरों से घनघना उठा और लड़के अपनी-अपनी किताबें समेटते हुए बाहर जाने के लिए मचल उठे। ऊपर-नीचे की ओर कई कक्षाओं से फटर-फटरकर डेस्कों के बन्द होने की ज़ोरदार आवाज़ें आने लगीं। सत्यव्रत ने अपनी आवाज़ को तनिक और ऊंचा करके कहा, "मैं जाते हुए तुम लोगों को यह बता देना चाहता हूं कि इन्हीं छोटे-छोटे

सवालों की उपेक्षा करने के कारण, मैं भी अपनी परीक्षा में फेल हो गया हूँ। मैं केवल बड़े सवालों में उलझा रहा। मैंने कभी सोचा ही नहीं कि बड़े सवालों को हल करने के लिए छोटे-छोटे सवालों को जानना भी आवश्यक है।"

जयप्रकाश ने अपनी किताब बन्द कर दी। उसकी आँखें छलछला आयीं। आन्तरिक भावों की प्रखर प्रतिक्रिया से उसकी साँसें धौंकनी की तरह चलने लगीं। उसे पता नहीं रहा कि लड़कों की भीड़ में कौन लड़का उसके पास से गुज़र गया? किसने उसे नमस्ते की और कब राजेश्वर उसके पीछे आकर खड़ा हो गया? वह सिर्फ़ सत्यव्रत की प्रतीक्षा कर रहा था।

ज्योंही पीछे से राजेश्वर ने उसके कन्धे पर हाथ रखा त्योंही सामने के दरवाज़े से सत्यव्रत बाहर निकला। जयप्रकाश ने झपटकर उसे सीने से लगा लिया और उसकी इच्छा हुई कि वह ज़ोर से रो पड़े; उछलकर दीवारों में मुक्के मारे और सारे डेस्कों की स्याही इस हिन्दू-इण्टर कॉलेज के मुँह पर पोत दे। लेकिन वह ऐसा कुछ नहीं कर सका क्योंकि तभी राजेश्वर ने स्थिति को किसी नाटकीय घटना से बचाने के लिए उन दोनों को बाहुओं में घेरकर दरवाज़े की ओर धकेल दिया।

छुट्टी के बाद अधिकांश लड़के अपने-अपने घर जा चुके थे. मगर हॉस्टल के और फुटबाल-टीम के कुछ छात्र बाहर गूंगे की दुकान की ओर प्रार्थना के मैदान के आसपास खड़े थे। सत्यव्रत को निकलता देखकर वे आगे बढ़े किन्तु साथ में राजेश्वर और जयप्रकाश को देखकर ठिठक गये। राजेश्वर ने रामपूजन को बुलाकर सब लड़कों को पीछे फुटबाल के मैदान में ले जाने के लिए कहा और तीनों गूंगे की दुकान की तरफ़ चल दिये।

सामने सड़क पर जाते हुए रस्तोगी, गुप्ताजी, श्रीवास्तव और पाठक ने एक बार पीछे मुड़कर सत्यव्रत की ओर देखा और फिर कॉलेज के फाटक की ओर देखकर गर्दन झुकाये आगे बढ़ गये। यह कहना मुश्किल था कि वे सत्यव्रत से नज़रें चुरा रहे थे या गूंगे से जिसका उन पर कर्ज़ था।

दुकान पर कोई ग्रादमी न था। स्टेशन हमेशा की तरह सूना ग्रौर उदास था। टिकटघर के सामने नीली वर्दी में एक खल्लासी प्रस्तर प्रतिमा की तरह खड़ा था ग्रौर मुंह से बीड़ी का धुंआ उगल रहा था।

जनवासे की चाल चलते हुए जयप्रकाश, राजेश्वर ग्रौर सत्यव्रत गूंगे की दुकान पर पहुंचे ग्रौर एक बेंच घसीटकर बैठ गये। गूंगा फ़ौरन दुकान से नीचे उतर ग्राया ग्रौर हाथ जोड़कर मुंह लटकाये तीनों के सामने खड़ा हो गया।

राजेश्वर ने दो चाय ग्रौर एक गिलास दूध का ग्रार्डर दिया। ग्रौर गूंगे का पहाड़ी नौकर दूध की कड़ाही से दूध निकालकर ठण्डा करने लगा। तभी गूंगे को हाथ जोड़े खड़ा देखकर सत्यव्रत को ध्यान ग्राया कि उस पर गूंगे के बीस-पच्चीस रुपये चाहिए। ग्रौर उसकी जेब में इस वक़्त तनख्वाह के एक सौ बीस रुपये पड़े हैं। जेब में हाथ डालते हुए सत्यव्रत ने गर्दन हिलाकर गूंगे से पूछा, "कितने ?"

गूंगा "ग्रांय-ग्रांय" करके चिल्ला उठा ग्रौर हाथ हिला-हिलाकर मना करने लगा। उसके मुंह पर लुटे हुए व्यक्ति की-सी निरीहता उभर ग्रायी।

जयप्रकाश बोला, "ये रुपये नहीं लेगा।"

मगर सत्यव्रत ने जेब से रुपये निकाल लिये थे, गर्दन हिलाकर बोला, 'नहीं, लेने पड़ेंगे।"

गूंगे ने ग्रागे बढ़कर सत्यव्रत का रुपयोंवाला हाथ जबरदस्ती उसकी जेब में ठूंस दिया ग्रौर सत्यव्रत ने प्रतिवाद किया तो उसी तरह 'ग्रांय-ग्रांय' चिल्लाता हुग्रा मुंह फिराकर वह दुकान पर चढ़ गया। जयप्रकाश ने देखा उसकी ग्रांखें सजल हो ग्रायी थीं।

एक मिनट के लिए फिर खामोशी छा गयी।

तभी बायीं ग्रोर नींबू के पेड़ पर बैठा हुग्रा कोई पंछी पंख फड़फड़ा उठा ग्रौर नल के पास मास्टर उत्तमचन्द ग्राते दिखायी दिये। सहसा मुर्दा वातावरण ने जैसे एक सांस ली। अपने हाथ का गिलास सत्यव्रत ने उत्तमचन्द की ग्रोर बढ़ाते हुए कहा, "ग्राइए मास्टर साहब, ग्रापकी ही प्रतीक्षा थी। चलते समय ग्रापके ही दर्शन करना चाहता था।"

"क्या ग्राज ही चले जाग्रोगे ?" उत्तमचन्द ने दूध का गिलास लेने से

इन्कार करते हुए पूछा।

"हाँ आज ही, शाम की गाड़ी से!"

"तनख्वाह मिल गयी?"

"जी हाँ! दो महीने की मिली है।"

"क्यों?"

"मैंने त्याग-पत्र दिया है न, इसलिए एक महीने के नोटिसकाल का वेतन नियमानुसार काट लिया गया।"

अब राजेश्वर को अनुभव हुआ कि बात उससे कहीं गम्भीर है जितनी उसने कल्पना की थी। और सत्यव्रत के जाने मात्र की कल्पना से ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। चाय का गिलास नीचे लुढ़काते हुए वह बोला, "मगर मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा। चाहे एक हड़ताल और हो जाये और चाहे मुझे घर से पिताजी को लाना पड़े। मैं···मैं इस कॉलिज की ईंट-से-ईंट बजा दूंगा और साले मेम्बरों को सरे बाज़ार जूते लगवाऊँगा। तुम नहीं जा सकते।"

सत्यव्रत स्नेह-विह्वल होकर राजेश्वर की ओर देखने लगा। जयप्रकाश उसी तरह गर्दन झुकाये बैठा था और उसके चेहरे पर कई भाव आ-जा रहे थे।

उत्तमचन्द ने दुखपूर्ण स्वर में कहा, "अगर तुम इस्तीफ़ा न देते तब हम देखते कोई तुम्हें कैसे निकालता है? तुम्हें कम-से-कम किसी से पूछना तो चाहिए था। अब तो टीचर्स की स्ट्राइक हो, तभी कुछ नतीजा निकल सकता है!"

देर से खामोश बैठे हुए जयप्रकाश की गर्दन हिल उठी। वह शान्त स्वर में बोला, "मास्टर साहब! अब तो सिर्फ़ दो रास्ते हैं। एक तो यह कि पंजे पनवाड़ी से बात करके इन्हें मुस्लिम स्कूल में कोई जगह दिलवा दें या दूसरा यह कि कोतवाल के ज़रिए अपनी कमेटी के मेम्बरों पर ज़ोर डलवाएँ! और इन्हीं दोनों में से हमें एक रास्ता चुनना पड़ेगा।"

"नहीं, अब मुझे और कहीं नौकरी नहीं करनी है जय भाई!" सत्यव्रत ने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में कहा।

"तो मत करो कहीं नौकरी।" राजेश्वर ने उसी आवेश में कहा, "ठाठ

से मेरे साथ रहो और खाओ-पीओ। देखना, अगर पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर इसी कॉलिज में फिर न लगवा दूं, तो मेरा नाम बदल देना।"

राजेश्वर के पिता का प्रभाव जयप्रकाश भी जानता था और उत्तमचन्द भी उससे अपरिचित न थे। इसीलिए दोनों आश्वस्त हुए। उन्हें लगा कि शायद इस प्रतिष्ठा के साथ सत्यव्रत पुनः कॉलेज में आनी स्वीकार कर ले।

गूंगा अपलक भाव से उन लोगों के चेहरों की ओर देखता हुआ जाने क्या समझने की कोशिश कर रहा था। कॉलेज के पीछे लड़के फुटबाल खेल रहे थे और उसका नौकर फुटबाल देखने चला गया था। कड़ाही के दूध में उबाल आ रहा था और वह छन्न की आवाज़ के साथ-साथ बार-बार दहकते हुए कोयलों पर गिर पड़ता था।

जब सत्यव्रत ने कोई उत्तर नहीं दिया तो हृदय की सारी करुणा, याचना और ममता वाणी में भरकर जयप्रकाश ने कहा, "ये बिल्कुल असम्भव नहीं है, मास्साहब! हम सब कोशिश करेंगे। और आपका अपाइण्टमेण्ट (नियुक्ति) यहीं…"

"नहीं जय भाई, नहीं।" ममता से भर्राए कण्ठ को साधकर सत्यव्रत ने जयप्रकाश का हाथ पकड़ लिया।

गूंगा उदास-सा अब भी सत्यव्रत की ओर देख रहा था। शायद उसे आशा थी कि कोई सूरत निकल आयेगी और सत्यव्रत रुक जायेगा। उसकी आंखों में भी स्नेह की बारीक पनियाली परतें झलक रही थीं।

स्टेशन एकदम सूना था। छोटे तालाब के पास वाले लालाजी के भटठे से ऐसी आवाज़ें आ रही थीं जैसे दहकते हुए कोयलों को पानी में फेंका जा रहा हो। कॉलेज के पीछे फुटबाल खेलनेवाले लड़के आज क़तई शोर नहीं मचा रहे थे। हां, फुटबाल पर पड़ते हुए उनके पांवों की भद-भद करती, खोखली आवाज़ें यदा-कदा सुनायी दे जाती थीं।

सत्यव्रत जयप्रकाश का हाथ पकड़े बैठा था और चारों ओर का वातावरण उसकी चेतना को छूता हुआ उस पर भारी होता जा रहा था। सहसा उसे लगा कि अभी तो सामान लाने के लिए हॉस्टल जाना पड़ेगा। हो सकता है आते-जाते कहीं विमला दिख जाये। शायद अब तक तो उसे भी

मालूम हो गया होगा। वह उससे कोई शिकायत नहीं करेगा। और शिकायत करने की बात भी क्या है? उसने ही तो उसके नारीत्व का अपमान किया है। उसे तो उल्टे विमला से ही माफ़ी माँगनी चाहिए।

उस दिन गाँव जाते हुए ट्रेन में वह कुछ दूर तक स्वामीजी के साथ गया था। और यूँही प्रसंग निकलने पर उसने पूछा था, "स्वामीजी, आत्मा को सदैव शुद्ध बनाये रखने का उपाय क्या है?" और स्वामीजी ने उत्तर दिया था, "मन में किसी के प्रति द्वेष और कटुता न आने दो। प्रत्येक व्यक्ति के दाय को पहचानो और कभी अकृतज्ञ न बनो।" सत्यव्रत को लगा कि उसके लिए यही चिरन्तन सत्य है। नौकरी का क्या? नौकरी तो फिर भी मिल जायेगी। यहाँ भी उसने पहली बार आवेदन-पत्र दिया था और केवल अपनी सच्चाई और योग्यता के बल पर चुना गया। मगर मुख्य बात है व्यक्तित्व की ईमानदारी, आत्मा की शुद्धता और कृतज्ञता का भाव!

सत्यव्रत को लगा कि इतनी बड़ी दुर्घटना और अपने प्रति ऐसी अनुचित धारणाओं के बावजूद वह किसी के प्रति कृतघ्न नहीं हुआ है। स्वामी अभयानन्दजी के प्रति, जिन्होंने उसे शुद्ध मानकर आहुति के योग्य समझा वह श्रद्धावनत है और प्रबन्धकजी के प्रति, जिन्होंने उसे आर्यसमाज मन्दिर में रहने की सुविधाएं दीं, वह अब भी अपने भीतर उतना ही आदर अनुभव करता है। रही अध्यापक साथियों और प्रिंसिपल की बात, सो उनके प्रति तो वह कृतज्ञ है ही। उन्होंने उसे छोटे-छोटे सवालों को पहचानने की दृष्टि दी है। मगर विमला का आभार सबसे अधिक है।

विमला की बात सोचते ही जाने क्यों अचानक सत्यव्रत की इच्छा हुई कि वह सबसे मिलकर जाये। प्रबन्धक जी से भी, साथियों से भी और विमला से भी। यह सच है कि राजपुर में उसका कोई ऐसा मित्र न बन पाया था जिससे बिछुड़ते हुए उसे दुख होता, पर फिर भी रह-रहकर विमला से बिना मिले जाने की बात उसे सुई की तरह चुभने लगी।

तभी अचानक उसे अपने हाथों में छटपटाते हुए जयप्रकाश के हाथों का अहसास हुआ और उसने उन्हें छोड़ दिया। आवेश और पसीने से भीगी हुई जयप्रकाश की हथेलियों की चिपचिपाहट उसकी उंगलियों पर रह गयी

थी। उसी समय उत्तमचन्द और राजेश्वर ने एक लम्बी-सी साँस खींचकर अपनी उपस्थिति का भान कराया, मानो पूछ रहे हों, "क्या निर्णय रहा ?" मगर सत्यव्रत का उधर ध्यान नहीं गया। अपनी पाँचों उँगलियाँ फैलाये और दायें हाथ की हथेली खोले वह कुछ इस तरह बैठा था, जैसे किसी ज्योतिषी को हाथ दिखाकर कोई सवाल पूछ रहा हो।

●●●

डा॰ डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
~~9038~~
9039

डा॰ डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

[illegible]

परिचय

पूरा नाम : दुष्यन्त कुमार त्यागी
जन्म : १ सितम्बर, १६३३
मृत्यु : ३० दिसम्बर, १६७५
स्थान : राजपुर-नवादा, बिजनौर (उ०प्र०)
शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) इलाहाबाद
वृत्ति : सरकारी नौकरी और खेती
पुस्तकें : सूर्य का स्वागत (कविता)
आवाजों के घेरे (कविता)
जलते हुए वन का वसन्त (कविता)
एक कण्ठ विषपायी (काव्य नाटक)
छोटे-छोटे सवाल (उपन्यास)
आँगन में एक वृक्ष (उपन्यास)
दुहरी जिन्दगी (उपन्यास)
मन के कोण (एकांकी)
और मसीहा मर गया (नाटक)

कुछ आलोचनात्मक पुस्तकें, कुछ फालतू उपन्यास तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद।

डा० डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

संजय प्रकाशन
नयी दिल्ली